॥ श्रीः ॥

काशीवासमहामहोपाध्याय-

श्रीकमलाकरभट्टसंगृहीत-

निर्णयसिन्धु।

...बादनिवासिभारतधर्ममहामण्डलमहोपदेशकविद्या-
वारिधिश्रीपंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतसेतुनामक-

भाषाटीकासहित।

जिसमें

देवप्रतिष्ठा, द्वादशमासोंके उत्सव, प्रदोष, मलमासविधि, व्रत, उद्यापन, संध्या, ग्रहण, सूतक, गर्भाधानादि सब श्रौत स्मार्त संस्कार, चारों आश्रम, चारों वर्णोंके लक्षण, कर्म, श्राद्ध, अशौचप्रकरण आदि समस्त प्रयोजनीय कर्तव्योंका वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है।

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

बंबई

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालयमें

छापकर प्रकाशित किया।

संवत् १९८४, शके १८४९.

टीकाकार-पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र.



यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाड़ी ७ वीं गली खम्बाटा लेन
निज "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की ।

भूमिका।

चारों वर्ण और चारों आश्रमोंके आचार, विचार तथा सम्पूर्ण लोकव्यवहार, दायभाग, संस्कार, व्रतानुष्ठान, महीनोंके उत्सव, संक्रान्तिविधान, व्रतादिके निर्णय, दानादिका समय और फल, ग्रहणसमयके कृत्य, पापोंके प्रायश्चित्त, यह सब भिन्न भिन्न स्थलोंमें धर्मशास्त्र और पुराणोंमें वर्णन किये हैं। एवं एक ही धर्मशास्त्र वा पुराणमें सब विषयकी पूर्ति नहीं पायी जाती, एकके साथ दूसरेकी अपेक्षा लगी रहती है और कभी कभी व्रत तथा उत्सवोंके निर्णयमें बड़ा झंझट पड़ता है। इन अभावोंके दूर करनेके लिये महानुभावोंने सम्पूर्ण धर्मशास्त्र तथा पुराणोंका सार संग्रह करके बडे बड़े निबन्धोंकी रचना की है। उनमें कृत्यकल्पतरु और हेमाद्रि आदि बड़े बड़े निबन्ध हैं परन्तु ये इतने बृहत् हो गये हैं कि न तो सर्वसाधारणको उनकी उपलब्धि ही हो सकती है और न विना पूर्ण विद्वत्ताके उनको कोई समझ सकता है। उन निबन्धोंका बृहदाकार देखकर ही प्रसिद्ध स्मृतिशास्त्रज्ञाता कमलाकरभट्टनें इन बृहत् निबन्धों तथा धर्मशास्त्र, पुराणोंका सार संग्रह करके प्रयोजनीय समस्त विषयोंसे पूर्ण "निर्णयसिन्धु" नामक ग्रंथकी रचना की, इसमें इन पंडितवर्यका पाण्डित्य भी पूर्णरूपसे झलकता है, परन्तु साधारण मनुष्योंको इसका अर्थ भी सुलभ नहीं है। इन्होंनें जहाँ तहाँ अपने ग्रन्थमें गौडमन्तव्योंका खण्डन किया है इससे विदित होता है कि, ये गौडनिबन्धोंके सर्वथा सहमत न थे। अस्तु, तो भी यह ग्रन्थ धर्मनिबन्धोंमें बहुत उत्कृष्ट समझा जाता है। इसकी रचना भी न्याय मीमांसासे गर्भित है और कहीं कहीं इसकी पंक्तियाँ काठिनता लिये हुए हैं। 'धर्मसिंधु' नामक एक वार्तिक संस्कृत ग्रंथ इसका टीकारूप समझा जाता है, परन्तु वह भी संस्कृतमें ही होनेके कारण सर्व साधारणको उपयोगी नहीं समझा जाता। इस कारण यह आवश्यकता हुई कि सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंके प्रयोजनीय धर्मकर्मके साररूप इस ग्रंथकी हिन्दी भाषामें सबके समझने योग्य टीकाका निर्माण किया जाय। यद्यपि यह कार्य दीर्घकालसाध्य और विशेष परिश्रमसापेक्ष था तो भी सर्व साधारणका उपकार विचार कर इसकी टीका करनेका परिश्रम कुछ विशेष न समझा और इसका सरल सुगम सबके समझने योग्य ऐसा अनुवाद लिखा है कि, इसकी कठिन पंक्तियां भी भले प्रकार सर्वसाधारणकी समझमें आ सकेंगी और कर्मकाण्डमें जो कहीं कहीं वैदिक मंत्रोंकी प्रतीकें इसके मूलमें थीं मैंने नोटमें वे पूरे मंत्र पतेसहित लिख दिये और इसकी रचनाको अंकोंमें विभक्त कर अंक डालकर नीचे उसका तिलक लिखा है, जिससे समझनेमें किसी प्रकार भी कठिनाई न पड़े। इस प्रकार इस ग्रन्थका भाषानुवाद होनेसे हिन्दीभाषाके भंडारमें एक अनु-

प्रेम ग्रंथकी वृद्धि हुई है। यथामति इस ग्रंथके अलंकृत करनेकी चेष्टा की गयी है। यदि कहीं कुछ भ्रमवश रह गया हो तो पाठकगण क्षमा करेंगे।

इस प्रकार यह ग्रंथ सब स्वत्वसहित जगद्विख्यात "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यंत्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको समर्पण कर दिया गया है। आशा है कि, महात्माजन इसके अवलोकनसे प्रसन्न होंगे॥

दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.
११।१।०९

अनुगृहीत-
ज्वालाप्रसाद मिश्र.

ग्रंथकारका परिचय।

विख्यात स्मृतिसंग्रहकार कमलाकरभट्टजी रामकृष्णभट्टजीके पुत्र नारायणभट्टके पौत्र और दिनकरभट्टके सहोदर थे। बहुतसे धर्मग्रंथ इनके निर्माण किये हुए हैं। अपने समयमें ये एक प्रधान स्मार्त थे। इनके बनाये हुए निम्न लिखित ग्रंथ प्रधान हैं-तत्त्वकमलाकर १, पूर्त्तकमलाकर २, तीर्थकमलाकर ३, संस्कारप्रयोग ४, संस्कारपद्धति ५, कार्तवीर्यार्जुनदीपदानप्रयोग ६, शान्तिरत्न ७ शूद्रधर्मतत्त्व ८, सहस्रचण्डयादिविधि ९, निर्णयासिन्धु १०, विवादताण्डव ११ इन ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि ये सन् १६३४ ई० में विद्यमान थे।

ज्वालाप्रसाद मिश्र.

समर्पणपत्र.

स्वस्तिश्रीमन्महाराजाधिराज प्रबलप्रतापी गुणज्ञाननिधान न्यायपरायण धर्मधुरीण क्षत्रवंशावतंस लोकमान्य गुणिजनमण्डलीमण्डन सज्जनमनोरञ्जन सनातनधर्मप्रतिपालक वीरेन्द्र-टीहरी गढवाल नरेश श्रीयुत श्री १०८,

श्रीमहाराजाकीर्तिशाहजू महोदय

G. C. S. I. के करकमलमें-

यह "निर्णयसिन्धु" ग्रन्थ धर्मसम्बन्धसे सादर समर्पित है।

दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.
११।१।०९

निवेदक-
ज्वालाप्रसाद मिश्र.

इति ग्रहणनिर्णयः ।

इति प्रथमपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

अथ द्वितीयपरिच्छेदानुक्रमणिका ।

चैत्रमासः ।

इति चैत्रमासः।

अथ वैशाखमासः।

इति वैशाखमासः।

अथ ज्येष्ठमासः।

इति ज्येष्ठमासः।

अथाषाढमासः।

अथ तृतीय-परिच्छेदे

उत्तरार्द्धम् ।

श्राद्धप्रकरणम् ।

अथ श्राद्धानुकल्पः।

इति तीर्थे श्राद्धविधिः।

अथाशौचप्रकरणम्।

इति निर्णयसिन्धोर्विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीः ।

ऋद्धिसिद्धीश्वराय नमः ।



अथ निर्णयसिन्धुः ।

भाषाटीकासमेतः ।

प्रथमः परिच्छेदः १.

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः । श्रीगुरुभ्यो नमः । अविघ्नमस्तु ॥ कारुण्यैकनिकेतं रामं सीतालतायुक्तम् ॥ विश्वामित्रान्ववायव्रततिसमालंबिशाखिनं वन्दे ॥ १ ॥ लक्ष्मीसहायं कल्पद्रुतरलं जितगोकुलम् ॥ बर्हापीडं घनश्यामं

भाषाटीकाकारकृतमंगलाचरणम् ।

दोहा ।

सिद्धिसदन आनन्दघन, गणपति गिरा मनाय । निर्णयसिन्धुसुग्रन्थकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥
करुणानिधि सीतारमण, कौशिकसुखदातार । प्रेमसहित वन्दौं सदा, दशरथराजकुमार ॥ २ ॥
लक्ष्मीयुत सुरतरुतले, गोगण रञ्जनहार । बर्हापीड श्यामघन, वन्दौं बारहिं बार ॥ ३ ॥
शिवासहित शिवपदकमल, वन्दौं सब सुखदान । तीनकाल चहुँ युगनमें, भक्तन सुखप्रद जान ॥ ४ ॥
वेदधर्मरक्षाकरन, मायामनुजशरीर । पितामह शिवदयालुको, वन्दौं धर्मसुधीर ॥ ५ ॥
जिन चरणनकी वन्दना, सकल सुमंगलखान । मिश्रसुखानँद पितुचरण, वन्दौं सब सुखदान ॥ ६ ॥
बसत रामगंगानिकट, नगर मुरादाबाद । धर्मसेतु टीका रचत, बुध ज्वालापरसाद ॥ ७ ॥

दयाके एक ही स्थान, सीतारूपी लतासे संयुक्त, विश्वामित्रके वंशरूपी लताके आश्रित रामरूपी वृक्षको प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥ लक्ष्मीसे युक्त कल्पवृक्षके नीचे गौओंके रक्षकको

महः किंचिदुपास्महे ॥ २ ॥ वेदार्थधर्मरक्षायै मायामानुषरूपिणम् ॥ पितामहं हरिं वन्दे भट्टनारायणाह्वयम् ॥ ३ ॥ यत्पादसंस्मृतिः सर्वमंगलप्रतिभूर्मता ॥ तान् भट्टरामकृष्णाख्याञ्छ्रीतातचरणान्नुमः ॥ ४ ॥ सर्वकल्याणसंदोहनिदानं यत्पदद्वयम् ॥ द्युनदीसोदरीमम्बामुमाख्यां नौमि सादरम् ॥ ५ ॥ बिन्दुमाधवपादाब्जरोलम्बीकृतविग्रहम् ॥ ज्यायांसं भ्रातरं भट्टदिवाकरमुपास्महे ॥ ६ ॥ हेमाद्रिमाधवमते प्रविचार्य्य सम्यगालोच्य तत्त्वमथ तीर्थकृतां परेषाम् ॥ श्रीरामकृष्णतनयः कमलाकराख्यः काले यथामति विनिर्णयमातनोति ॥ ७ ॥ सन्ति यद्यपि विद्वांसस्तन्निबन्धाश्च कोटिशः ॥ तथाप्यमुष्य वैदग्धीं केचिद्विज्ञातुमीशते ॥८॥ *अथ कालायनादिनिर्णयः* ॥ तत्र संक्षेपतः कालः षोढा—अब्दोऽयनमृतुर्मासः पक्षो दिवस इति । तत्राब्दो माधवमते पञ्चधा—सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्रो बार्हस्पत्य इति । गुरोर्मध्यमराशिभोगेन बार्हस्पत्यः । स च ज्योतिःशास्त्रे प्रसिद्धः । हेमाद्रिस्त्वन्त्ययोर्धर्मशास्त्रेऽनुपयोगात्त्रिस एव विधा आह । तत्र वक्ष्यमाणैः सावनादिद्वादशमासैस्तत्तदब्दम् । मलमासे तु सति षष्टिदिनात्मक एको मास इति द्वादशमासत्वमविरुद्धम् । तथा च व्यासः—'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो बादरायणैः' इति । तत्र चान्द्रोऽब्दः षष्टिभेदः । तदाह गार्ग्यः—"प्रभवो

प्रसन्न करनेवाले मोरपुच्छका गुच्छा धारण करनेवाले घनके समान श्याम (कृष्ण) की उपासना करते हैं ॥ २ ॥ वेदके अर्थ और धर्मकी रक्षाके निमित्त मायासे मनुष्यका रूप धारण किये हरिरूप पितामह भट्टनारायणको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥ जिनके चरणारविन्दोंका स्मरण सम्पूर्ण मंगलोंका प्रतिनिधि है, उन रामकृष्णभट्ट श्रीपिताजीके चरणोंको प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥ जिनके दोनों चरणकमल सम्पूर्ण कल्याणके पात्रके आदिकारण हैं उन गंगाकी सगी भगिनी उमानाम अपनी माताके चरणोंको प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ बिन्दुमाधवके चरणकमलोंके आश्रितशरीरवाले बड़े भ्राता भट्ट दिवाकरकी उपासना करता हूँ ॥ ६ ॥ हेमाद्रि और माधवके मतको भले प्रकार विचार तथा दूसरे ग्रन्थकारोंके मतको भले प्रकार विचारकर श्रीरामकृष्णका पुत्र मैं कमलाकरभट्ट समयपर बुद्धिके अनुसार निर्णयका विस्तार करता हूँ ॥ ७ ॥ यद्यपि विद्वान् और उनके बनाये ग्रन्थ भी बहुत हैं तो भी इसकी पण्डिताई कोई कोई ही जाननेको समर्थ हैं ॥ ८॥ निबन्धके अनुसार समय संक्षेपसे छः प्रकारका है । वर्ष,अयन, ऋतु,मास, पक्ष और दिन । माधवके मतसे वर्षके पांच भेद हैं । सावन, सौर, चान्द्र नाक्षत्र और बार्हस्पत्य । बृहस्पतिकी मध्यम अर्थात् एक राशि भोगनेसे बार्हस्पत्य वर्ष होता है, वह ज्योतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध है, और हेमाद्रिने पीछेके दोनोंके धर्मशास्त्रके उपयोगी न होनेसे तीनही प्रकारका माना है, सो आगे कहने योग्य सावनादि बारह महीनोंमें उस २ का वर्ष होता है, और मलमास होनेसे साठ दिनका एक महीना होता है इससे द्वादशमास कहनेमें विरोध नहीं है,यही व्यासजी कहते हैं कि ६० दिनका एक मलमास होता है, उसमें चन्द्रवर्षके साठ भेद हैं यही गर्ग कहते हैं।प्रभव १

विभवः शुक्लः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः। अंगिराः श्रीमुखो भावो युवा धातेश्वरस्तथा॥ बहुधान्यः प्रमाथी च विक्रमोऽथ वृषस्तथा। चित्रभानुः सुभानुश्च तारणः पार्थिवो व्ययः॥ सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतिः खरः। नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ॥ हेमलम्बो विलम्बोऽथ विकारी शार्वरी प्लवः। शुभकृच्छोभनः क्रोधी विश्वावसुपराभवौ॥ प्लवंगः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत्। परिधावी प्रमादी च आनन्दो राक्षसोऽनलः॥ पिंगलः कालयुक्तश्च सिद्धार्थो रौद्रदुर्मती। दुंदुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षी क्रोधनः क्षयः॥" इति॥६०॥ यद्यपि ज्यौतिषे गुरोर्मध्यमराशिभोगेन प्रभवादीनां माघादौ प्रवृत्तिरुक्ता, तथापि प्रभवादीनां चान्द्रत्वमप्यस्ति। 'चान्द्राणां प्रभवादीनां पञ्चके पञ्चके युगे' इति माधवोक्तेः। तेन चान्द्रः प्रभवादिश्चैत्रसिते प्रवर्तते, बार्हस्पत्यस्तु माघादौ। तयोर्विनियोगो ज्योतिर्निबन्धे ब्रह्मसिद्धान्ते "व्यावहारिकसंज्ञोऽयं कालः स्मृत्यादिकर्मसु। योज्यः सर्वत्र तत्रापि जैवो वा नर्मदोत्तरे॥" आर्ष्टिषेणः—"स्मरेत्सर्वत्र कर्मादौ चान्द्रं संवत्सरं सदा। नान्यं यस्माद्वत्सरादौ प्रवृत्तिस्तस्य कीर्तिता॥" इति। अयनं तु सौरर्तुत्रयात्मकम्। 'सौरर्तुत्रितयं प्रदिष्टमयनम्' इति दीपि-

---

१विभव २ शुक्ल ३ प्रमोद ४ प्रजापति ५ अंगिरा ६ श्रीमुख ७ भाव ८ युवा ९ धाता १० ईश्वर ११ बहुधान्य १२ प्रमाथी १३ विक्रम १४ वृष १५ चित्रभानु १६ सुभानु १७ तारण १८ पार्थिव १९ व्यय २० सर्वजित् २१ सर्वधारी २२ विरोधी २३ विकृति २४ खर २५ नन्दन २६ विजय २७ जय २८ मन्मथ २९ दुर्मुख ३० हेमलम्ब ३१ विलम्ब ३२ विकारि ३३ शार्वरी ३४ प्लव ३५ शुभकृत् ३६ शोभन ३७ क्रोधी ३८ विश्वावसु ३९ पराभव ४० प्लवंग ४१ कीलक ४२ सौम्य ४३ साधारण ४४ विरोधकृत् ४५ परिधावी ४६ प्रमाथी ४७ आनन्द ४८ राक्षस ४९ अनल ५० पिंगल ५१ कालयुक्त ५२ सिद्धार्थ ५३ रौद्र ५४ दुर्मति ५५ दुन्दुभि ५६ रुधिरोद्गारी ५७ रक्ताक्षी ५८ क्रोधन ५९ क्षय ६०॥ यद्यपि ज्योतिश्शास्त्रमें गुरुके मध्यमराशिके भोगसे प्रभवादिवर्षोंकी माघादिमें प्रवृत्ति कहीहै तोभी प्रभवादिवर्षोंको चान्द्रत्वभी है, अर्थात् चन्द्रमासेभी मानेजाते हैं कारण कि माधवने यह कहाहै कि प्रभव आदि चान्द्रवर्षोंके पांचवें २ युगमें होते हैं इससे चान्द्र प्रभव आदि वर्ष 'चैत्रके शुक्लपक्षसे प्रवृत्त होताहै, और बार्हस्पत्य तो प्रभव आदि माघकी आदिमें प्रवृत्त होताहै, उन दोनोंका विनियोग ज्योतिर्निबंधके ब्रह्मसिद्धान्तमें वर्णन किया है कि, व्यावहारिकसंज्ञावाला यह काल (चान्द्रवर्ष) स्मृति अर्थात् शास्त्रोक्त सर्व कर्मोंमें सदैव मानना चाहिये, बार्हस्पत्यवर्षको नर्मदासे उत्तर मानना चाहिये। आर्ष्टिषेण कहते हैं–सर्वत्र कर्मादिमें चान्द्रवर्षकोही लेना चाहिये, अन्य नहीं कारण कि, इसीकी वत्सर आदिमें प्रवृत्ति कही है, सूर्यकी तीन ऋतुओंको अयन कहते हैं यही इस प्रकारके वचनसे दीपिकाग्रन्थमें लिखा है, उस अयनके दक्षिण और उत्तर दो भेद हैं

र्कोक्तेः । तत् द्विविधं दक्षिणमुत्तरं चेति । कर्कसंक्रांतिर्दक्षिणायनं मकरेऽन्यम् । अनयोर्विनियोगमाह मदनरत्ने सत्यव्रतः–'देवतारामवाप्यादिप्रतिष्ठोदङ्मुखे रवौ । दक्षिणाशामुखे कुर्वन्न तत्फलमवाप्नुयात् ॥' वैखानसः–'मातृभैरववाराहनरसिंह-त्रिविक्रमाः । महिषासुरहंत्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने ॥' वैशब्दः अप्यर्थे न तु दक्षिणायन एवेति नियमः । पूर्ववचने दक्षिणायने निषिद्धाया देवप्रतिष्ठाया देव-विषये प्रतिप्रसवमात्रात् । रत्नमालायाम् 'गृहप्रवेशस्त्रिदशप्रतिष्ठा विवाहचौल-व्रतबन्धपूर्वम् । सौम्यायने कर्म शुभं विधेयं यद्गर्हितं तत्खलु दक्षिणे च ॥' इति । अस्यापवादः काशीखण्डे–'सदा कृतयुगं चास्तु सदा चास्तूत्तरायणम् । सदा महोदयश्चास्तु काश्यां निवसतां सताम् ॥' इत्ययनम् । ऋतुनिर्णयः । ऋतुर्मासद्वयात्मा । मलमासे तु मासद्वयात्मक एको मासस्तेन मासद्वयात्मकत्वमविरुद्धम् । स द्वेधा–चान्द्रः सौरश्च । चैत्रारम्भो वसन्तादिश्चान्द्रः, मीनारम्भो मेषारम्भो वा सौरः । 'मीनमेषयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्तः' इति बौधायनोक्तेः । अनयोर्विनियोग-माह त्रिकाण्डमण्डनः–"श्रौतस्मार्तक्रियाः सर्वाः कुर्याच्चान्द्रमसर्तुषु । तदभावे तु सौरर्तुष्विति ज्योतिर्विदां मतम् ॥" स द्विविधोऽपि षोढा । वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः

कर्ककी संक्रान्तिमें दक्षिणायन और मकरकीमें उत्तरायण होता है । मदनरत्नग्रन्थमें सत्यव्रतने इन दोनोंका विनियोग कहाहै कि, देवताकी प्रतिष्ठा, बाग, बावडी आदिकी प्रतिष्ठा उत्तरायण-सूर्यमें करनी चाहिये । कारण कि, दक्षिणायनमें करनेवालेको उसका फल नहीं मिलता. वैखा-नसऋषि कहते हैं कि, मातृ, भैरव, वराह, नारसिंह, त्रिविक्रम, महिषासुरघातिनी देवीकी प्रतिष्ठा दक्षिणायनमें भी कर दे । इस श्लोकमें (वै) शब्दका (अपि) अर्थ है दक्षिणायनमें ही करे यह नियम नहीं, कारण कि पहले वचनमें दक्षिणायनमें निषेध कीहुई भी देवप्रतिष्ठाका मातृ आदि देवविशेषोंमें इस वाक्यसे (निषेध) का निषेध है यही रत्नमालामें कहा है कि, गृहप्रवेश, देवताकी प्रतिष्ठा, विवाह, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि शुभकर्म उत्तरायणमें करने चाहिये और गर्हित जो कर्म हैं वे दक्षिणायनमें करने । इसका भी अपवाद काशीखण्डमें लिखा है कि, काशीके रहनेवाले सत्पुरुषोंको सदाही कृतयुग, सदाही उत्तरायण और सदाही महोदय होताहै, आशय यह कि उनको दक्षिणायन भी उत्तरायणही है । इति अयनप्रकरणं समाप्तम् ॥ दो महीनेका ऋतु होता है, मलमासमें तो दो महीनेका एक मास होता है, इस कारण दो मासका ऋतु कहना विरुद्ध नहीं है । उस ऋतुके दो भेद हैं चान्द्र और सौर । चैत्रका आरंभ वसन्तकी आदि चान्द्रऋतु है, मीन वा मेषका आरम्भ सौरऋतु कहाता है, कारण कि, बौधायन ऋषिने मीन और मेषकी वा मेष और वृषकी संक्रांतिको वसन्तऋतु वर्णन किया है । इन दोनों ऋतु-ओंका विनियोग त्रिकाण्डमण्डनमें यह वर्णन किया है कि, सम्पूर्ण वेद और धर्मशास्त्रकी कही क्रिया चान्द्रऋतुओंमें करनी चाहिये । यदि उनमें मुहूर्त न बने तो सौर ऋतुओंमें करनी चाहिये

शरद्धेमन्तः शिशिरः। इत्यृतुः। मासश्चतुर्धा। सावनः सौरश्चान्द्रो नाक्षत्र इति। त्रिंशद्दिनः सावनः। अर्कसंक्रान्तेः संक्रान्त्यवधेः सौरः। यद्यपि हेमाद्रिमाधव-कालादर्शाद्यालोचनेन 'मेषसंक्रान्त्यां समाप्तामावास्यकत्वं चैत्रत्वम्' इति लक्षणाच्च मेषसंक्रान्तेश्चैत्रत्वं प्रतीयते, तथापि मेषसंक्रमे दर्शद्वये सति वैशाखस्यैवाधिक्या-त्तत्पूर्वभावित्वेन मीनस्यैव चैत्रत्वं युक्तम्। एवं मेषादयो वैशाखाद्याः। अतो मीनसंक्रान्त्यामधिगतपौर्णमासिकत्वम्, 'आद्यतिथिकत्वं वा चैत्रत्वमिति लक्षणात् मीन एव सौरश्चैत्रः। एवं वैशाखादयोऽपि मेषाद्या ज्ञेयाः। संक्रान्तिनिर्णयः। सौरमासप्रसंगात्संक्रांतिनिर्णय उच्यते। तत्र 'पूर्वतोऽपि परतोऽपि संक्रमात्पुण्यकाल-घटिकास्तु षोडश' इति सामान्यतः पुण्यकालः सर्वैरुक्तः। विशेषस्तूच्यते। अत्र मामकाः संग्रहश्लोकाः—"प्रागूर्ध्वा दश पूर्वतः षडवनिस्तद्वत्पराः पूर्वतस्त्रिंशत्षोडश पूर्वतोऽथ परतः पूर्वाः पराः स्युर्दश। पूर्वाः षोडश चोत्तरा ऋतुभुवः पश्चात्खवेदाः पुनः पूर्वाः षोडश चोत्तराः पुनरथो पुण्यास्तु मेषादितः।" अस्यार्थः। मेषे प्रागूर्ध्वं च दश घटिकाः पुण्यकालः, वृषे पूर्वाः षोडश, मिथुने पराः षोडश, कर्के पूर्वास्त्रिंशत्, सिंहे पूर्वाः षोडश, कन्यायां पराः षोडश, तुलायां प्रागूर्ध्वा दश, वृश्चिके पूर्वाः षोडश, धनुषि पराः षोडश, मकरे चत्वारिंशत्पराः। इदं च हेमाद्रि-

---

यह ज्योतिषियोंका मत है, वह दो प्रकारका भी ऋतु छः प्रकारका है वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमंत और शिशिर। इति ऋतुप्रकरणम्॥ मास चार प्रकारका है—सावन, सौर, चान्द्र नाक्षत्र। ३० दिनका सावन और सूर्यकी संक्रान्तिसे दूसरी संक्रान्तितक सौरमास होता है। यद्यपि हेमाद्रि, माधव, कालादर्श आदि ग्रन्थोंके देखनेसे मेषसंक्रान्तिकी समाप्ति होनेपर अमावास्यातक चैत्र होता है, इस लक्षणसे मेषकी संक्रान्ति ही चैत्र प्रतीत होती है, तथापि जब मेषकी संक्रांतिमें दो अमावस आजायँ तो वैशाखकी अधिकतासे और पूर्व होनेसे मीनको ही चैत्र मानना युक्तिसम्मत होसकता है, इसी प्रकार मेष आदि संक्रान्तिसे वैशाख आदि जानने उचित है, इससे मीनकी संक्रान्तिके बीचमें जिसकी पूर्णमासी हो वह अथवा वर्षकी प्रथमकी तिथि, जिसके आदिमें हो वह चैत्र कहाता है। इन लक्षणोंसे मीन ही सौर चैत्र है, इसी प्रकार वैशाख आदि भी मेष आदि जानने॥ अब सौरमासके प्रसंगसे संक्रान्तिनिर्णय लिखते हैं, संक्रान्तिके प्रारम्भसे पहले और पीछे सोलह घडी पुण्यकाल सामान्यरीतिसे सबने लिखा है, विशेष भी कहते हैं। इस विषयमें मेरे संग्रह किये हुए यह श्लोक हैं, कि मेषकी संक्रान्तिमें प्रथम और पीछे दश २ घडी पुण्यकाल है, वृषमें पहली सोलह और मिथुनमें पिछली सोलह, कर्कमें पहली तीस, सिंहमें पहली सोलह और कन्यामें पीछेकी सोलह घडी और तुलामें पहली और पिछली दश और वृश्चिकमें पहली सोलह और धनमें पिछली सोलह घडी, और मकरमें पिछली चालीस घडीतक पुण्यकाल है, यह भी

मतेनोक्तम् । माधवमते त्वत्र परा विंशतिः पुण्याः कुंभे पूर्वाः षोडश, मीने पराः षोडशेति । "याप्युत्तरा पुण्यतमा मयोक्ता सायं भवेत्सा यदि सापि पूर्वा । पूर्वा तु योक्ता यदि सा विभाते साप्युत्तरा रात्रिनिषेधतः स्यात् ॥ अर्वाङ्निशीथाद्यदि संक्रमः स्यात्पूर्वेऽह्नि पुण्यं परतः परेऽपि । आसन्नयामद्वयमेव पुण्यं निशीथमध्ये तु दिनद्वयं स्यात् ॥ कर्के झषेऽप्येवमिति ह्युवाच हेमाद्रिसूरिश्च तथापरार्कः । झषः प्रदोषे यदि वार्धरात्रे परेऽह्नि पुण्यं त्वथ कर्कटश्चेत् ॥ प्रभातकाले यदि वा निशीथे पूर्वेह्नि पुण्यं त्विति माधवार्यः ।" अत्र मूलवचनानि माधवापरार्कहेमाद्र्यादिषु द्रष्टव्यानि । सर्वासु संक्रांतिषु दानविशेषो हेमाद्रौ दानकाण्ड उक्तः । मेषसंक्रान्तौ दानविशेषः । विश्वामित्रः—"मेषसंक्रमणे भानोर्मेषदानं महाफलम् । वृषसंक्रमणे दानं गवां प्रोक्तं तथैव च ॥ वस्त्रान्नपानदानानि मिथुने विहितानि तु । घृतधेनुप्रदानं च कर्कटेऽपि विशिष्यते ॥ ससुवर्णं छत्रदानं सिंहेऽपि विहितं सदा । कन्याप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च ॥ तुलाप्रवेशे तिलानां गोरसानामपीष्टदम् । अन्नकीचलिते भानौ दीपदानं महाफलम् ॥ अन्नकी वृश्चिकः । धनुःप्रवेशे वस्त्राणां यानानां च महाफलम् । झषप्रवेशे दारूणां दानमग्नेस्तथैव च ॥ कुम्भ-

---

हेमाद्रिके मतसे लिखा है,माधवके मतमें तो पिछली बीस घडी पुण्यकाल है। जिस संक्रान्तिकी पिछली घडी पुण्यतम मैंने कहीहैं यदि वह संक्रान्ति संध्याके समय हो तौ उतनीही पहली घडी पुण्यकाल जानना, और जिस संक्रांतिका पूर्व पुण्यकाल कहाहै वह यदि सूर्योदयके समय हो तो उतनी ही घडी पिछली पुण्यकाल जानना । कारण कि, रात्रिमें पुण्यका निषेध है, यदि आधी रातसे पहले संक्रान्ति हो तो पहले दिनके पिछले दो प्रहरमें और यदि आधी रातसे परे संक्रान्ति हो तो पिछले दिनके पहले दो प्रहरमें पुण्यकाल होता है । कर्क और मीनकी संक्रान्तिमें भी इसी प्रकार जानना, यह वार्ता हेमाद्रिसूरि और अपरार्कने लिखी है । यदि मीनकी संक्रान्ति प्रदोष वा आधी रातके समय हो तो पर दिनमें पुण्यकाल जानना, और कर्ककी संक्रान्ति सूर्योदय वा आधीरातके समय हो तो पूर्वदिनमें पुण्यकाल जानना, यह माधवाचार्य लिखते हैं, इनमें मूलके वचन माधव, अपरार्क, हेमाद्रि आदिमें देखने योग्य हैं । सब संक्रान्तियोंमें दानविशेष हेमाद्रिग्रन्थके दानकाण्डमें लिखा है । विश्वामित्र कहते हैं कि, मेषकी संक्रान्तिमें मेषके दानका महान् फल है, इसी इसी प्रकार वृषकी संक्रान्तिमें गौका दान और वस्त्र, अन्न, (पान) का दान मिथुनमें कहा है,घीकी गऊका दान कर्कमें बहुत श्रेष्ठ है, सुवर्णसहित छत्रका दान सिंहमें उत्तम कहा है,कन्याकी संक्रान्तिमें वस्त्र और घरका दान कहा है,तुलाकी संक्रान्तिमें तिल और गोरसका दान मनोरथको देता है, वृश्चिककी संक्रान्तिमें दपिकदानका बडा फल है और धनुकी संक्रान्तिमें वस्त्र और यानके दानका महान् फल है, मकरकी संक्रान्तिमें काष्ठ और अग्निके दानका महान् फल है, कुम्भकी

प्रवेशे दानं तु गवामम्बुतृणस्य च। मीनप्रवेशे स्थानानां मालानामपि चोत्तमम्॥" इति। अत्रोपवासमाह हेमाद्रावापस्तम्बः–" अयने विषुवे चैव त्रिरात्रोपोषितो नरः। स्नात्वा यस्त्वर्चयेद्भानुं सर्वकामफलं लभेत्॥" अशक्तौ तु वृद्धवसिष्ठः–"अयने संक्रमे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। अहोरात्रोषितः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥" अत्रोपवासः संक्रमदिने, दानादि तु पुण्यकालदिने इत्याचार्यचूडामणिः। विधिलाघवात् पुण्यकालदिन एवोभयमिति वृद्धाः। इदं च पुत्रिगृहस्थातिरिक्तविषयम्। "आदित्येऽहनि सक्रांतौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। उपवासो न कर्तव्यः पुत्रिणा गृहिणा तथा॥" इति जैमिनिवचनात्। अत्र श्राद्धमुक्तं हेमाद्रौ विष्णुधर्मे–"श्राद्धं संक्रमणे भानोः प्रशस्तं पृथिवीपते।" अपरार्केऽपि विष्णुः–आदित्यसंक्रमणं, विषुवद्वयम्, विशेषिणायनद्वयम्, व्यतीपातः, जन्मर्क्षम्, अभ्युदयश्च। 'एतांस्तु श्राद्धकालान्वै काम्यानाह प्रजापतिः' इति। द्वादशादिदिनैरर्वागयनांशप्रवृत्तावपि

संक्रांतिमें गौ, जल और तृणके दानका वड़ा फल है, मीनकी संक्रांतिमें खट्टा अन्न तथा मालाका महान् फल है। हेमाद्रिग्रन्थमें आपस्तम्बने संक्रांतिमें उपवास कहा है कि, दक्षिणायन, उत्तरायण और विषुव (मेष तुला) संक्रांतिमें जो मनुष्य तीन रात्रि उपवास स्नान करके सूर्यका पूजन करता है, वह सब कामनाओंके फलको प्राप्त होता है, और यदि सामर्थ्य न हो तो वृद्धवसिष्ठ यह कहते हैं कि, दक्षिणायन और उत्तरायणकी संक्रांतिमें तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें एक दिनरात व्रत और स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त होता है, यह व्रत तो संक्रांतिके दिन करना चाहिये और दान आदि पुण्यकालके दिन करना। यह आचार्यचूडामणि कहते हैं, कि विधिके लाघवसे पुण्यकालके दिन ही व्रत, स्नान दोनों करने चाहिये। यह वार्ता उसी गृहस्थीके निमित्त है जिसके पुत्र न हो। क्योंकि, जैमिनि ऋषिने यह कहा है कि, रविवारके दिन, संक्रांति और सूर्य चन्द्रमाके ग्रहणमें पुत्रवाले गृहस्थीको व्रत नहीं करना चाहिये। और संक्रांतिके हेमाद्रिग्रन्थके विष्णुधर्ममें श्राद्ध करना भी कहा है कि, हे राजन्! सूर्यकी संक्रांतिमें श्राद्ध बहुत उत्तम है, अपरार्कग्रन्थमें विष्णुने यह कहा है कि, सूर्यकी संक्रांति विषुव और दोनों अयन, जन्मका नक्षत्र और अभ्युदय इतने श्राद्धके समय प्रजापतिने काम्य कहे हैं, अर्थात् पुत्र आदिकी कामनावाला पुरुष इनमें श्राद्ध करे। जब बारह दिन पहले अयनांशकी प्रवृत्ति होती है, तब

---

१ अहोरात्र कहनेसे भूतकाल विविक्षित नहीं है। अमावास्या, द्वादशी, संक्रान्ति यह तिथि और भानु वार श्रेष्ठ है। इसमें स्नान जप होम देवताका पूजन उपवास दान करना परमपवित्र है यह सांवर्तक वाक्य है, वास्तवमें सांवर्तसंक्रान्तिके अधिकरण उपवासका विधान है।

तथाच "अमावस्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः। एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च। अत्र स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम्। उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम्॥"

पुण्यं वक्तुमयनग्रहणम् । अन्यथा संक्रमेण सिद्धेरयनग्रहणं व्यर्थं स्यादित्य-परार्कः । हेमाद्रावपि गालवः–" अयनांशकतुल्येन कालेनैव स्फुटं भवेत् । मृग-कर्कादिगे सूर्ये याम्योदगयने सति ॥ तदा संक्रान्तिकाले स्युरुक्ता विष्णुपदादयः॥" इति । अयनांशच्युतिरूपे सक्रांतिकालेऽपि विष्णुपदादयः प्रवर्तन्ते । तेन तत्प्रयुक्तं पुण्यकालादि तत्रापि ज्ञेयमिति स एव व्याचख्यौ । तच्च मेषायनं वृषायनमित्यादि सर्वत्र ज्ञेयम् । माधवीयेऽपि जाबालिः–" संक्रांतिषु यथा कालस्तद्योऽप्ययने तथा । अयने विंशतः पूर्वा मकरे विंशतिः परा ॥" इति । मकरायने पूर्वाः विंशतिर्घटिकाः पुण्याः, मकरसंक्रान्तौ तु पश्चाद्विंशतिः पुण्याः । अन्यत्रायने तत्संक्रान्तिवदित्यर्थः ॥ विष्णुपदादिनिर्णयः ॥ विष्णु-पदादिस्वरूपं च दीपिकायामुक्तम्–'हर्यग्रिवृषसिंहवृश्चिकघटेष्वर्कस्य यः संक्रमः कन्यामीनधनुर्नृयुक्षु षडशीत्याख्यं तुलामेषयोः । प्रोक्तं तद्विषुवं झषेऽयनमु-दक्कर्कटके दक्षिणम् ॥' इति । हर्यग्रिर्विष्णुपदम्, नृयुक् मिथुनम् । अत्र च पिण्डरहितं श्राद्धं कुर्यात् । तथा चापरार्के मात्स्ये–"अयनद्वितये श्राद्धं विषुव-द्वितये तथा । संक्रातिषु च सर्वासु पिण्डनिर्वपणादृते ॥" इति । श्राद्धशूलपाणिस्तु

भी पुण्य कहनेके लिये अयन पढ़ा है, नहीं तो संक्रांतिके ग्रहणसे ही सिद्ध रहा, अयनका ग्रहण व्यर्थ हो जाता, यह अपरार्क ग्रन्थमें कहा है। हेमाद्रि ग्रन्थमें भी गालवऋषिका यह वचन है कि,जब अयनांशके तुल्य समयसे मकर और कर्कके सूर्यमें दक्षिणायन और उत्तरायण यह दोनों स्फुट हों तब संक्रांतिके समयमें विष्णुपद आदि नाम संक्रांतिके कथन किये हैं और उन्हीं गालवऋषिने यह व्याख्या की है कि, अयनांशके बीतनेपर जो संक्रांतिका समय है उसीमें उस संक्रांतिका पुण्यकाल समझना और वह काल मेषायन वृषायन इस प्रकार सब संक्रांतियोंमें जानना चाहिये । और माधवीयग्रन्थमें भी जाबालि ऋषिने कथन किया है कि, संक्रांतिमें जैसा पवित्र काल होता है, वैसा ही उसके अयनमें होता है।मकरके अयनमें पहली बीस घड़ी और मकरकी संक्रांतिमें पिछली बीस घड़ी पुण्यकाल होता है । और संक्रांतियोंके अयनमें उस २ संक्रांतियोंके तुल्य विष्णुपद आदि प्रवृत्त होते हैं, ऐसा जानना । इससे उस २ संक्रांतियोंका पुण्यसमय उस २ अयनमें भी जानना । विष्णु-पद आदि संक्रांतियोंका स्वरूप दीपिकाग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है कि, वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ इनकी संक्रांतिको विष्णुपद कहते हैं, कन्या, मीन, धनु,मिथुन इनकी संक्रांतिको षड-शीत्यानन कहते हैं, तुला और मेषकी संक्रांतिको विषुव कहते हैं।मकरकी संक्रांतिको उत्तरा-यण और कर्ककी संक्रांतिको दक्षिणायन कहते हैं और संक्रांतिके दिन पिंडरहित श्राद्ध करना चाहिये । कारण कि, अपरार्कमें मत्स्यपुराणका यह वचन है कि, दोनों अयन और दोनों विषुव और सब संक्रांतियोंमें पिंडको त्यागकर श्राद्ध करना चाहिये।और श्राद्धशूलपाणिका तो

अस्य निर्मूलत्वात् । समूलत्वेऽपि–" ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु । त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि ॥" इति मात्स्योक्तेर्ग्रहणाग्रहणवद्विकल्प एव इत्याह । तन्न । अस्य पार्वणानुवादकत्वेन पिण्डाविधायकत्वात् । पिण्डो व्यक्तिः । अन्यथैकपदे पिण्डानुवादे त्रित्वविधौ वषटकर्तुः प्रथमभक्षवद्वैरूप्यापत्तेः । तथा चोभयसमूलत्वे पिण्डरहितं पार्वणं कर्तव्यमित्युभयवचनयोरर्थः । त्रिपिण्डशब्दे- नैकोद्दिष्टव्यावर्तनमात्रम् । मंगलकृत्येषु विशेषमाह ज्योतिर्निबन्धे नारदः– "त्याज्याः सूर्यस्य संक्रांतेः पूर्वतः परतस्तथा । विवाहादिषु कार्येषु नाड्यः षोडश षोडश ॥" इति । एतत् पुण्यकालोपलक्षणम् । "भानोः संक्रान्तिभोगश्च कुलिक- श्चार्धयामकः ।" इति ज्योतिःप्रकाशे वर्ज्येषु परिगणनात् । अयनव्यतिरिक्तासु दशसु संक्रान्तिषु रात्रौ स्नानश्राद्धादि न कार्यम् । "अह्नि संक्रमणे कृत्स्नमहः पुण्यं प्रकीर्तितम् । रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्धं स्नानदानयोः ॥ अर्धरात्रादधस्तस्मिन्म- ध्याह्नस्योपरि क्रिया । ऊर्ध्वं संक्रमणे चोर्ध्वमुदयात्प्रहरद्वयम् ॥ पूर्णे चेदर्धरात्रे तु

यह कथन है कि, यह वचन अप्रमाण है और यदि यह वचन मूलसहित हो तो भी इस मत्स्यपुराणके मतसे इसके मानने और न माननेमें विकल्प हो सकता है। कारण कि, उससे लेकर संक्रांति और सूर्य चन्द्रके पर्वोंमें ३ पिंडका श्राद्ध करे और मृत्युमें एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। इस मत्स्यपुराणके कहनेसे ग्रहण और अग्रहणसे विकल्प आता है, सो ठीक नहीं, कारण कि,यह वचन पार्वणश्राद्धका अनुवाद (कहेका कहना) है, पिंडका विधायक नहीं है। पिंड नाम यहां- पर व्यक्ति (प्रगटता) का है, यदि और अर्थ मानोगे तो पिंडका अनुवाद और पिंडकी विधि दोनों माननेसे उसका प्रकार दो प्रकार होगा, जैसे वषट् करनेवालेके प्रथम भक्ष्यमें होता है। अर्थात् जो यज्ञमें वषट् करे वह प्रथम भोजन करे और अन्य ऋत्विज पीछेसे करें। इस प्रकार दोनोंके समूल होनेमें पिंडरहित पार्वण करना यह दोनों वचनोंका अर्थ है। त्रिपिंड शब्दसे एको- द्दिष्टका व्यावर्तन मात्र है। मंगलकृत्यमें विशेष कहा है, सो ज्योतिर्निबंधमें नारदजीका वचन है कि,सूर्यकी संक्रान्तिसे पहिले और पीछेकी सोलह२घड़ी विवाहादि कार्योंमें छोड़ देनी चाहिये। यह भी पुण्यकालका जतानेवाला है अर्थात् जिस संक्रांतिका जितना पुण्य हो उतना ही त्याग दे। कारण कि,सूर्यकी संक्रांतिके भोग कुलिक और अर्द्धयामको छोड़ देना चाहिये, इस वाक्यसे ज्योतिःप्रकाशग्रन्थमें निषिद्धोंमें सर्व संक्रांतिके भोगको गिना है। दक्षिणायन और उत्तरायणकी पहिली संक्रांतिसे भिन्न दश संक्रांतियोंमें रात्रिके समय स्नान और श्राद्ध आदि करना न चाहिये। कारण कि, दिनमें संक्रांति हो तो संपूर्ण दिन पुण्य कहा है और रात्रिमें संक्रांति हो तो आधा दिन स्नानदानमें पुण्यका होता है। जो संक्रांति आधी रातसे प्रथम हो तो मध्याह्नसे ऊपर कर्म करे, आधीरातसे पीछे संक्रांति हो तो सूर्योदयसे दो प्रहरतक अगले दिन पुण्यकाल है और जो पूर्ण आधी रातके समय संक्रांति हो मकर और कर्कको छोड़कर

यदा संक्रमते रविः । प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं मुक्त्वा मकरकर्कटौ ॥" इति वृद्धवसिष्ठादिवचनैरहःपुण्यत्वोक्त्या "रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिवा कुर्यात्तु तत्क्रियाम् । पूर्वस्मात्परतो वापि प्रत्यासन्नस्य तत्फलम् ॥" इति वसिष्ठवचनाच्चार्थाद्रात्रौ स्नानादिनिषेधप्रतीतेः । यानि तु--"विवाहव्रतसंक्रान्तिप्रतिष्ठाऋतुजन्मसु । तथोपरागपातादौ स्नाने दाने निशा शुभा ॥" इति "राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु । स्नानदानादिकं कुर्युर्निशि काम्यव्रतेषु च ॥" इत्यादीनि विष्णुगोभिलादिवचनानि तानि मकरकर्कसंक्रान्तिविषयाणि । 'मुक्त्वा मकरकर्कटौ' इति तयोर्दिवानुष्ठानस्य पर्युदस्तत्वादिति हेमाद्रिमाधवादयः । वस्तुतस्तु प्रागुक्तवचनेन तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेव प्रागुक्तवचनेन तयोर्दिनद्वयपुण्यत्वादेरेव पर्युदासान्मकरकर्कटयोरपि 'स्नानं दानं परेऽहनि' इत्यादिभिरहःपुण्यत्वोक्तेः । अहःपुण्यत्वानुपपत्त्या कल्प्यरात्रिनिषेधस्य च प्रत्यक्षरात्रिविधिना बाधात्सर्वसंक्रांतिषु रात्रावनुष्ठानविकल्पः । स च देशाचाराद्व्यवतिष्ठत इति युक्तः पन्थाः ॥ अयनयोस्तु वक्तव्यो विशेषः श्रावणे माघे च वक्ष्यते । ज्योतिर्निबन्धे गर्गः--"यस्य जन्मर्क्षमासाद्य रविसंक्रमणं

दोनों दिनमें पुण्यकाल है, इस प्रकार इन वृद्धवसिष्ठादिके वचनोंसे दिनको ही पवित्र कहा है। यदि सूर्यकी संक्रांति रात्रिके समय हो तो समीपके पहले वा पिछले दिनमें कर्म करे, इस वसिष्ठके वाक्यसे रात्रिमें स्नान आदिका निषेध विदित होता है । और जो कि, विवाह यज्ञोपवीत संक्रांति प्रतिष्ठा यज्ञ जन्मग्रहण और यात्रा आदिमें स्नान दान करनेमें रात्रि शुभ है । राहुका दर्शन, संक्रांति, विवाह, मरण, वृद्धिकामनाके व्रत इनमें रात्रिके समय भी स्नान दान करे, यह विष्णुगोभिलादि महर्षियोंके वचन हैं । ये दोनों वचन मकर और कर्ककी संक्रांतिके विषयमें जानने चाहिये । कारण कि, मकर और कर्कको त्यागकर दोनों दिन पुण्यकाल है, इस वाक्यसे मकर और कर्ककी संक्रांतिमें दिनमें कर्मानुष्ठान करना निषेध किया है, यह हेमाद्रि माधव आदि कथन करते हैं । यथार्थ तो यह है कि, पहले कहे हुए वचनमें मकर और कर्ककी संक्रांतिके विषय दोनों दिन पुण्यकाल करनेका निषेध है, इससे मकर और कर्कमें भी अगलेमें स्नान और दान करे। इस वचनसे दिनको पुण्य कहनेसे और दिनके पुण्यत्वके विना रातमें निषेध नहीं हो सकता और जहां रात्रिमें पुण्यका विधान किया है उससे रात्रिमें पुण्यनिषेधकी बाधा होनेसे सब संक्रांतियोंमें रातमें कर्मानुष्ठान करनेका विकल्प है अर्थात् करे चाहे न करे और वह विकल्प देशाचारसे माननेके योग्य है, यही मार्ग उचित है । इन मकर और कर्ककी संक्रांतियोंमें जो विशेष कथन है, वह आगे माघ और श्रावणके निर्णयमें हम वर्णन करेंगे । ज्योतिर्निबन्धग्रन्थमें गर्गऋषिने यह कथन किया है कि, जिसके जन्मनक्षत्रमें सूर्यकी संक्रांति हो उस महीनेमें उस मनुष्यके यहां वैर दुःख होकर धनका नाश होता है, उस मनुष्यको

भवेत्। तन्मासाभ्यन्तरे तस्य वैरक्लेशधनक्षयाः॥ तगरसरोरुहपत्रैं रजनीसिद्धार्थ-लोध्रसंयुक्तैः। स्नानं जन्मर्क्षगते रविसंक्रमणे नृणां शुभदम्॥" हेमाद्रौ-"अह्नि चेद्रात्रियुग्मं स्याद्रात्रौ चेद्वासरद्वयम्। संक्रांतिः पक्षिणी ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु॥" यत्तु गौडाः-"संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे। सायंसंध्यां न कुर्वीत कुर्वंश्च पितृहा भवेत्॥" इति कर्मोपदेशिन्यां व्यासोक्तेः सायं पुण्यकाले संध्यानिषे-धमाहुः। तन्निर्मूलम्। अन्यच्च बहु वक्तव्यं विस्तरभीतेर्नोच्यते। इति संक्रान्ति-निर्णयः॥ चान्द्रमासनिर्णयः॥ पक्षयुगजश्चान्द्रो मासः। स द्वेधा। शुक्लादिरमान्तः कृष्णादिः पूर्णिमान्तश्चेति। तथा च त्रिकाण्डमण्डनः-'चान्द्रोऽपि शुक्लपक्षादिः कृष्णादिर्वेति च द्विधा' इत्युक्त्वा देशभेदेन तद्व्यवस्थामाह-'कृष्णपक्षादिकं मासं नाङ्गीकुर्वन्ति केचन। येऽपीच्छन्ति न तेषामपीष्टो विन्ध्यस्य दक्षिणे॥' इति। विन्ध्यस्य दक्षिणे कृष्णादिनिषेधादुत्तरतो द्वयोरभ्यनुज्ञा गम्यते। तत्रापि शुक्लादिर्मुख्यः कृष्णादिर्गौणः। शास्त्रेषु चैत्रशुक्लप्रतिपद्येव चान्द्रसंवत्सरारम्भोक्तेः। तदुक्तं दीपिकायाम्-'चान्द्रोऽब्दो मधुशुक्लगप्रतिपदारम्भः' इति। न हि ये

उचित है कि, तगर, कमल, हलदी, सरसों, पठानीलोधको पकाकर जलमें स्नान करै तो जन्म-नक्षत्रकी संक्रांति शुभदायक होती है। हेमाद्रिग्रन्थमें यह कहा है कि, यदि दिनमें दो रात्रि भोगें और रात्रिमें दो दिन भोगें तो वह संक्रांति दान, पढ़नेके कर्ममें पक्षिणी जाननी, अर्थात् एक रात्रि और अगला पिछला दो दिन उसका पुण्यकाल होता है। जो गौड यह कहते हैं कि, संक्रांति, पूर्णिमा, अमावस, द्वादशी और श्राद्धके दिनमें सायंसध्या न करनी, करनेसे पितृहत्यारा होता है, यह कर्मोपदेशनीमें व्यासकी उक्ति है। सन्ध्यापुण्यकालमें जो संध्याका निषेध कहा है वह निर्मूल है और भी बहुत कहते, पर विस्तारके भयसे नहीं कहते। इति संक्रांतिनिर्णयः॥ दो पक्षोंका चान्द्रमास होता है, शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदसे वह दो प्रकारका है। अर्थात् शुक्लपक्षसे अमावसतक और कृष्णपक्षसे पूर्णिमातक, यह त्रिकाण्डमण्डन कहते हैं कि, चन्द्रमा शुक्ल और कृष्णपक्षके भेदसे दो प्रकारका है, यह कहकर देशाचारसे उसकी व्यवस्था कही है कि, कोई कृष्णपक्षादिमासको स्वीकार नहीं करते और जो स्वीकार भी करते हैं वे विन्ध्या-चलके दक्षिणमें नहीं मानते, इससे विन्ध्याचलके दाक्षिणमें कृष्णपक्षादि मासका निषेध करनेसे विन्ध्यके उत्तरमें दोनोंके माननेकी अनुज्ञा प्राप्त हुई। उनमें भी शुक्लपक्षादि मास मुख्य और कृष्णादि गौण हैं। शास्त्रोंमें चैत्रशुक्ल प्रतिपदा ही चंद्रसवत्सरके आरंभमें कही है, सोई दीपिकामें कहा है कि, चैत्र शुक्ल प्रातिपदासे आरंभवाला चान्द्र वर्ष है और जो कृष्णपक्षादि

---

१ विषुवअयनके दिनमें संक्रमण होनेपर पूर्व पर रात्रियें वह दिन अध्यापन वा अध्ययनमें वर्जित है। रात्रिकी संक्रान्तिमें पूर्व पर दिनकी वह रात्रियें त्याग देनी, इस प्रकार पक्षिणी संक्रान्ति है, बारह पहर तक अनध्याय यह तात्पर्य है।

कृष्णादिं मन्यन्ते तेषां वत्सरारम्भो भिद्यते । अतः शुक्लादिर्मुख्यः कृष्णादिना मलमासासंभवाच्च । चन्द्रस्य सर्वनक्षत्रभोगेन नाक्षत्रो मासः । सावनादीनां व्यवस्थोक्ता हेमाद्रौ ब्रह्मसिद्धान्ते–'अमावास्यापरिच्छिन्नो मासः स्याद्ब्राह्मणस्य तु । संक्रान्तिपौर्णमासीभ्यां तथैव नृपवैश्ययोः ॥' अत्र ब्राह्मणादीनां यत्र कर्मविशेषे वचनान्तरेण 'वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' इत्यादिवन्मास उक्तः । तत्र दर्शान्तत्वमात्रं नियम्यते न तु सर्वकर्म्मसु दर्शान्त एवेति । वृष्ट्याद्यर्थसौभरेडीषादिनिधननियमवद्विधिलाघवात् । त्रैवर्णिकानां सर्वकर्मसु मासविशेषविधेः सावनादीनां शूद्रानुलोमादिपरत्वापत्तेश्चेति गुरुचरणाः । ज्योतिर्गर्गः--'सौरो मासो विवाहादौ यज्ञादौ सावनः स्मृतः । आब्दिके पितृकार्ये च चान्द्रो मासः प्रशस्यते ॥' ऋष्यशृंगः--'विवाहव्रतयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते । पार्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके ॥' स्मृत्यन्तरे 'एकोद्दिष्टविवाहादौ ऋणादौ सौरसावनौ ।' ज्योतिर्गर्गः--'आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा । सावनेनैव कर्तव्या शत्रूणां चाप्युपासना ॥' विष्णुधर्मे–'नक्षत्रसत्राण्ययनानि चैन्दोर्मासेन कुर्याद्भगणात्मकेन' इति । ब्राह्मे–'तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च । विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत् ॥' अथ मलमासक्षयमासनिर्णयः । अथ मलमासः । तत्रैकमात्रसंक्रान्तिरहितः

महीना मानते हैं, उनके मतमें भी वर्षके आरंभका भेद नहीं है, इससे शुक्लादि मुख्य हैं । कृष्ण आदि माननेसे मलमास भी प्राप्त न हो सकेगा, चन्द्रमाके सम्पूर्ण नक्षत्रोंके भोगसे नाक्षत्रमास होता है । हेमाद्रिके ब्रह्मसिद्धान्तमें सावनादि वर्षोंकी व्यवस्था वर्णन की है । ब्राह्मणका अमावास्यातक, क्षत्रिय और वैश्यका संक्रांति और पूर्णिमातक मास मानना । यहां ब्राह्मणादिका जिस कर्मविशेषमें वचनान्तरसे वसन्तऋतुमें ब्राह्मण अग्निस्थापन करे इत्यादि महीना कहा है । वहां अमावास्यातक महीना माननेका नियम है, न कि सम्पूर्ण कर्मोंमें अमावसतक माननेका । कारण कि, वृष्टि आदिके निमित्त जैसे पशुकल्पका नियम है इसी भांति विधिकी लाघवतासे और द्विजातियोंके सब कर्मोंमें मासविशेषके विधानसे सावनादि महीने शूद्र अनुलोमादिकोंके माननीय हैं, यह गुरुचरण कहते हैं । ज्योतिर्गर्गका कथन है कि, विवाहादिमें सौरमास, यज्ञादिमें सावन और पिताके आब्दिक (क्षयाह) के दिन चान्द्रमास श्रेष्ठ है । शृंगऋषिका कथन है कि, विवाह, यज्ञोपवीत, यज्ञ इनमें सौर मास पार्वण अष्टकाश्राद्ध आदिकमें चान्द्रवर्ष मानने योग्य हैं और स्मृतिमें लिखा है कि, एकोदिष्ट विवाहादि और ऋणादिमें सौर और सावनमास मानने उचित हैं । ज्योतिर्गर्ग कहते हैं कि, अवस्था दायविभाग प्रायश्चित्त क्रिया तथा शत्रुसेवा सावनमासमें करनी चाहिये । विष्णुधर्ममें लिखा है, नक्षत्रोंका यज्ञ और दोनों अयन यह दोनों २७ नक्षत्रोंके भोगरूप चान्द्र माससे करे । ब्राह्मपुराणमें लिखा है कि, तिथिके कार्यमें कृष्णपक्ष आदि और यज्ञोपवीतमें शुक्लपक्ष आदि और विवाह आदिमें सौर आदि मासको मानना चाहिये । मलमासका निर्णय कहते हैं

सितादिश्चान्द्रो मासो मलमासः। एकमात्रसंक्रान्तिराहित्यमसंक्रांतत्वेन संक्रांतिद्वयवत्त्वेन च भवतीति। मलमासो द्वेधा--अधिमासः क्षयमासश्चेति। तदुक्तं काठकगृह्ये--'यस्मिन्मासे न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। मलमासः स विज्ञेयो मासः स्यात्तु त्रयोदशः॥' इति। सत्यव्रतोऽपि-"राशिद्वयं यत्र मासे संक्रमेत्तु दिवाकरः। नाधिमासो भवेदेष मलमासस्य केवलम्॥" इति। अधिकमासस्य कालनियममाह वसिष्ठः-'द्वात्रिंशद्भिर्गतैर्मासैर्दिनैः षोडशभिस्तथा। घटिकानां चतुष्केण पतत्यधिकमासकः॥' इति। एतच्च सावनादिमानेन सम्भवार्थं, न तु नियमार्थम्। अन्यथा षोडशदिनाधिकद्वात्रिंशन्मासानन्तरं कृष्णपक्षनियमेन शुक्लादित्वभंगापत्तेः। तेन न्यूनाधिककाले मलमासपातेऽपि न दोषः। अत एवोक्तं माधवीये-'मासे त्रिंशत्तमे भवेत्' इति। क्षयस्यापि ज्योतिःशास्त्रे-'असंक्रान्तिमासोऽधिमासः स्फुटं स्याद्द्विसंक्रांतिमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयः कार्तिकादित्रये नान्यतः स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं च॥' एकः क्षयात्पूर्वः, परतश्चैक इत्यधिमासद्वयं भवतीत्यर्थः। अत्र विशेषमाह जाबालिः-'मासद्वयेऽब्दमध्ये तु संक्रान्तिर्न यदा भवेत्। प्राकृतस्तत्र पूर्वः स्यादधिमासस्तथोत्तरः'॥ इति।

कि, एक मात्र संक्रांतिसे रहित जो शुक्लपक्ष आदि चान्द्रमास है, उसको मलमास कहते हैं, एक मात्र संक्रांतिसे रहित वह होगा कि, जिसमें सर्वथा संक्रांति न हो, वा दो संक्रांति हों। उस मलमासके दो भेद हैं, एक अधिकमास दूसरा क्षयमास। यही वार्त्ता काठकगृह्यने कही है कि, जिस महीनेमें संक्रांति न हो, वा दो संक्रांति हों वह तेरहवां मलमास जानना उचित है। सत्यव्रत भी कहते हैं कि, जिस महीनेमें सूर्य दो संक्रांतिको भोगै वह केवल अधिकमास ही नहीं होता है, मलमास होता है। और अधिकमासके कालका नियम वसिष्ठजीने यह वर्णन किया है कि, बत्तीस महीनेमें और सोलह दिन और चार घड़ीके बीतने पर अधिक मास पडता है, यह बात भी सावन आदि मानसे सम्भवके निमित्त है, मानके निमित्त नहीं। अन्यथा सोलह दिन और बत्तीस मासके अनन्तर कृष्णपक्ष आनेके नियमसे मलमासको शुक्लपक्ष आदि माना है, वह दूर होजायगा। उससे पूर्वोक्तसे अधिक वे न्यूनमें मलमास आपडे तो कुछ दोष नहीं होगा, इसीसे माधवीयग्रन्थमें कहा है कि, तीसवें महीनेमें मलमास होता है। ज्योतिश्शास्त्रमें क्षयमासका भी कथन है कि जिस महीनेमें संक्रांति न हो वह अधिकमास और जिस मासमें दो संक्रांति यदि हो जायँ वह क्षयमास होता है, और वह क्षयमास कार्त्तिक आदि तीन महीनोंमें होता है, औरमें नहीं। और जिस वर्षके मध्यमें क्षयमास होता है, उसमें दो अधिकमास होते हैं, एक क्षयसे पूर्व और एक पश्चात् होता है। और इसमें जाबालिऋषिने यह विशेष कथन किया है कि, जिस वर्षके मध्यमें दो महीनेमें संक्रांति न हो उन दोनों मासोंमें पहिला प्राकृत और दूसरा अधिकमास होता है। और दूसरेमें ही अधिक समय होता है पहलेमें

उत्तर एव कालाधिक्यं, न पूर्वस्मिन्नित्यर्थः । यत्तु ब्रह्मसिद्धान्ते–'चैत्रादर्वाङ् नाधिमासः परतस्त्वधिको भवेत् ।' इति । तत्र चैत्रात्पूर्वमसंक्रान्तिद्वये पूर्वो नाधिकः, किं तु पर इत्यर्थः । यच्च ज्योतिःसिद्धान्ते–'घटकन्यागते सूर्ये वृश्चिके वाथ धन्विनि । मकरेवाथ कुम्भे वा नाधिमासो विधीयते ॥' इति । तत् वृश्चिकादिचतुष्टये मलमासे सति पूर्वम्, तुलाकन्यागते सूर्ये क्षयात् पूर्वं कालाधिक्यनिषेधार्थं, न त्वधिकमात्रस्य । '.दशानां फाल्गुनादीनां प्रायो माघस्य च क्वचित् । नपुंसकत्वं भवतीत्येष शास्त्रविनिश्चयः ॥' इति हेमाद्रौ विष्णुधर्मविरोधात् मलमासेऽष्टकादिनिषेधानुपपत्तेश्च । ' मकरे वाथ कुम्भे वा ' इति दृष्टान्तार्थमाप्त्यभावाच्च । क्षयस्यागमनकाल उक्तः सिद्धान्तशिरोमणौ–'गतोऽब्ध्यद्रिनन्दैर्गते शाककाले तिथीशैर्भविष्यत्यथाङ्गाक्षसूर्यैः । गजाद्यग्निभूभिस्तथा प्रायशोऽयं कुवेदेन्दुवर्षैः क्वचिद्गोकुभिश्च ॥' इति । अब्धयश्चत्वारः, अद्रयः सप्त, नन्दाः नव, एषां प्रातिलोम्येन पाते ९७४ तैर्मिते वर्षे कश्चित् क्षयमासः पूर्वं जात इत्यर्थः । तिथयः पञ्चदश ईशा एकादश एवं १११५ मिते याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः । अङ्ग ६ अक्ष ५ सूर्याः १२ एकत्र १२५६, गजाः ८ अद्रयः ७ अग्नयः ३ भूः १ एकत्र १३७८, कुः १ वेदाः ४ इंदुः १ एकत्र १४१,

---

नहीं यह इसका अर्थ है, और जो ब्रह्मसिद्धान्तमें यह कथन किया है कि, चैत्रसे पहिले अधिकमास नहीं होता और परे होता है इसका यह अर्थ कि, चैत्रसे पहिले दो मासोमें संक्रांति न होय तो पहिला अधिकमास नहीं होता किन्तु दूसरा होता है । और जो ज्योतिस्सिद्धांतमें कथन किया है कि तुला, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर और कुम्भ राशियोंपर सूर्य हो तो अधिकमास नहीं होता, इन पूर्वोक्त दोनों वचनोंमें पहला वचन वृश्चिक आदि चार राशियोंमें मलमास होनेपर जानना चाहिये । और दूसरा वाक्य तुला और कन्याके सूर्यमें क्षयमाससे पहिले होनेवाले अधिकमासके अधिक कालका ही निषेध करता है, अधिकमासका नहीं कारण कि, फाल्गुन आदि दश और क्वचित् माघ यह ग्यारह महीने ही प्रायः संक्रांति रहित होते हैं, यह शास्त्रका सिद्धान्त है । इस हेमाद्रिमें विष्णुधर्मके कहे वचनसे विरोध होगा, और मलमासमें अष्टका श्राद्धका निषेध भी संगत न होगा और पूर्व कहे मकर वा कुम्भमें अधिक मास नहीं होता, यह वचन दृष्टान्तके निमित्त है, निषेधके निमित्त नहीं कारण कि इन दोनों संक्रांतियोंमें अधिकमासकी प्राप्ति ही नहीं होती क्षयमासके आनेका समय सिद्धांतशिरोमणि ग्रन्थमें इस प्रकार कहा है कि, अब्धि ४ अद्रि ७ नन्द ९ इतने (९७४) शक बीतनेपर कोई क्षयमास बीत गया । और तिथि १५ ईश ११ इस (१११५) शाकेके बीतनेपर कोई क्षयमास होगा । और अङ्ग ६ अक्ष ५ सूर्य १२ इतने (१२५६) शाके बीतनेपर और गज ८ अद्रि ७ अग्नि ३ भू १ (१३७८) इतने शाके बीतनेपर कु १ वेद ४ इन्दु १ (१४१) इतने वर्ष

गावः ९ कुः १ एकत्र १९ एतैर्मिते वर्षे याते कश्चिद्भविष्यतीत्यर्थः ॥ मलमासे कार्याकार्यनिर्णयः। अथ मलमासे कार्याकार्यं निरूप्यते ॥ तत्र जाबालिः-"नित्यनैमित्तिके कुर्याच्छ्राद्धं कुर्यान्मलिम्लुचे । तिथिनक्षत्रवारोक्तं काम्यं नैव कदाचन ॥" अयं च काम्यनिषेध आरम्भसमाप्तिविषयः। "असूर्या नाम ये मासा न तेषु मम संमतः। व्रतानां चैव यज्ञानामारम्भश्च समापनम् ॥" इति तेनैवोक्तत्वात् । असूर्या अधिकमासा इत्यर्थः। तत्र 'मण्डलं तपते रविः' इति वचनात् । कारीर्यादेः काम्यस्य त्वारम्भसमाप्ती भवत एवेत्यादिरन्यत्र विस्तरः। काठकगृह्येऽपि-'मलेऽनन्यगतिं कुर्यान्नित्यां नैमित्तिकीं क्रियाम्' इति । तानि नैमित्तिकानि दीपिकायामुक्तानि-'यन्नैमित्तिकमाग्निनष्टच तुगताग्न्याधानमर्चासु वा संस्कारादिविलोपने सति पुनः प्रोक्तं प्रतिष्ठादिकम्' इति । गत्यन्तरयुतं तु सोमादि हेयमेव । तत्र कर्तव्यान्युक्तानि कालादर्शे-"द्वादशाहं सपिण्डान्तं कर्म ग्रहणजन्मनोः । समिन्ते पुंसवे श्राद्धं द्वावेतौ जातकर्म च ॥ रोगे शान्तिरलभ्ये च योगे श्राद्धव्रतानि

बीतनेपर गो ९ कु १ (१९) इन वर्षोंके बीतनेपर कोई क्षयमास होगा । अब मलमासमें करने और न करनेका विचार करते हैं । जाबालिऋषि कहते हैं कि, मलमासमें नित्यकर्म (संध्या आदि, और नैमित्तिक (जातकर्म आदि) कर्म और श्राद्ध कर्मको करे और तिथि, नक्षत्र और वारमें कहे हुए काम्यकर्म फलकी इच्छासे कभी न करे, यह काम्यकर्मका निषेध भी उसी काम्यकर्मका है जिसके प्रारम्भ समाप्ति दोनों मलमासमें ही होजायँ, कारण कि, जो मास सूर्यरहित (मळ) हैं, उनमें व्रत और यज्ञोंका आरम्भ और पूर्ति मुझे सम्मत नहीं है, यह उन्हीं जाबालिका वचन है कि, मलमासोंमें सूर्यका मण्डल तपता है,कारीरी आदि यज्ञोंका तो प्रारम्भ और पूर्ति इसीमें होजाती है इसका विस्तार दूसरे ग्रन्थोंमें है, काठक गृह्यसूत्रमें यह कहा है कि, मलमासमें अनन्य गति होनेसे उस नित्य नैमित्तिक कर्मको करे जो फिर हो सके और वे नैमित्तिक कर्म दीपिकामें लिखे हैं कि,अग्निके नष्ट होनेपर अग्निका स्थापन और प्रथमसंस्कारके नाश होनेपर दूसरी बार कहे हुए प्रतिष्ठा आदि नैमित्तिक कर्म मलमासमें भी करलेने, कारण कि, ये तत्काल करने उचित हैं और जो सोम आदि फिर हो सकते हैं वे छोडदेने, मलमासमें कर्म ग्रहण,जातकर्म,सीमंत और पुंसवनसंस्कार इन चारोंमें करने योग्य श्राद्ध और दोनों सीमंत और पुंसवनसंस्कार रोगमें शान्ति और अलभ्य योगमें श्राद्ध व्रत और प्रायश्चित्तके निमित्त कर्म पहले

---

१ और जो कहते हैं मलमासके प्रवृत्त होनेसे पहले काम्यकर्म समाप्त न हुआ हो तो मलमासके आनेपर उसकी समाप्ति हो जाती है इसमें सन्देह नहीं, यह सावनमासमें प्रवृत्त कृच्छ्रचान्द्रायणादिपर जानना यह माधव कहते हैं । जिसका अन्यमासके अनुष्ठानमें कालके अतिक्रमसे प्रायश्चित्तापत्ति हो, विहितकालके प्राप्त न होनेसे वा लोप हो ॥

च । प्रायश्चित्तनिमित्तस्य वशात्पूर्वं परत्र च ॥ अब्दोदकुम्भमन्वादिमहालययुगादिषु। श्राद्धं दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धमूनादिमासिकम् ॥ मलिम्लुचान्यमासेषु मृतानां श्राद्धमाब्दिकम् । श्राद्धं तु पूर्वदृष्टेषु तीर्थेष्वेव युगादिषु ॥ मन्वादिषु च यद्दानं दानं दैनन्दिनं च यत् । तिलगोभूहिरण्यानां संध्योपासनयोः क्रिया ॥ पर्वहोमश्चाग्रयणं साग्नेरिष्टिश्च पर्वणि । नित्याग्निहोत्रहोमश्च देवतातिथिपूजनम् ॥ स्नानं च स्नानविधिनाप्यभक्ष्यापेयवर्जनम् । तर्पणं वा निमित्तस्य नित्यत्वादुभयत्र च ॥" इति । एतौ पुंसवनसीमन्तौ ॥ एतच्च गर्भाधानाद्यन्नप्राशनान्तसंस्कारोपलक्षणम् । तदुक्तं दीपिकायाम्--"गर्भाधानमुखं च चौलविधितः प्राग्जातयागं विना कृच्छ्रेष्वाग्रयणं गजेन्द्रपुरतश्छाया मघानङ्गयोः। तीर्थेंदुक्षययोश्च पित्र्यमधिके मास्येवमाद्याचरेत् ॥" इति । अलभ्ययोगेऽर्धोदयपद्मकादौ काम्यान्यपि व्रतादीनि [1]कार्याणीत्यर्थः। पूर्वे परत्र मले शुद्धे चेत्यर्थः। महालयशब्देन मघात्रयोदश्युच्यत इति माधवः ॥ दर्शश्राद्धं मलेऽपि कार्यम् ॥ यत्तु ऋष्यशृङ्गः--"संवत्सरातिरेकेण मासो यः स्यान्म-

---

मलमासमें वा पिछले शुद्धमासमें करने उचित हैं और क्षयतिथिके दिन घटदान और मन्वादि, महालय अर्थात् (कन्यागत वा मघा त्रयोदशी) युगादि और अमावस इसमें श्राद्ध और नित्यश्राद्ध और ऊनमासिक श्राद्ध मलमासमें करे, और मलमासमें अन्यमासमें मृतकोंका वार्षिकश्राद्ध कर और पहिले कहे हुए तीर्थ और युगादि तिथियोंमें भी श्राद्धको करे और जो दान मन्वादि तिथियोंका और यव, तिल, गौ, भूमि, सोना इनका नित्य दान है, सन्ध्या और पूजनकर्म अमावस आदि कर्मका होम अगहनकी पूर्णमासीका यज्ञ, और अमावस आदि पर्वमें अग्निहोत्रीका यज्ञ और अग्निहोत्रका नित्यहोम, देवता अतिथिका पूजन, स्नानविधिसे, स्नान, अभक्ष्य अपेयका त्याग, यह मलमासमें करने योग्य हैं। और इसलोक और परलोकमें नित्य होनेसे तर्पणको भी न त्यागे इन श्लोकोंमें पुंसवन और सीमंतसे गर्भाधान आदि अन्नप्राशनपर्यन्त संस्कार समझने, सो यही दीपिकामें कहा है कि, गर्भाधान आदि संस्कार मुण्डनसे पहले जातकर्मके विना दुःखसे अगहन १५यज्ञ गज यक्षतीर्थ और अमावस्यामें पितरोंका श्राद्ध इत्यादि कर्म मलमासमें करना चाहिये, अर्द्धोदय पद्मकादि अलभ्य योगोंमें काम्यव्रत आदि भी करने और अमावसका श्राद्ध मलमासमें भी करना। महालय शब्दसे मघा त्रयोदशी लेनी चाहिये। जो ऋष्यशृंगने यह कहा है कि, वर्षके अनन्तर जो मलमास हो तो उस तेरहवें महीनेमें अमावसके दिन श्राद्ध न

---

१ इसमें बीज यह है, महालयशब्दकी माघत्रयोदशीमें लक्षणा व्यर्थ है। वृद्धिश्राद्ध, सोमयाग, अग्न्याधान, महालय, राज्याभिषेक, काम्यव्रत सूर्यके लंघित होनेपर न करे, इस प्रकार वृद्धकथित निषेधकालातिपात महालयके विषयमें है।

"प्रवृत्तं मलमासात्प्राक्काम्यं कर्म समापितम् । आगते मलमासेऽपि तत्समाप्तिर्न संशयः ॥ वृद्धिश्राद्धं तथा सोममग्न्याधेयं महालयम् । राजाभिषेकं काम्यं च न कुर्याद्भानुलंघिते ॥"

लिम्लुचः। तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्यादिंदुसंक्षये"॥ इति। तत् काम्यदर्शश्राद्धविषयम् 'काम्यं नैव कदाचन' इति वचनात्। दर्शे च काम्यं श्राद्धं "कन्यां कन्यावेदिनश्च" इत्यादिना याज्ञवल्क्येनोक्तम्। नित्यं तु मलेऽपि भवत्येव "दर्शेऽप्यहरहः श्राद्धं दानं च प्रतिवासरम्। गोभूतिलहिरण्यानां मासेऽपि स्यान्मालिम्लुचे"॥ इति मात्स्योक्तेरिति हेमाद्र्यादयः। दिवोदासीयेऽपि-"अनिन्दुरिन्दुपूर्णा च हरिवारा बुधाष्टमीं। नाधिमासे परित्याज्याः सीमन्तान्नाशने शिशोः"॥ इति। अनिन्दुर्दर्शः। 'द्विविधमप्यमाश्राद्धं न कार्यम्' इत्यपरार्कः। 'अत्र यद्विहितं कर्म उत्तरे मासि कारयेत्' इत्युक्तेः॥ 'षष्ट्या तु दिवसैर्मासः' इति शुद्धमासकरणेऽपि शास्त्रार्थोपपत्तेर्दर्शश्राद्धं मले न कार्यमिति प्राचीनगौडाः। शूलपाणिश्च संवत्सरप्रदीपेऽपि-"एकराशिस्थिते सूर्ये यदा दर्शद्वयं भवेत्। दर्शश्राद्धं तदादौ स्यान्न परत्र मलिम्लुचे"॥ अत्रापि नित्यकाम्यभेदेन प्राग्व्यवस्था। तत्र आब्दिकश्राद्धनिर्णयः। यद्यपि कालादर्शे-'सर्वं वार्षिकं मासद्वये कार्यम्' इत्युक्तम्। तथापि हेमाद्रिमाधवापरार्कादिमतात् प्रथमाब्दिकं त्रयोदशे मलमासे, द्वितीयाद्याब्दिकं तु शुद्धमास एव कार्यम्। "असंक्रान्तेऽपि कर्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः। तथैव मासिकं श्राद्धं सपिण्डीकरणं तथा"। इति हारीतोक्तेः। "आब्दिकं

करे, ऐसा वाक्य है कि, अमावसके दिन काम्यश्राद्ध और कन्यागत श्राद्ध कन्यामें करे।इत्यादि याज्ञवल्क्य महर्षिका कहा हुआ नित्यश्राद्ध तो मलमासमें भी होता है। कारण कि, अमावस और प्रतिदिनका श्राद्ध और गौ, भूमि, तिल, सुवर्णका प्रतिदिन दान ये मलमासमें भी होते हैं, यह मत्स्यपुराणका वाक्य है तथा हेमाद्रि आदिका कथन है, दिवोदासीय ग्रन्थोंमें भी लिखा है कि, अमावस,पूर्णिमा, द्वादशी, बुधाष्टमी यह सब सीमंत और बालकके अन्नप्राशन मलमासमें भी न त्यागने चाहिये। अपरार्क तो यह कहते हैं कि, अमावस्याके दिन दोनों प्रकारका श्राद्ध (अपात्रिक और पात्रिक) न करे। कारण कि, मलमासकी अमावसके दिन जो कहा है सो अगले मासमें करे और जब साठ दिनका एक मास है,उसमें शुद्धमासके दिन भी शास्त्र चरितार्थ था, इससे अमावसका श्राद्ध मलमासमें नहीं करना, यह प्राचीन गौड कहते हैं। शूलपाणि संवत्सरप्रदीपग्रन्थमें कहते हैं कि,सूर्यके एकराशिमें स्थित होनेपर यदि दो अमावस हो जायँ तो अमावसका श्राद्ध पहली अमावसको करना दूसरीको नहीं और इसमें भी नित्य काम्यके भेदसे पूर्वके समान ही व्यवस्था है. अर्थात् काम्यश्राद्ध न करे, नित्यका दोष नहीं लिखा है॥ यद्यपि कालादर्शग्रन्थमें सम्पूर्ण वार्षिकश्राद्ध दोनों मासमें करना, तो भी हेमाद्रि, माधव और अपरार्कके मतसे पहला आब्दिक श्राद्ध तेहरवें मलमासमें और द्वितीय वार्षिक आदि तो शुद्धमासमें करने चाहिये। कारण कि, हारीत ऋषिने यह कहा है कि, संक्रान्तिरहित (मल) मासमें प्रथम

प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे । चतुर्दशे तु संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम् । ” इति स्मृत्यन्तरोक्तेश्च । पुनराब्दिकं द्वितियादिवार्षिकं त्रयोदशे मासेऽतीते चतुर्दशाद्यदिने कुर्यादित्यर्थः । यत्तु सत्यव्रतः-“वर्षेवर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि । मलमासे न तत्कार्यं व्याघ्रस्य वचनं यथा ”॥ इति । तद्द्वितीयादिवार्षिकविषयम् ।‘आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे’ इति पूर्वोक्तवचनात् । यत्र द्वादशं मासिकं शुद्धमासे भवति तत्र त्रयोदशेऽधिक एवाद्याब्दिकं कार्यम् । यत्र त्वधिकमध्ये द्वादशं मासिकं तत्र तस्य द्विरावृत्तिं कृत्वा चतुर्दशे शुद्ध एव प्रथमाब्दिकमिति निष्कर्षः । तेन द्वितीयादिशुद्धमास एव पृथ्वीचन्द्रोदये दिवोदासीये मदनपारिजाते चैवम् । मलमासमृतानां तु यदा स एवाधिकः स्यात्तदा तत्रैव कार्यम् । यथाह पैठीनसिः-“मलमासमृतानां तु श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम् । मलमासेऽपि कर्त्तव्यं नान्येषां तु कथंचन ॥ ” इति । हेमाद्रौ व्यासोपि-“मलमासमृतानां तु सौरं मानं समाश्रयेत् । स एव दिवसस्तस्य श्राद्धपिण्डोदकादिषु ”॥ अत्राधिकमृतस्य न द्वितीयाद्यब्देऽपि सौरविधिः, द्वितीयादावन्याधिके वा पूर्वनियमविधिवैरूप्यात्, किंतु प्रथमाब्दिकस्य मले

वार्षिक,मासिक,सपिंडीकरण श्राद्ध करने और अन्य स्मृतिमें भी यह कहा है कि, पहले वार्षिक श्राद्धको मलमासमें भी कर लेना चाहिये। और जब चतुर्दश मास आ जायँ तब द्वितीय वार्षिक आदि १४ मासके प्रथम दिनमें करे, जो सत्यव्रतने कथन किया है कि, माता पिताके मरनेके दिन वर्ष २ में जो श्राद्ध है वह व्याघ्रऋषिके वचनानुसार मलमासमें न करना चाहिये, यह कथन द्वितीय आदि वर्षविषयक है । कारण कि, प्रथम वार्षिक श्राद्ध मलमासमें भी करना चाहिये । यह पूर्वोक्त वचन है, जिस प्राणीकी वर्षी शुद्धमासमें ही आ जाय वहाँ तेरहवें अधिक मासमें ही प्रथम वार्षिक श्राद्ध कर लेना और जिसकी वर्षी अधिकमासके मध्यमें हो वहां उस मासको दूना करके शुद्ध चौदहवेंमें ही प्रथमवार्षिक श्राद्ध करना, यह सिद्धान्त है । इससे द्वितीय आदि शुद्धमासमें ही करना चाहिये और पृथ्वीचन्द्रोदय,दिवोदासीय,मदनपारिजातमें भी यही है कि, जो प्राणी मलमासमें ही मृतक हुए हों और वही मलमास उनके क्षयाहके दिन आपडे, तो उसका श्राद्ध मलमासमें ही कर दे । यही पैठीनसिका वचन है,कि जो प्राणी मलमासमें मृतक हुए हों उनका प्रतिवार्षिक श्राद्ध मलमासमें भी कर दे, औरोंका किसी प्रकार न करे। हेमाद्रिमें व्यासका भी कथन है कि, मलमासमें मृतक हुओंका सौरमान कल्पना करे, उनके श्राद्ध पिण्डादिका वही दिन है । यहां अधिकमासमें मरेकी दूसरे वर्ष सौरविधि नहीं है । कारण कि, द्वितीयादिमें अन्य अधिक वा पूर्व नियमकी विधि विरूप होनेसे । किन्तु पहले

नियमात्। सत्यव्रतेन तद्भिन्नस्य सर्वस्याधिके प्रतिप्रसवमात्रे लाघवात् ॥ अतो न द्वितीयादौ सौरमासप्रसङ्गः। 'चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके। मासपक्षतिथिस्पष्टे' इत्यादिविरोधाच्च। मासिकश्राद्धनिर्णयः। यत्तु वृद्धवसिष्ठः-"श्राद्धीयाहनि संप्राप्ते अधिमासो भवेद्यदि। मासद्वयेऽपि कुर्वीत श्राद्धमेवं न मुह्यति॥" यच्च व्यासः-"उत्तरे देवकार्याणि पितृकार्याणि चोभयोः" इति तन्मासिकादिविषयम्॥ "यौगादिकं मासिकं च श्राद्धं चापरपाक्षिकम्। मन्वादिकं तैर्थिकं च कुर्यान्मासद्वयेऽपि च॥" इति स्मृतिचन्द्रिकोक्तेः। तैर्थिकं तीर्थश्राद्धं, तच्च मासद्वयेऽपि कार्यमिति त्रिस्थलीसेतौ भट्टः। केचित्तु-"प्रतिमासं मृताहे च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम्। मन्वादौ च युगादौ च तन्मासोरुभयोरपि॥" इति मरीचिवचनात्। "वर्षे वर्षे तु यच्छ्राद्धं मातापित्रोर्मृतेऽहनि। मासद्वयेऽपि तत्कुर्याद्व्याघ्रस्य वचनं यथा॥" इति गालवोक्तेश्च प्रत्याब्दिकं मासद्वये कार्यमित्याहुः। तत्तुच्छम्। प्रतिमासं मृताहे क्रियमाणं मासिकम्। प्रतिसंवत्सरं क्रियमाणं कल्पादिश्राद्धम्, इति मरीचिवचसो मदनरत्नेन व्याख्यानात्। गालवीयस्य च 'मासद्वयात्मके क्षयमासे' इति माधवेन व्याख्यानात्। यच्च कैश्चिदुक्तं प्रथमाब्दिकं मासद्वये कार्यम्। "आब्दिकं प्रथमं यत्स्यात्तत्कुर्वीत मलिम्लुचे। त्रयोदशे च संप्राप्ते कुर्वीत पुनराब्दिकम्॥" इति यमोक्तेः तदपि चिन्त्यम्। पुनराब्दिकं

वर्षका तो मलमें होनेसे नियम है। सत्यव्रतने उससे भिन्न सबके अधिकमासके प्रतिप्रसव होनेसे लाघव कहा है, इससे द्वितीयादिमें सौरमासका प्रसंग नहीं है। आब्दिकमें चान्द्रमास इष्ट है। मास, पक्ष, तिथिके स्पष्टमें करे, इत्यादि वाक्योंसे विरोध होगा॥ और जो वृद्धवसिष्ठने यह कथन किया कि, यदि श्राद्धके दिन आनेपर अधिकमास हो तो दोनों मासोंमें श्राद्ध करे, इस प्रकार करनेसे मोहको प्राप्त नहीं होता और जो व्यासने यह कहा है कि, दूसरे मासमें देवताओंके कर्म और दोनोंमें पितरोंके कार्य करने, यह पूर्वोक्त दोनों वचन मासिकश्राद्ध विषयके हैं। कारण कि, स्मृतिचंद्रिकमें लिखा है कि, यज्ञ आदि मासिकश्राद्ध और कृष्णपक्षका श्राद्ध, मन्वादि तिथिका श्राद्ध और तीर्थश्राद्ध इन सबको दोनों मासमें भी करे और त्रिस्थलीसेतु ग्रन्थमें भट्टोंने भी यही कथन किया है। कोई तो यह कहते हैं कि, प्रतिमासका और प्रतिवर्षका श्राद्ध और मन्वादि और युगादि तिथिका श्राद्ध ये सब दोनों मासोंमें होते हैं, इस मरीचिके वचनसे और माता पिताके मरनेके दिन जो वर्ष वर्षमें श्राद्ध है उसको व्याघ्रके वचनानुसार दोनों मासोंमें करे, इस गालवऋषिके वाक्यसे प्रतिवार्षिक श्राद्धको दोनों मासमें करना चाहिये यह उनका कहना निकृष्ट है। कारण कि, प्रतिमास मरनेके दिन जो किया जाय वह मासिक और प्रतिवर्ष जो उक्त दिनमें किया जाय वह आब्दिक श्राद्ध होता है। यह मरीचिके वचनसे मदनरत्नने अर्थ लिखा है और गालवके वचनमें वे दो मास लिये हैं। मासद्वय २ रूप क्षयमास हो यह अर्थ माधवने लिखा है, जो किसीने यह कहा है कि, प्रथमवार्षिक श्राद्ध दोनों मासोंमें करना, जो प्रथम वर्षका श्राद्ध है उसको मलमासमें कर ले और तेहरवें मासमें फिर वार्षिक श्राद्ध करे, यह जो यमने कहा है, सो भी उचित नहीं। कारण कि, पुनराब्दिक पदका

द्वितीयादिवार्षिकं त्रयोदशेऽतीते चतुर्दशे कुर्यात् । 'अन्यथा-"सांवत्सर न वर्धेत श्राद्धं तत्र मृतेऽहनि' इति पैठीनसिविरोधः स्यात् । इति हेमाद्रौ पृथ्वीचन्द्रोदये च । एतेन न वर्धेत न च्छिन्द्याच्छुद्धेऽपि कुर्यादेवेत्यनन्तभट्टव्याख्या मानाभावात् परास्ता । पूर्वव्याख्यायां तु हारीतीये प्रथमग्रहणमेव मानम् । यदपि निर्णयामृते पूर्वोक्तकालादर्शवचनात् मलमासे श्राद्धदिनस्य वन्ध्यत्वनिरासार्थं पित्रुद्देशेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा शुद्धमासे सपिण्डकं श्राद्धं कुर्यात् । 'पिण्डवर्जमसंक्रान्ते संक्रान्तौ पिण्डसंयुतम् । प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमेवं मासद्वयेऽपि च ' इति वृद्धपराशरोक्तेः । तदपि चिन्त्यम् । पूर्वोक्तवचनस्य क्षयपूर्वभाव्यधिकमासविषयत्वात् । तत्र हि मासद्वये श्राद्धमुक्तम् । तदाह सत्यतपाः-"एक एव यदा मासः संक्रान्तिद्वयसंयुतः । मासद्वयगतं श्राद्धं मलमासेऽपि शस्यते ॥" इति ॥ मासद्वयगतं पूर्वसंक्रांतिगतं क्षयगतं च । मलमासे । क्षयमासे । अपिशब्दात् पूर्वाधिमासे चेति हेमाद्रिः । दीपिकायामपि-"तत् प्राक्संग्यधिमासको यदि भवेत्तत्रत्यसांवत्सरं तस्मिञ्छुद्धतया क्षये च वचनात् कुर्याद्द्वयोः कोविदः" इति । कालादर्शेऽप्येतद्विषय एवेत्यलं बहुना । मलमासवर्ज्यानि । मलमासे वर्ज्यान्युक्तानि कालादर्शे-"अनित्यमनिमित्तं च दानं

यह अर्थ है कि द्वितीय वार्षिक आदि श्राद्धको तेरहवेंके बीतनेपर चौदहवें मासमें करे, अन्यथा मरनेके दिन वार्षिकश्राद्ध नहीं बढ़ सकता,इस पैठीनासिके वचनका विरोध होगा, यह हेमाद्रि और पृथ्वीचन्द्रोदयमें कहा है । इस (प्रमाण) के अभावसे यह अनन्तभट्टकी व्याख्या भी खंडित हो गयी कि''न वर्द्धेत'' इसका यह अर्थ है, कि उसका छेदन न करे किन्तु शुद्धमासमेंही उसको करले । पहिले व्याख्यानमें तो हारीतके वचनमें पहिले पदका ग्रहण ही प्रमाण है । यद्यपि निर्णयामृतमें कालादर्शके कथनसे मलमास श्राद्धदिन (निष्फल)न हो,कारण कि, इसमें पिताके निमित्त ब्राह्मणोंको जिमाकर शुद्धमासमें पिंडसहित श्राद्ध करे । कारण कि,जिसमें संक्रांति न हो उसमें पिंडके विना और जिसमें संक्रांति हो उसमें पिंडसहित श्राद्ध करे, यह वृद्ध पराशरने कहा है। इसी प्रकार दोनों मासोंमें करे, सो भी ठीक नहीं, कारण कि, पूर्वोक्त वाक्यका विषय उस अधिकमाससे है, जो क्षयमाससे प्रथम हो और उसमें दोनों महीनोंका श्राद्ध कहा है, सोई सत्यतपाने कहा है कि, जब दो संक्रांतियोंसे युक्त एक मास हो तो उस मलमास(क्षयमास) में दोनों महीनोंका श्राद्ध उत्तम है । हेमाद्रिने और दीपिकाने यही अर्थ लिखा है कि,संक्रांतिवाले मासका और क्षयमासका श्राद्ध यह दोनोंकरे।दीपिकामें यह कथन किया है कि, यदि पहले अधिकमास होजाय तो उसका श्राद्ध वार्षिकश्राद्ध बुद्धिमान् मनुष्यको उस शुद्धमासमें और क्षयमासमें करना चाहिये, कालादर्शमें भी यही कहा है,अब बहुत विस्तार करना उचित नहीं है । कालादर्शग्रन्थमें ये मलमासमें वर्जने योग्य कहे हैं कि. जो

च महदादिकम्। अग्न्याधानाध्वरापूर्वतीर्थयात्रामरेक्षणम् ॥ देवारामतडागादि-प्रतिष्ठा मौञ्जिबन्धनम्। आश्रमस्वीकृतिः काम्यवृषोत्सर्गश्च निष्क्रमः॥ राजाभि-षेकः प्रथमश्चूडाकर्मव्रतानि च। अन्नप्राशनमारम्भो गृहाणां च प्रवेशनम्॥ स्नानं विवाहो नामातिपन्नदेवमहोत्सवः। व्रतारम्भसमाप्ती च कर्म काम्यं च पाप्मनाम्॥ प्रायश्चित्तं तु सर्वस्य मलमासे विवर्जयेत्। उपाकर्मोत्सर्जनं च पवित्रदमनार्पणम्॥ अवरोहश्च हैमंतः सर्पाणां बलिरष्टकाः। ईशानस्य बलिर्विष्णोः शयनं परिवर्तनम्॥ दुर्गेन्द्रस्थापनोत्थाने ध्वजोत्थानं च वाज्रिणः। पूर्वत्र प्रतिषिद्धानि परत्रान्यच्च दैविकम्"॥ इति॥ अत्र मूलवचनानि हेमाद्रिमाधवादिभ्यो ज्ञेयानि॥ दिवो-दासीयेऽपि—"यात्रोत्सवं च देवादिशपथं दिव्यमेव च। मलमासे न कुर्वीत व्याघ्रस्य वचनं यथा" इति॥ क्षयमासेऽपि वर्ज्यावर्ज्ये। अयं निर्णयः क्षयमासेऽपि ज्ञेयः-"रविसंक्रमहीने यो वर्ज्यावर्ज्यविधिः स्मृतः। स एव तु द्विसंक्रांते मलमासेऽप्युदी-रितः"॥ इति काठकगृह्योक्तेः॥ क्षयमासमृतानां प्रत्याब्दिके विशेषो हेमाद्रौ-"तिथ्यर्धे प्रथमे पूर्वो द्वितीयेऽर्द्धे तथोत्तरः। मासाविति बुधैश्चिन्त्यौ क्षयमासस्य मध्यगौ"॥ आब्दिकवर्धापनेऽपि ज्ञेयम्॥ भृगुगुर्वस्तादिवर्ज्यानि। यन्मलमासे

कर्म नित्य न हो, जिसका कोई निमित्त न होवे और महादान, अग्निका आधान, यज्ञ, अपूर्व तीर्थयात्रा, अपूर्व देवताका दर्शन, देव, वापी वा सरोवरकी प्रतिष्ठा, यज्ञोपवीत, संन्यास आदि आश्रमोंका स्वीकार, कामनाके निमित्त वृषोत्सर्ग, बालकको प्रथम घरसे बाहर निकालना, राजाका अभिषेक, प्रथम मुण्डन, व्रत, अन्नप्राशन, गृहोंका आरंभ और प्रवेश, स्नान, विवाह, नामकरण, देवताका महोत्सव, व्रतका आरंभ और पूर्ति, काम्यकर्म और पापोंका प्रायश्चित्त इनको मलमासमें न करे। उपाकर्म और उत्सर्ग, पवित्रियोंका ग्रहण, दमनका अर्पण और हेमंतऋतुका (उत्सव), सर्पोंकी बलि, अष्टकाश्राद्ध, ईशानदेवताकी बलि, विष्णुशयन (कर-वट लेना), दुर्गा, इन्द्रका स्थापन और उत्थान, इन्द्रकी ध्वजाका उठाना ये सब मल वा अधि-कमाससें न करे, इन सबके प्रमाणवचन हेमाद्रि और माधव आदिमें देख लेने। दिवोदासके ग्रन्थमें भी लिखा है, यात्रा, उत्सव, देवताको सौगन्ध और दिव्यकर्मको मलमासमें न करे, यह व्याघ्रने कहा है। यही निर्णय क्षयमासमें भी जानना। कारण कि, काठकगृह्यने कथन किया है कि, सूर्य-की संक्रांतिके सहित मासमें जो त्यागने और करने योग्य कर्मोंकी विधि कही है वही विधि दो संक्रांतिवाले मासमें कही है। जो प्राणी क्षयमासमें मृतक हुए हैं उनके प्रतिवार्षिक श्राद्धमें हेमाद्रि-में यह अधिक कहा है कि, जो तिथिके पूर्वार्द्धमें मरा हो उसका पूर्व और जो उत्तरार्धमें मरा हो उसका उत्तरमास क्षयमासके दोनों मासोंमें जानना और वर्षगांठमें भी वार्षिकके समान

वर्ज्यमुक्तं तच्छुक्रगुर्वोरस्तादिष्वपि ज्ञेयम् । तदाह बृहस्पतिः-"बाले वा यदि वा वृद्धे शुक्रे वास्तंगते गुरौ । मलमास इवैतानि वर्जयेद्देवदर्शनम् । इति ॥ अनादिदेवतां दृष्ट्वा शुचः स्युर्नष्टभार्गवे । मलमासेप्यनावृत्ततीर्थयात्रां विवर्जयेत्"॥आवृत्ततीर्थे दोषाभावमात्रम्, न तु फलम्, इति वाचस्पतिमिश्राः । तन्न । असति बाधके फलहेतुत्वाक्षतेः॥लल्लोऽपि-"नीचस्थेवक्रसंस्थेप्यतिचरणगते बालवृद्धास्तगे वा संन्यासो देवयात्रा व्रतनियमविधिः कर्णवेधस्तु दीक्षा । मौञ्जीबन्धोङ्गनानां परिणयनविधिर्वास्तुदेवप्रतिष्ठा वर्ज्याः सद्भिः प्रयत्नात्रिदशपतिगुरौ सिंहराशिस्थिते च"॥ इति ॥ दीक्षा यागदीक्षा आगमदीक्षा च । तथा-"उद्यानचूडाव्रतबन्धदीक्षाविवाहयात्राश्च वधूप्रवेशः । तडागकूपत्रिदशप्रतिष्ठा बृहस्पतौ सिंहगते न कुर्यात्"॥ दिवोदासीये-"गुर्वादित्ये गुरौ सिंहे नष्ट शुक्रे मलिम्लुचे । गृहकर्म व्रतं यात्रां मनसापि न चिन्तयेत्"॥ अस्यापवादस्तत्रैव ब्राह्मे-"मुण्डनं चोपवासश्च गौतम्यां सिंहगे गुरौ । कन्यागते तु कृष्णायां न तु तत्तीरवासिनाम्"॥ सिंहगुरौ गोदावरीस्नानम् । तथा-"आद्यासौ गौतमी गंगा द्वितीया जाह्नवी स्मृता । सर्वतीर्थफलं स्नानाद्गौतम्यां सिंहगे गुरौ"॥ संहिताप्रदीपे-"स्यात्सप्तरात्रं गुरुशुक्रयोश्च बाल-

---

जानना।जो मलमासमें वर्जना कहा है वह शुक्र और गुरुके अस्त आदिमें भी समझना । सोई बृहस्पतिने कहा है,कि शुक्र वा बृहस्पतिके बालक,वृद्ध और अस्त होनेपर मालमासके समान इन कर्मोंका और सब देवदर्शनको त्याग दे और शुक्रअस्तमें अनादिदेवताओंको देखकर मनुष्य पवित्र हो जाते है और मलमासमें भी उस तीर्थकी यात्रा पहिले कभी की हो उसमें कुछ दोष नहीं और न कुछ फल है यह वाचस्पतिमिश्रका कथन है सो सत्य नहीं, कारण कि, जब कुछ बाधक नहीं तो फल किस कारणसे न होगा, यही लल्लने भी कहा है कि, यदि बृहस्पति नीचका हो वक्री हो, अतिचारी हो,बालक वृद्ध वा अस्त हो और सिंहराशिका हो तो संन्यास, देवयात्रा, व्रतके नियमकी विधि, कर्णवेध, यज्ञ और वेदकी दीक्षा, यज्ञोपवीत, विवाह, वास्तु (घर) और देवताओंकी प्रतिष्ठा, इतने कर्म सज्जन मनुष्य त्याग दे और बाग लगाना, मुंडन, यज्ञोपवीत,विवाह, यात्रा, वधूप्रवेश, तालाव, कूप, देवताकी प्रतिष्ठा यह कर्म सिंहके बृहस्पतिमें न करे। दिवोदासीयग्रन्थमें लिखा है कि, घरका प्रारंभ आदि कर्म, यज्ञोपवीत, यात्रा इतने कर्मोंकी चिन्ता गुर्वादित्ययोगमें, सिंहके गुरुमें, शुक्रके अस्तमें, मलमासमें मनसे भी न करे। इसका अपवाद भी उसी ग्रन्थमें इस ब्राह्मपुराणके वचनसे लिखा है कि, मुंडन उपवास इन दोनोंका सिंहके गुरुमें गौतमीनदीके तीरपर और कन्याके गुरुमें कृष्णानदीके तटके रहनेवाले न करें और वह गौतमी आदिकी गंगा है और दूसरी गंगा जाह्नवी है, इससे सिंहराशिके गुरुमें गौतमीके स्नानसे सब तीर्थोंका फल होता है। और संहिताप्रदीप ग्रन्थमें लिखा है कि, गुरु

त्वमह्नां दशकं च वार्धम्। वृद्धौ सितेज्यावशुभौ शिशुत्वे शस्तौ यतस्तावुपचीयमानौ" ॥ वसिष्ठः—"अतिचारगते जीवे वर्जयेत्तदनन्तरम्। व्रतोद्वाहादिकार्येषु अष्टाविंशतिवासरान् ॥" ग्रहाणां बाल्यादिलक्षणम्। बाल्यादिलक्षणमुक्तं ब्रह्मसिद्धान्ते—"रविणा सत्तिरन्येषां ग्रहाणामत उच्यते। ततोऽर्वाग्वार्धकं प्रोक्तमूर्ध्वं बाल्यं प्रकीर्तितम् ॥" इति। बाल्यादिपरिमाणं च वृत्तशते—"बालः शुक्रो दिवसदशकं पञ्चकं चैव वृद्धः पश्चादह्नां त्रितयमुदितः पक्षमैन्द्यां क्रमेण। जीवो वृद्धः शुचिरपि तथा पक्षमन्यैः शिशू तौ वृद्धौ प्रोक्तौ दिवसदशकं चापरैः सप्तरात्रम् ॥" पश्चिमत उदये दश दिनानि बालः अस्ते पञ्चदिनानि वृद्धः। पूर्वतो दिनत्रयं बालः पक्षं च वृद्ध इत्यर्थः। जीवो गुरुः ॥ अन्यत्र त्वन्यथोक्तम्—"प्राक्पश्चादुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः। विपरीतं तु वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि ॥" इति। एषां च पक्षाणां व्यवस्थामाह मिहिरः—"बहवो दर्शिताः काला ये बाल्ये वार्धकेऽपि वा। ग्राह्यास्तत्राधिकाः शेषा देशभेदादुतापदि ॥" इति। देशभेदश्च मदनरत्ने गार्ग्यः—"शुक्रो गुरुः प्राक्च पराक्च बालो विन्ध्ये दशावन्तिषु सप्तरात्रम्। वङ्गेषु हूणेषु च षट् च पञ्च शेषे

और शुक्र सात दिन बालक और दश दिन वृद्ध होते हैं और ये दोनों वृद्ध तो अशुभ होते हैं और बालक इस कारण शुभ होते हैं कि, आगे बढ़नेवाले हैं, वसिष्ठने कहा है कि, यदि बृहस्पति अतिचारी हो जाय तो उस दिनसे अट्ठाईस २८ दिन व्रत और विवाह आदि कार्योंको त्याग दे ॥ ग्रहोंके बाल्य आदिका लक्षण ब्रह्मसिद्धान्तमें यह कथन किया है कि, सूर्यके संग अन्य ग्रहोंका अस्त कहा है, उस अस्तमें प्रथम वृद्ध और उदयसे पीछे बाल्य और वृत्तशतमें बाल्य आदिका प्रमाण लिखा है, कि यदि शुक्र पश्चिममें उदय हो तो दश दिन बालक और अस्त हो तो पांच दिन वृद्ध होता है और पूर्वके उदयमें तीन दिन बालक और अस्तमें पक्ष भर वृद्ध होता है और बृहस्पतिको भी इसी प्रकार बालक और बूढ़ा जानना। और कोई कोई तो इन दोनोंको पक्षभर बालक और दश दिन वृद्ध और सात दिन बूढा कहते हैं। और अन्य ग्रन्थोंमें तो इस प्रकार अन्यथा कहा है, कि पूर्व और पश्चिममें उदय हुआ शुक्र वा गुरु क्रमसे पांच और सात दिन बालक और इससे विपरीत बूढ़ा होता है। इन सब पूर्वोक्त पक्षोंकी व्यवस्था वराहमिहिर आचार्यने इस प्रकार कही है, कि जो बहुतसे काल बालक और वृद्धके दिखाये हैं, उनमें अधिक काल ग्रहण करने और शेष देशभेदसे वा आपत्कालमें मानने योग्य हैं ॥ और वह देशभेद मदनरत्नमें गर्गके वचनानुसार कथन किया है कि, शुक्र और गुरु पूर्व वा पश्चिममें विंध्याचलके प्रान्तमें दश दिन और उज्जयनके प्रान्तमें सात दिन, और बंगदेशमें छः दिन, हूणदेशमें पांच दिन और शेषके देशोंमें तीन दिन बालक होता है।

च देशे त्रिदिनं वदन्ति ॥" इति । अस्तादेरपवादः काशीखण्डे-"न ग्रहास्तोदयकृतो दोषो विश्वेश्वरालये।" त्रिस्थलीसेतौ वायवीये-"गोदावर्यां गयायां च श्रीशैले ग्रहणद्वये। सुरासुरगुरूणां च मौढ्यदोषो न विद्यते ॥" ग्रहणद्वये तन्निमित्तककुरुक्षेत्रयात्रादानादावित्यर्थः। तदाह त्रिस्थलीसेतौ लल्लः-"उपप्लवे शीतलभानुभान्वोरर्धोदये वै कपिलाख्यषष्ठ्याम्। सुरासुरेज्यास्तमयेऽपि तीर्थे यात्राविधिः संक्रमणे च शस्तः ॥" 'न मूढदोषो न च रात्रिदोषो न चाधिमासो न मृतिर्न सूतिः' एवमप्युत्तरार्धं पठंति। इत्यलं बहुना। मलमासे व्रतनिर्णयः। मलमासे च व्रतविशेष उक्तो हेमाद्रौ पाद्मे-'अधिमासे तु संप्राप्ते गुडसर्पिर्युतानि च। त्रयस्त्रिंशदपूपानि दातव्यानि दिनेदिने॥ साज्यानि गुडमिश्राणि अधिमासे नृपोत्तम। अधिमासे तु संप्राप्ते त्रयस्त्रिंशत्तु देवताः॥ उद्दिश्यापूपदानेन पृथ्वीदानफलं लभेत्। त्रयस्त्रिंशदपूपान्नं कांस्यपात्रे निधाय च॥ सघृतं सहिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्। विष्णुरूपी सहस्रांशुः सर्वपापप्रणाशनः॥ अपूपान्नप्रदानेन मम पापं व्यपोहतु। नारायण जगद्बीज भास्करप्रतिरूपक॥ व्रतेनानेन पुत्रांश्च संपदं चाभिवर्धय। यस्य हस्ते गदाचक्रे गरुडो यस्य वाहनम्॥ शंखः करतले यस्य स मे विष्णुः प्रसीदतु। कलाकाष्ठादिरूपेण निमेषघटिका-

---

और अस्त आदिका निषेध भी काशीखण्डमें कहा है कि, काशीमें ग्रहोंके उदय अस्तका दोष नहीं है, त्रिस्थलीसेतुग्रन्थमें वायुपुराणका यह वचन कथन किया है कि, गोदावरी, गंगा, श्रीशैलपर्वत, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें दान आदि, इनमें सुरगुरु (बृहस्पति) और असुरगुरु (शुक्र) के अस्त आदिका दोष नहीं है। ग्रहणसे चन्द्र सूर्यके दोनों ग्रहण लेने और उनके निमित्त कुरुक्षेत्र यात्रा दानादि करनी, यही त्रिस्थलीसेतुमें लल्ल कहते हैं कि, चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें, अर्द्धोदयमें और कपिलाषष्ठी और संक्रांति इनमें गुरु और शुक्रके अस्त होनेपर भी तीर्थयात्राकी विधि उत्तम है। न मूढदोष, न रात्रिदोष, न अधिकमास, न मरण, न जीवन, इसका दोष नहीं। इस उत्तरार्धको पढ़ते हैं, अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं॥ यहां हेमाद्रि ग्रन्थमें मलमासमें व्रतविशेष पद्मपुराणके वचनसे कथन किया है कि, जब मलमास प्राप्त हो तब तेतीस देवताओंके (निमित्त) गुड घीके ३३ मालपुवे प्रतिदिन देने और हे राजन्! मलमासमें घी और गुडसे मिले तेंतीस मालपुओंको देवताओंके निमित्त देनेसे पृथ्वीदानका फल होता है। ३३ मालपुए कांसीके पात्रमें रखकर घी और सोनेसहित ब्राह्मणको दे और ऐसा कहे कि, विष्णुरूपी सूर्य! अपूप अन्न देनेसे मेरे पापोंको दूर करो, हे जगत्के कारण नारायण सूर्यरूप! इस व्रतसे मेरे पुत्र और सम्पदाओंको वर्धित करो। जिनके हाथमे गदा और चक्र है, गरुड जिनका वाहन है, जिनके हाथमें शंख है वह विष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हो। कला और काष्ठा, निमेष, घटी आदि रूपसे जो सर्व प्राणियोंको वंचित करते हैं, उन

दिना ॥ यो वञ्चयति भूतानि तस्मै कालात्मने नमः। कुरुक्षेत्रमयं देशः कालः पर्व द्विजो हरिः ॥ पृथ्वीसममिदं दानं गृहाण पुरुषोत्तम। मलानां च विशुद्ध्यर्थं पापप्रशमनाय च ॥ पुत्रपौत्राभिवृद्ध्यर्थं तव दास्यामि भास्कर। मंत्रेणानेन यो दद्यात्त्रयस्त्रिंशदपूपकान् ॥ प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं पुत्रपौत्रादिसंपदः ॥" इति निर्णयसिन्धौ मलमासनिर्णयः ॥ तत्र पक्षतिथिवेधनिर्णयौ। पक्षनिर्णयस्तु–'दैवे मुख्यः शुक्लपक्षः कृष्णः पित्र्ये विशिष्यते' इति माधवेनोक्तः। अथ तिथिनिर्णयः। तत्र तिथिर्द्वेधा-शुद्धा विद्धा च। दिने तिथ्यन्तरसंबन्धरहिता शुद्धा। तद्रहिता विद्धा। तत्र शुद्धायामसन्देहाद्विद्धा निर्णीयते। तत्र सामान्यतो वेधमाह माधवीये पैठीनसिः–"पक्षद्वयेऽपि तिथयस्तिथिं पूर्वां तथोत्तराम्। त्रिभिर्मुहूर्तैर्विध्यन्ति सामान्योऽयं विधिः स्मृतः ॥" इति ॥ हेमाद्रिमदनरत्नादौ द्विमुहूर्तोऽप्युक्तः–"उदिते दैवतं भानौ पित्र्यं चास्तमिते रवौ। द्विमुहूर्ता त्रिरह्नश्च सा तिथिर्हव्यकव्ययोः ॥" इति विष्णुधर्मोक्तेः। द्विमुहूर्तत्वं चानुकल्पः–'द्विमुहूर्तापि कर्तव्या या तिथिर्वृद्धिगामिनी' इति दक्षेणापि शब्दोक्तेः। अयं वेधः प्रातरेव। सायं तु त्रिमुहूर्तो वेध एव–"यां तिथिं समनुप्राप्य यात्यस्तं पद्मिनीपतिः। सा तिथिस्त-

---

कालरूप विष्णुको नमस्कार है और यह देश कुरुक्षेत्रके तुल्य और काल पर्वके तुल्य है और यह ब्राह्मण हरि है, हे पुरुषोत्तम ! पृथ्वी समान इस दानको ग्रहण करो और हे सूर्य ! मलोंकी शुद्धि और पापोंके नाश और पुत्र पौत्र आदिकी वृद्धिके निमित्त तुमको यह दान देता हूं, इस मंत्रको पढ़कर जो तेतीस पुए देता है वह बहुत धन और पुत्र पौत्र आदि सम्पत्तियोंको प्राप्त होता है ॥ (इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां मलमासक्षयमासनिर्णयः) ॥ पक्षका निर्णय तो माधव यह कहते हैं कि, देवकर्ममें शुक्लपक्ष और पितृकर्ममें कृष्णपक्ष मुख्य होता है। अब तिथिका निर्णय कहते हैं कि, तिथिके दो भेद हैं शुद्धा और विद्धा, वेधसे रहित शुद्धा और वेधसहितको विद्धा कहते हैं। उन दोनोंमें शुद्धामें तो सर्वथा सन्देह नहीं है, इससे विद्धाका निर्णय वर्णन करते हैं–माधवीय ग्रन्थमें पैठीनसिने सामान्यरीतिसे वेध कहा है कि, दोनों पक्षोंमें सब तिथि अपनेसे पहली और पिछली तिथिको तीन मुहूर्त (६ घटी) से बींधती है, यह सामान्य विधि मानी है और हेमाद्रि मदनरत्न आदिमें तो दो मुहूर्त भी कहे हैं कि, सूर्यके उदयसे दो मुहूर्ततक तिथिमें देवकर्म और अस्तसे तीन मुहूर्ततक तिथि हो तो पितृकर्म और शेष दिन हव्य कव्यमें उत्तम हैं, यह विष्णुधर्ममें लिखा है और ये दो मुहूर्त भी हैं, कारण कि, दक्ष ऋषिके (अपि) शब्दसे अधिक मुहूर्त भी कथन किये हैं कि, जो तिथि बढ़नेवाली हो उसके दो मुहूर्तमें भी कर्मको करे और यह वेध प्रातः कालमें ही जानना चाहिये। सन्ध्याको तो तीन मुहूर्तका वेध होता है, जिस तिथिको प्राप्त

दिने प्रोक्ता त्रिमुहूर्तैव या भवेत्॥ " इति स्कान्दोक्तेः। दीपिकापि-'त्रिमुहूर्त्तगा तु सकला सायं ' इति। यानि तु-"व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैकापि या भवेत्। उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके॥" इत्यादीनि स्कान्दादिवचनानि, तानि वैश्वानराधिकरणन्यायेनावयवस्तुत्या त्रिमुहूर्तप्रशंसापराणि॥ तिथिविशेषे वेधविशेषः स्कान्दे-'नागो द्वादशनाडीभिर्दिक्पञ्चदशभिस्तथा। भूतोष्टादशनाडीभिर्दूषयत्युत्तरां तिथिम्॥' इति। अयं चोपवासातिरिक्तविषय इति वक्ष्यते। इति वेधः॥ तत्र सर्वा तिथिर्यदहःकर्मकालव्यापिनी सैव ग्राह्या। 'कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥' इति विष्णुधर्मोक्तेः। दिनद्वये तद्व्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा युग्मवाक्यान्निर्णयः। तस्य पूर्वाबाधेनोपपत्तेः। कर्मकालस्य प्रधानांगत्वाच्च। युग्मवाक्यं तु निगमः-"युग्माग्नियुगभूतानां षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशी युक्ता चतुर्दश्या च पूर्णिमा॥ प्रतिपद्यप्यमावास्यातिथ्योर्युग्मं महाफलम्। एतद्व्यस्तं महादोषं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥" इति। अत्र रन्ध्रान्ताः शब्दाः द्वितीयादिनवम्यन्ततिथि-

---

होकर सूर्य अस्त हो जाय, तीन मुहूर्त भी वह तिथि उस दिन हो तो स्कन्दपुराणके मतसे उस दिन वही तिथि जाननी। दीपिकाग्रन्थमें भी लिखा है कि, जो सायंकाल तीन मुहूर्ततक हो वह सम्पूर्ण तिथि जाननी और व्रत,उपवास,स्नान आदिमें वह तिथि लेनी, जो उदयके समय एक घड़ी भी हो और पितृकर्ममें इससे विपरीत लेनी,इत्यादि स्कंदपुराणादिके वचन हैं, वे वचन वैश्वानराधिकरण न्यायके अनुसार अवयवकी स्तुतिसे तीन मुहूर्तके ही बोधक हैं॥। स्कंदपुराणमें वेधका भेद तिथिविशेषोंमें कहा है कि, नागसप्तमी ७ बारह घड़ीसे और दशमी और पंचमी दश नाडियोंसे और चतुर्दशी अठारह घडीसे अग्रिमतिथियोंको बींधकर दुष्ट करती है, यह वेधव्यवस्था व्रतसे भिन्न कार्योंमें जानना, यह आगे कहेंगे॥ इति वेधः॥ जो तिथि कर्मके समयतक जिस दिन रहे वही लेनी। कारण कि, विष्णुधर्ममें यह कथन किया है कि, जिस कर्मका जितना समय हो उस कालभर व्यापिनी (रहनेवाली) तिथिमें कर्मोंको करे, बढना और घटना कारण नहीं है। यदि वह तिथि दो दिन हो वा एक किसी समयमें हो तो युग्म वाक्यसे निर्णय करे. वह निर्णय पहली तिथिके बाधसे होगा वा कर्मके समयकी प्रधानतासे जानना। द्वितीया-तृतीया-चतुर्थी-पंचमी-षष्ठी-सप्तमी-अष्टमी-नवमी इन९तिथियोंके,इस प्रकार सात युग्मकी द्वितीयासहित तृतीया और तृतीयासहित द्वितीया आदि और एकादशीसे युक्त द्वादशी और चतुर्दशीसे युक्त पूर्णिमा और प्रतिपदासे युक्त अमावस-इन तिथियोंका युग्मयोग महाफलको देता है और उलटा हो तो महादोष है और पूर्वे किये पुण्यको नष्ट करता है। यह रंध्रान्तशब्द द्वितीयासे नवमी तिथितकके वाचक है, रुद्र

वाचकाः। रुद्र एकादशी द्वितीया तृतीयायुता सा च द्वितीयायुतेति सप्त युग्मानीत्यर्थः ॥ इदं च शुक्लपक्षे अमाप्रतिपद्युग्मस्य पूर्णिमायाश्च तत्रैव सत्त्वादिति केचित् ॥ तत्त्वं त्वमावास्याप्रतिपद्युग्मात् कृष्णपक्षलिङ्गात् पक्षद्वयपरमिदम्। तत्तद्विशेषवाक्यैः कृष्णे तिथिविशेषोऽपोह्यत इति। दशमी तूक्ता पुराणसमुच्चये--'संपूर्णे दशमी कार्या मिश्रिता पूर्वयाथवा' इति। संपूर्णे शुक्लपक्षे त्रयोदशी तु सुमन्तुनोक्ता--"त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशीसहिता मुने" इति। कृष्णपक्षे त्वापस्तम्बः--"प्रतिपत्सद्वितीया स्याद्वितीया प्रतिपद्युता। चतुर्थीसंयुता या च सा तृतीया फलप्रदा॥ पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद। कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ पूर्वविद्धा प्रकर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित्। दशमी च प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम॥ षष्ठ्यष्टमी अमावस्या कृष्णपक्षे त्रयोदशी। एताः परयुताः पूज्याः पराः पूर्वेण संयुताः॥"इति। यत्तु व्याघ्रः--"खर्वो दर्पस्तथा हिंसा त्रिविधं तिथिलक्षणम्। खर्वदर्पौ परौ पूज्यौ हिंसा स्यात्पूर्वकालिकी॥" इति। खर्वः साम्यम्, दर्पो वृद्धिः तयोः परा। हिंसा क्षयस्तत्र पूर्वेत्यर्थः॥ एतच्छ्राद्धादिविषयम्। "द्वितीयादिषु युग्मानां पूज्यता नियमादिषु। एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना॥" इति व्यासोक्तेः। नियमादिषु व्रतदानादिदैवकर्मसु। एकोद्दिष्टादि-

---

एकादशी द्वितीया तृतीयासे युक्त सात युग्म बर्णन किये, यह युग्म शुक्लपक्षमें समझना। अमावस और प्रतिपदाका योग और पूर्णिमा शुक्लपक्षमेंही होते हैं ऐसा कोई कहते हैं। सिद्धान्त वाक्य तो यह है कि, अमावस और प्रतिपदाके योगसे कृष्णपक्षके लिंगसे ये वचन दोनों पक्ष विषयक हैं और उन उन विशेष वाक्योंसे कृष्णपक्षकी तिथिविशेषमें इसका अनुवाद है। पुराणसमुच्चयमें दशमी कही है कि, शुक्लपक्षमें पूर्व (९) तिथिसे युक्त दशमी करनी। और सुमंतु ऋषिने संपूर्ण शुक्लपक्षमें त्रयोदशी कही है कि, हे मुने! द्वादशीसहित त्रयोदशी करनी। कृष्णपक्षमें तो आपस्तम्ब ऋषिने यह लिखा है कि, द्वितीयासहित प्रतिपदा प्रतिपदासहित द्वितीया और चतुर्थीसहित जो तृतीया है वह महान् फलको देती है; और हे नारद! पञ्चमी षष्ठीसे युक्त करनी। और कृष्णपक्षमें अष्टमी और चतुर्दशी ये दोनों सप्तमी और त्रयोदशीसे युक्त करनी, पूर्वविद्धा करनी, परतिथियोंसे युक्त किसी प्रकार न करनी। हे द्विजोंमें श्रेष्ठ! नौमीसे युक्त दशमी और षष्ठी, अष्टमी, अमावस और कृष्णपक्षकी त्रयोदशी ये परतिथियोंसे युक्त पूजने योग्य होती हैं। और जो व्याघ्रका कथन है कि, खर्व, दर्प और हिंसा ये तीन तिथियोंके लक्षण हैं, अर्थात् साम्य, वृद्धि; क्षय और मरना; इनमें खर्व और दर्पमें परतिथि और हिंसामें पूर्वतिथि पूजनीय होती है। यह व्याघ्रऋषिका कथन इस व्यासके कथनानुसार श्राद्ध आदि विषयक है कि, द्वितीयामें युग्म श्रेष्ठ है और व्रतदान आदि देवकर्म और एकोद्दिष्ट आदि तिथिकी वृद्धिमें क्षय और वृद्धिका विचार है, ऐसा व्यासजी कहते हैं; अर्थात्

तिथेर्वृद्ध्यादावित्यर्थः । कर्मकालव्याप्त्यभावे तु कर्मोपक्रमकालगैव ग्राह्या । "कर्मोपक्रमकालगा तु कृतिभिर्ग्राह्या न युग्मादरः" इति दीपिकोक्तेः । यानि तु--"यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः । सा तिथिः सकला ज्ञेया दानाध्ययनकर्मसु ॥" इत्यादीनि । तानि त्रिमुहूर्त्तादिस्तुतिरिति निर्णयशैली । एकभक्तनिर्णयः । अथैकभक्तम् । तत्कालः पाद्मे–'मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः ।' इति । मध्याह्नश्च पञ्चधाविभक्तदिनतृतीयांशः ॥ तेन यद्यपि द्वादशदण्डानन्तरं प्राप्यते तथापि "दिनार्धसमयेऽतीते भुज्यते नियमेन यत् । एकभक्तमिति प्रोक्तमतस्तत्स्याद्दिवैव हि॥"इति स्कान्दोक्तेः । षोडशसप्तदशादिदण्डौ मुख्यः कालः ॥ दीपिकायां तु–'मध्याह्नांत्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्' इति ॥ ततः सूर्यास्तपर्यन्तं गौणः ।' दिवैव हि' इत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्यैतत्परत्वात् ॥ अत्र पूर्वेद्युर्व्याप्तिः परेद्युरुभयेद्युर्व्याप्तिः तदभावेंऽशव्याप्तिः । तत्रापि साम्यं वैषम्यं चेति षट् पक्षाः । तत्राद्ययोरसंदेह एव तृतीये तु पूर्वेऽह्नि गौणमुख्यप्राप्तेः सत्त्वात् पूर्वेति माधवः। युग्मवाक्यान्निर्णय इति हेमाद्रिः । चतुर्थपक्षे पूर्वव गौणकालव्याप्तेः सत्त्वात् । वैषम्येणांश-

---

कर्मके संपूर्ण कालतक तिथि न रहे तो कर्मके प्रारंभकालकी तिथि ही दीपिकाके इस कथनानुसार ग्रहण करनी चाहिये कि, कर्मके प्रारंभकालकी तिथि ही पंडितोंको ग्रहण करनी । युग्मका आदर न करना और जो यह वचन है कि, जिस तिथिको प्राप्त होकरे सूर्य उदय हो वह तिथि दान, पठन आदि कर्मोंमें पूरी जाननी । ये सब वचन तीन मुहूर्त्त आदि तिथिकी स्तुति करनेवाले हैं यही निर्णयका मार्ग है।अब एकभक्तको कहते हैं--उसका समय पद्मपुराणमें यह कहा है कि,'एकबार भोजनमें मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेनी चाहिये । मध्याह्न पांच प्रकार विभाग किये दिनका तीसरा भाग होता है । वह यद्यपि बारह घड़ीके पीछे प्राप्त होता है तो भी आधे दिनके बीतनेपर नियमसे भोजन करते हैं, इससे इसको एक बार भोजन कहते हैं । और वह दिनमें ही होता है,यह स्कंदपुराणमें कहा है । सोलह और सत्रह घड़ी मध्याह्नका मुख्य काल है । दीपिकामें तो यह लिखा है कि, मध्याह्नके पीछे जब त्रिभाग दिन रहे तब एकभक्त होता है, इसके पीछे जब सूर्यास्तपर्यंत गौणकाल है (दिवैव हि) इस वाक्यके व्यर्थ होनेके भयसे । दीपिकाके वाक्यका पूर्वोक्त अर्थ ठीक है। इसमें पहले दिन सब तिथिकी व्याप्ति और अगले दिन दोनों दिनकी व्याप्ति, एक भागमें व्याप्ति तिथिका साम्य और वैषम्य इस प्रकार छः पक्ष हैं । इन छः पक्षोंमें पहले दोनोंमें कुछ सन्देह नहीं । तीसरे पक्षमें पूर्व दिन एकभक्त करे तो गौण होता है। सत्त्व होनेसे पूर्वमें करना ऐसा माधव कहते हैं।कारण कि, उसमें मुख्य तिथिमें ही एकभक्त पाया जाता है, हेमाद्रि तो यह कहते हैं कि, युग्मवाक्यसे निर्णय करे। चौथे पक्षमें संकल्पकालमें होनेसे परतिथि लेनी, यह कोई कहते हैं। कारण कि, चौथे पक्षमें गौण व्याप्ति है और विषम-

व्याप्तौ याऽधिका सा ग्राह्या। साम्ये पूर्वा। अयं च स्वतन्त्रैकभक्तानिर्णयः अन्याङ्गे उपवासप्रतिनिधौ तदनुसारेण निर्णयः॥ अथ नक्तम्॥ तच्च दिवानशनपूर्वरात्रिभोजनम्। तत्र प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या। 'प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा' इति वत्सोक्तेः॥ प्रदोषस्तु-"त्रिमुहूर्तं प्रदोषः स्याद्भानावस्तं गते सति। नक्तं तत्र तु कर्त्तव्यमिति शास्त्रविनिश्चयः॥" इति मदनरत्ने व्यासोक्तेः। तत्रापि 'त्रिदण्डोत्तरं कार्यम्। 'सायंसंध्या त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः।' इति स्कांदोक्तेः दण्डत्रयस्य संध्यात्वात्॥ तत्र-"चत्वारीमानि कर्माणि संध्यायां परिवर्जयेत्। आहारं मैथुनं निद्रां स्वाध्यायं च चतुर्थकम्॥" इति। मार्कण्डेयेन भोजननिषेधात्। "मुहूर्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिणः। नक्षत्रदर्शनान्नक्तमहं मन्ये गणाधिप॥" इति माधवीये भविष्योक्तेश्च। गौडास्तु-'प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते' इति वत्सोक्तः प्रदोषः। संध्या च दिनरात्र्योः संधौ मुहूर्तः। "अर्धास्तमया संध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजःपरिहानिवशाद्भानोरर्धोदयं यावत्॥" इति वराहोक्ते-रित्याहुः। तन्न। अस्य संध्यावन्दनानध्यायादिपरत्वात्। अत एव तत्र खण्डमण्ड-

---

तासे अंशव्याप्ति हो तो जिस दिन अधिक हो वह तिथि लेनी चाहिये, दोनों दिन (एकसी) हो तो पूर्वतिथि लेनी यह निर्णय स्वतन्त्र एकबार भोजनका है। व्रतके स्थानमें जो एकभक्त है उसका निर्णय उपवासके अनुसार होता है॥ अब रात्रिव्रत कहते हैं, वह दिनमें भोजनको न करके रात्रिमें भोजन होता है, उसमें प्रदोषव्यापिनी तिथि इस वत्स वचनके अनुसार सदैव लेनी चाहिये कि, नक्तव्रतमें सदैव प्रदोषव्यापिनी तिथि ग्रहण करनी। व्यासवचनसे सूर्यके अस्त होनेपर तीन मुहूर्त्त प्रदोष होता है, उसमें रात्रिव्रत करना यह शास्त्रका निश्चय है, यह मदनरत्नमें व्यासका वाक्य है। और वह भी तीन घड़ीके उपरान्त मानना, कारण कि; स्कन्दपुराणके इस वचनसे कि, सूर्यके अस्त होनेके अनन्तर तीन घडी सायंकालकी सन्ध्या होती है और उस संध्याके समय मार्कण्डेयके इस वचनसे भोजनका निषेध है कि, संध्याके समय इन चार कर्मोंको त्यागदे; भोजन, मैथुन, निद्रा और पढ़ना और माधवीय ग्रन्थमें भविष्यपुराणका भी यह वचन है कि, एक मुहूर्त न्यून दिनको बुद्धिमान् मनुष्य नक्त कहते हैं, और हे गणेशजी! नक्षत्रोंके दर्शन होनेपर मैं नक्त 'रात्रि' मानता हूँ, गौड तो इस वत्सके वाक्यसे यह कहते हैं कि, सूर्यास्तसे पीछे दो घडी प्रदोष हमको माननीय है। और संध्या ये दोनों दिन रात्रिके संधिमें एक मुहूर्त्त होते हैं; कारण कि, वाराहपुराणमें यह लिखा है कि, अस्तसे पहिले और तारोंके प्रगट होनेसे पहलेतक इतने सूर्यके तेजकी हानि न हो तबतक और प्रातःकाल सूर्यके अर्द्ध उदय होनेतक संध्या होती है, सो यह गौडोंका कहना सत्य नहीं है, कारण कि यह वचन संध्यावंदन और अनध्यायके विषयमें कहे हैं, इसीसे विज्ञानेश्वरने खण्ड हुए सूर्यके

लस्य संध्यात्वमुक्तं विज्ञानेश्वरेण । यच्च मदनरत्ने--नक्तस्य वैधत्वाद्रागप्राप्तभोजनगोचरो निषेध इत्युक्तम् । तन्न । विधेर्निषेधाविरोधात् ॥ अन्यथा कपिञ्जलानित्यत्र त्रिभ्योऽधिकानां हिंसनं स्यात् ॥ सायंकाले नक्तं तु दिनद्वये प्रदोषस्पर्शे ज्ञेयम् । "अतथात्वे परत्र स्यादस्ताहर्वाग्यतो हि सा "। इति जाबालिवचनात् । "प्रदोषव्यापिनी न स्याद्दिवा नक्तं विधीयते । आत्मनो द्विगुणा छाया मन्दीभवति भास्करे । तन्नक्तं नक्तमित्याहुर्न नक्तं निशि भोजनम् ॥" इति स्कान्दाच्च । इत्यादीनामपि सायाह्ने–"नक्तं निशायां कुर्वीत गृहस्थो विधिसंयुतः । यतिश्च विधवा चैव कुर्यात्तत्सदिवाकरम् ॥" इति तत्रैव स्मृत्यन्तरात् । इदमपुत्रविधुरोपलक्षणम् । पुत्रवतस्तु रात्रावेव । "अनाश्रमोऽप्याश्रमी स्यादपत्नीकोऽपि पुत्रवान्"। इति संग्रहोक्तेः ॥ सौरनक्तं तु दिवैव–"त्रिमुहूर्तस्पृगेवाह्नि निशि चैतावती तिथिः । तस्यां सौरं भवेन्नक्तमहन्येव तु भोजनम् ॥" इति सुमन्तूक्तेः ॥ हरिनक्तनिर्णयः । हरिनक्ते विशेषः कालादर्शे स्कान्दे--'उदयस्था सदा पूज्या हरिनक्तव्रते तिथिः' इति । अन्यनक्तं तु संक्रान्त्यादावपि रात्रावेव । निषेधस्य रागप्राप्तभोजनगोचरत्वेन

मण्डलको ही संध्या कहा है। और मदनरत्नने यह कहा है कि, नक्तव्रत शास्त्रविहित है, इससे रात्रिके भागमें प्राप्त हुए भोजनका यह निषेध है–सो भी ठीक नहीं; कारण कि, विधिका निषेधके संग विरोध न होना चाहिये अन्यथा 'कपिंजलान्' इस स्थलमें तीनसे अधिकको हिंसा हो जायगी। सन्ध्याकालके समय तब नक्त होता है जो दोनों दिन प्रदोषका स्पर्श हो, अन्यथा हो तो नक्त अस्तसे परे होता है कारण कि, सन्ध्या अस्तसे प्रथम होती है, यह जाबालिऋषिने कहा है। और स्कन्दमें यह लिखा है कि, यदि तिथि प्रदोषव्यापिनी न हो तो दिनमें ही नक्त करलेना चाहिये। जिस समय अपने शरीरसे दूनी छाया हो और सूर्य मन्द होजाय उसीका नाम नक्त है, रात्रिमें भोजनको नक्त नहीं कहते हैं। और संन्यासी आदिका भी नक्त सायंकालमें होता है और गृहस्थ रात्रिमें विधिपूर्वक नक्त करे और संन्यासी और विधवा दिनमें करें। यह वहां ही स्मृति अन्तरमें लेख है, यह वचन पुत्रकी हीनतामें उपलक्षणमात्र करता है। पुत्रवान् तो रात्रिहीमें करे कारण कि, संग्रहमें कहा है। अनाश्रम भी आश्रमी हो वा आश्रमहीन हो वा आश्रमवाला पत्नीरहित हो वा पुत्रवाला हो तो रात्रिमें नक्त करना चाहिये। और सौरनक्त तो दिनमें ही होता है, जो तिथि दिन और रात्रिमें तीन मुहूर्त हो उसमें सूर्यका नक्त होता है। उसमें दिनमें ही भोजन करना चाहिये, यह सुमन्तु कहते हैं। भगवान्के नक्तमें कुछ विशेष है, कालादर्शमें स्कन्दपुराणका वचन है कि, हरिनक्तके व्रत करनेवालेको सदा उदय तिथि लेनी चाहिये। दूसरे देवताओंका नक्त तो संक्रांति आदिमें भी रात्रिको ही होता है, कारण कि, रागप्राप्त भोजनका निषेध है, इस कारण यह विधिको बाध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। दोनों

वेधाबाधकत्वात्। दिनद्वयव्याप्तौ परा॥ "उभयोर्यदि वा तिथ्योः प्रदोषव्यापिनी तिथिः। तदोत्तरत्र नक्तं स्यादुभयत्रापि सा यतः"॥ इति कालादर्शे जाबालिवचनात्। अन्यपक्षेषु एकभक्तवन्निर्णयः। अत्र विशेषो मदनरत्ने गारुडे-"हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम्। अग्निकार्यमधः शय्या नक्तभोजी षडाचरेत्॥" अग्निकार्यं व्याहृतिहोमः॥ इति नक्तम्॥ अयाचिते तु विशेषवचनाभावात् पक्षे उपवासे प्राप्ते उपवासवन्निर्णयः॥ अथ नक्षत्रव्रतकालनिर्णयः॥ विष्णुधर्मे-"उपोषितव्यं नक्षत्रं यस्मिन्नस्तमियाद्रविः। युज्यते यत्र वा तारा निशीथे शशिना सह॥" इति। माधवीये स्कान्दे-"तत्रैवोपवसेदृक्षे यन्निशीथादधो भवेत्। उपवासे यदृक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः"॥ अथ व्रतपरिभाषा॥ तत्राधिकारिणो मदनरत्ने भविष्ये-"अनग्नयस्तु ये विप्रास्तेषां श्रेयो विधीयते। व्रतोपवासनियमैर्नानादानैस्तथा नृप"॥ अनग्निग्रहणमुपवासाविषयम्। अत एव देवलः-"आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः। अश्नन्त एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धिरनश्नताम्॥" एकादश्यादौ तु वचनाद्भवतीति वक्ष्यामः॥ शूद्रस्याप्यधिकारः-"शूद्रो वर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति। वेदमन्त्रस्वधा-

---

दिनकी व्याप्तिमें परतिथि करनी चाहिये। और यदि दोनों तिथियोंमें प्रदोषव्यापिनी तिथि हो उनमें अगली तिथिमें नक्त करना, कारण कि, वह दोनों दिन है। इस प्रकार कालादर्शमें जाबालिका कथन है, दूसरे पक्षमें एकभक्तके समान निर्णय है। इसमें विशेष मदनरत्नमें गरुडपुराणका वचन है, हविष्यभोजन, स्नान, सत्य, अल्पाहार, अग्निकार्य, हवन, भूमिशयन, नक्तभोजीको इन छः वस्तुओंका आचरण करना चाहिये। इति नक्तम्॥ और विना मांगे मिलनेमें विशेष वचनोंके अभावसे उपवासके तुल्य निर्णय किया जाता है। अब नक्षत्रव्रतके समयका निर्णय करते हैं-विष्णुधर्ममें लिखा है कि, जिस नक्षत्रमें सूर्य अस्त होवे अथवा जो नक्षत्र अर्धरात्रिके समय चन्द्रमाके साथ हो उसमें व्रत करे। माधवीयमें स्कन्दका वचन है कि, जो नक्षत्र अर्धरात्रिसे प्रथम हो उसमें व्रत करे। और जो नक्षत्र उपवासमें होता है वही एकभक्त और नक्तमें हुआ करता है। अब व्रतकी परिभाषा लिखते हैं, उसके अधिकारी मदनरत्नमें भविष्यपुराणके मतसे लिखे हैं कि, जो ब्राह्मण अनग्नि अर्थात् अग्निहोत्रादिसे रहित हैं, हे राजन्! उनका कल्याण व्रत, नियम और दानसे होता है। अग्निका ग्रहण उपवासके विषयमें है, इसी बातको देवल कहते हैं कि, अग्निहोत्री, बैल और ब्रह्मचारी इन तीनोंकी सिद्धि भोजनसे होती है, भोजनके विना नहीं। और एकादशी आदिमें तो वचनके विना

---

१ एकभक्तमें जो तिथि बीस घडी हो वह सम्पूर्णतिथि जाननी वा जो रात और सन्ध्यामें संगत हो वह सब जाननी। तथाच-"एकभक्तायाचितयोर्या विंशघटिकावधिः। सा तिथिः सकला ज्ञेया नक्ते सायाह्नसंगता"॥ इति मयूखे।

स्वाहावषट्कारादिभिर्विना ॥" इति व्यासोक्तेः । प्राच्यास्तु वैश्यशूद्रयोर्द्विरात्राधिकोपवासनिषेधः । "वैश्याः शूद्राश्च ये मोहादुपवासं प्रकुर्वते । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा तेषां व्युष्टिर्न विद्यते ॥ चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्ये शूद्रे विधीयते । त्रिरात्रं तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः ॥" इति हेमाद्रौ वचनादित्याहुः ॥ यावदुक्तनिषेध इत्यन्ये । तत्त्वं तु निर्मूलमिति प्रकरणान्महातपोविषय इति युक्तम् । एवं स्त्रीणामपि । भर्त्रनुज्ञैव स्त्रीणां व्रतम् । यत्तु स्कान्दे–"नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम् । भर्तृशुश्रूषयैवैता लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥ यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियां च । तस्यार्धं वै सा फलं नान्यचित्ता नारी भुंक्ते भर्तृशुश्रूषयैव" ॥ आदित्यपुराणे–"नारी खल्वननुज्ञाता भर्त्रा वापि सुतेन वा । विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ॥" इति । और्ध्वदेहिकं पारलौकिकम् । तद्भर्त्रननुज्ञाविषयम् । 'भार्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा' । इति कात्यायनोक्तेः ॥ अत्र विशेषो हरिवंशे–"स्नानं च कार्यं शिरसस्ततः फलमवाप्नुयात् । स्नात्वा स्त्री प्रातरुत्थाय पतिं विज्ञापयेत्सती ॥ तथा–"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं सकुशं साक्षतं तथा । गोशृंगं दक्षिणं

भोजनसे ही सिद्धि होती है। यह आगे वर्णन करेंगे। शूद्रका भी अधिकार है जैसा कि व्यासजी कहते हैं कि, चौथा वर्ण शूद्र भी वर्णमें होनेसे धर्मके योग्य है, इसको केवल वेदमंत्र स्वधा स्वाहा और वषट्कार करना न चाहिये; और प्राच्य तो यह कहते हैं कि, वैश्य और शूद्रको दो रात्रिसे अधिक उपवासका निषेध है। ऐसा हेमाद्रिमें लिखा है कि, जो वैश्य और शूद्र अज्ञानसे तीन वा पांच रात व्रत करते हैं उनको फल प्राप्त नहीं होता, वैश्य और शूद्रको चौथे कालमें भक्षण करना कहा है। वेदके जाननेवाले धर्मज्ञोंने तीन रातका व्रत उनको नहीं कहा है। कोई कहते हैं, जो उक्त निषेध है वह निर्मूल है, प्रकरण होनेसे महातपके विषयका है, इसी प्रकार स्त्रियोंको भी जानना चाहिये ॥ जो स्कंदपुराणमें लिखा है कि, स्त्रियोंको पृथक् यज्ञविधि, उपवास, व्रत नहीं है; वह केवल स्वामीकी सेवासे ही यथेष्टलोकोंको गमन करती हैं, कारण कि, जो कुछ भी पति देवता और पितरोंके निमित्त पूजा और सत्कार करता है, पतिमें अनन्यचित्तवाली स्त्री उसका आधा फल स्वामीकी सेवा करनेके कारण प्राप्त करती है। आदित्यपुराणमें लिखा है, भर्त्ता वा पुत्रकी आज्ञाके विना स्त्री जो कुछ परलोकके निमित्त कर्म करती है, वह निष्फल होता है, यह वचन विना स्वामीकी आज्ञाके करनेके विषयमें है। कारण कि, कात्यायनऋषि कहते हैं कि, पतिकी अनुमति लेकर सदा व्रतादिका आचरण करे। इसमें हरिवंशमें विशेष लिखा है कि, शिरसे स्नान करनेसे स्त्री विशेष फलको प्राप्त होती है. सती स्त्री प्रभातकाल उठकर स्नान कर पतिसे प्रार्थना करे तथा कुश और अक्षत तांबेके पात्रमें ग्रहण कर उसके जलसे गौके दक्षिण सींगको सिंचन

सिंच्य प्रगृह्णीयाच्च तज्जलम् ॥ " औदुम्बरं ताम्रमयम् । " ततो भर्तुः सर्वं दद्यात्स्नातस्य प्रयतस्य च । आत्मनश्चाभिषेक्तव्यं ततः शिरसि तज्जलम् । उपवासेषु कर्त्तव्यमेतद्धि व्रतकेषु च ॥ " इति ॥ सर्वव्रतेषु संकल्पविधिश्च भारते-"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः । उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा संकल्पयेद्बुधः ॥" हस्तेनैवेत्यर्थः ॥ व्रतारम्भकालनिर्णयः । अथ व्रतारम्भकालः ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः-"अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे । उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत् ॥" रत्नमालायाम्-"सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः । भानुभौमशनिवासरेषु च प्रोक्तमेव खलु कर्म सिध्यति ॥" तथा-"विरुद्धसंज्ञा इह ये च योगास्तेषामनिष्टः खलु पाद आद्यः । सवैधृतिस्तु व्यतिपातनामा सर्वोऽप्यरिष्टः परिघस्य चार्धम् ॥ तिस्रस्तु योगे प्रथमे सवज्रे व्याघातसंज्ञे नव पञ्च शूले । गण्डेऽतिगण्डे च षडेव नाड्यः शुभेषु कार्येषु विवर्जनीयाः ॥" संग्रहे-"कृष्णेऽग्निदिशयोरूर्ध्वं सप्तमीभूतयोरधः । शुक्ले वेदेशयोरूर्ध्वं भद्रा प्राग्वसुपूर्णयोः ॥ " श्रीपतिः-"न सिद्धिमायाति कृतं च विष्ट्यां विषारिघातादिकमत्र सिद्धम् ॥ " व्यवहारसमुच्चये-"दशम्यामष्टम्यां प्रथमघटिकापञ्चकपरं

करे, उस जलको ग्रहण करे, फिर नियममें तत्पर स्नान किये हुए अपने पतिको वह जल दे, पीछे वह जल अपने शिरके ऊपर भी छिड़के, व्रत और उपवास यह बात करनी चाहिये। सब व्रतोंमें अनेक संकल्प हैं। भारतमें लिखा है कि, जलसे पूर्ण ताम्रपात्रको लेकर उत्तरकी ओर मुख कर जिस फलकी इच्छा हो उसके निमित्त अपने हाथसे जल लेकर संकल्प करे और उपवास ग्रहण करे। अब व्रतारम्भका समय कहते हैं। मदनरत्नमें गर्गका वचन है कि, गुरु शुक्रके अस्त होनेमें तथा बाल, वृद्ध होनेमें और मलमासमें व्रतोंका प्रारम्भ और उद्यापन न करे। रत्नमालामें लिखा है कि, चन्द्र, बुध, गुरु, शुक्र ये चार दिन सब कार्योंमें सिद्धि देनेवाले होते हैं। रवि, मंगल और शनिके दिन वही कर्म सिद्ध होता है, जिसके करनेके निमित्त कहा है तथा जो योगाविरुद्ध है, उनका प्रथम चरण निषिद्ध कहा है और उनमें भी वैधृति व्यतीपातका सम्पूर्ण और परिघका आधा भाग ये सब निषिद्ध हैं। विष्कम्भ और वज्रकी तीन, व्याघातकी नौ, शूलकी पांच, गण्ड और अतिगण्डकी छः घड़ी सब कार्योंमें त्याग देनी चाहिये। अब भद्राका निर्णय लिखते हैं कि, संग्रहमें लिखा है, कृष्णपक्षमें तीज और दशमीको पीछेकी सात और चौदसको प्रथमकी तीस घड़ी, इसी प्रकार शुक्लपक्षमें चौथ और एकादशीको पिछली अष्टमी तथा पूर्णिमाको यह पहिली तीस घड़ी भद्रा होती है। श्रीपति कहते हैं कि, भद्रामें जो कार्य किया जाता है वह सिद्ध नहीं होता है, विष और शत्रुघातादि सिद्ध होते हैं। व्यवहारसमुच्चयमें लिखा है कि, दशमी और अष्टमीको पहली पांच घड़ीके उपरान्तकी, एकादशी और सप्तमीको बारह

हरिर्यौसप्तम्यां द्विदशघटिकान्ते त्रिघटिकम् । तृतीयाराकायां खयमघटिकाभ्यः परभवं शुभं विष्टेः पुच्छं शिवतिथिचतुर्थ्योस्तु विरमे ॥ " तत्रैव-"सर्पिणी तु सिते पक्षे कृष्णे चैव तु वृश्चिकी । सर्पिण्यास्तु मुखं त्याज्यं वृश्चिक्याः पुच्छमेव च ॥ " व्रतारम्भे विशेषः । माधवीये-"विष्टिर्यदाहनि तिथेरपरार्धजाता पूर्वार्धजा निशि तदा शुभदा च पुच्छे ॥" ब्रह्मयामले-"दिनभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिवा । न त्याज्या शुभकार्येषु प्राहुरेवं पुरातनाः ॥" श्रीपतिः-"षट् पौष्णतो द्वादश शांकराच्च पौरंदराद्रानि नव क्रमेण । पूर्वार्धमध्यापरभागयुञ्जि चिरंतनैर्ज्योतिषिकैः स्मृतानि ॥ " व्रतारम्भे च विशेषो मदनरत्ने सत्यव्रतेनोक्तः-"उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद्दिनमध्यभाक् । सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम् ॥ " इति ॥ देवलः-"अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाचम्य समाहितः । सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत् ॥ " मदनरत्ने भविष्ये-"क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम् । सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः " ॥ अग्निहोमस्तद्दैवत्यः, व्याहृतिहोमो वेति वर्धमानः । यत्तु तेनोक्तम्-सर्वपदमेतत्पुराणोक्तकृतव्रतपरम् । व्रतान्तरे तु विध्यन्तरसत्त्वे

घड़ी पीछेकी, तीज और पूनोंके पीछेकी दश घड़ी, चौदश और चौथकी अन्तकी तीन घड़ी भद्राका पुच्छ होता है । वहीं लिखा है, शुक्लपक्षकी भद्रा सर्पिणी और कृष्णपक्षकी वृश्चिकी होती है । सर्पिणीका मुख और वृश्चिकीकी पीठ त्याग देनी चाहिये । माधवग्रन्थमें लिखा है, जो भद्रा तिथिके अन्तभाग दिनमें लगे और रातमें तिथिके पूर्वार्धमें प्राप्त हो तो पुच्छमें मंगलदायक होती है । ब्रह्मयामलमें लिखा है, जो रातकी लगी भद्रा दिनमें हो और दिनकी लगी रातमें हो तो वह शुभ कार्योंमें नहीं त्यागनी, ऐसा पुरातन आचार्य कहते हैं । श्रीपति कहते हैं कि रेवतीसे छः नक्षत्र पूर्वभागी और आर्द्रासे लेकर बारह नक्षत्र मध्यभागी, ज्येष्ठासे लेकर नौ नक्षत्र पर भागी, पुरातन ज्योतिषियोंने स्वीकार किये हैं । मदनरत्नमें सत्यव्रतने व्रतके आरम्भमें विशेष कहा है । यदि दिनके मध्यभागमें उदयकी तिथि न हो तो वह तिथि खण्डित कही है, उसमें व्रतका आरम्भ और पूर्ति न करनी चाहिये । देवल कहते हैं कि, प्रभातकाल स्नान करके भोजनको विना किये सूर्य और देवताओंकी प्रार्थना करके व्रतका आचरण करना चाहिये । मदनरत्नमें भविष्यका वचन है-क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहवन, संतोष और अस्तेय (चोरी न करना) इन सब व्रतोंमें सामान्यसे यह धर्म कहा है । वर्धमानके कथनानुसार देवताओंके मंत्रोंसे वा व्याहृतिसे होम करे और जो उसीने यह कहा है कि, यह सब पुराणोंमें लिखे हुए व्रतोंके विषयमें है, अन्य व्रतोंमें यदि कोई और विधान हो तो हवन करे, अथवा न करे और इसी कारणसे शिष्ट लो

होमोऽन्यथा न। अत एवैकादश्यां शिष्टानां होमानाचरणमिति। तन्न। 'जपो होमश्च' इति वक्ष्यमाणैकवाक्यत्वेनास्य काम्यव्रतसमाप्तिपरत्वात्॥ तत्त्वं तु सप्तदशस्य पशुमित्रविन्दादिप्रकरणस्थेनेव तत्तद्व्रतविशेषहोमविधिभिरस्योपसंहार इति। विष्णुधर्मे—"तज्जप्यजपनं ध्यानं तत्कथाश्रवणादिकम्। तदर्चनं च तन्नामकीर्त्तनश्रवणादयः॥ उपवासकृतामेते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः॥" कौर्मे—"बहिर्ग्रामान्त्यजान्सूतिं पतितं च रजस्वलाम्। न स्पृशेन्नाभिभाषेत नेक्षेत व्रतवासरे॥" पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निपुराणे—"स्नात्वा व्रतवता सर्वव्रतेषु व्रतमूर्त्तयः। पूज्याः सुवर्णमय्याद्याः शक्त्या वै भूमिशायिना॥ जपो होमश्च सामान्यं व्रतान्ते दानमेव च। चतुर्विंशद्द्वादश वा पञ्च वा त्रय एव च॥ विप्रा भोज्या यथाशक्ति तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्॥" अत्र विप्रा इति पुँल्लिङ्गनिर्देशात् पुमांस एव भोज्याः। न तु स्त्रियः॥ एवं सहस्रभोजनादावपि। विरूपैकशेषस्य प्रमाणान्तरं विनाऽयुक्तत्वात्॥ अत एव—द्वयोर्यजमानयोः प्रतिपदं 'कुर्यात् बहुभ्यो यजमानेभ्यः' इत्यादौ विरूपैकशेषायोगात्। पत्न्यभिप्रायं द्वित्वं बहुत्वं वा न संभवतीत्युक्तमाचार्यैः। पार्थसारथिना च। एतेनैकस्य ब्राह्मणस्यावृत्त्या भोजनं परास्तम्। बहुत्वस्यैकपदश्रुत्या ब्राह्मणान्वितत्वेन

एकादशीको हवन नहीं करते। यह वर्धमानका कथन उचित नहीं है। कारण कि, जप और होम करे। इस आगे कहे वचनके संग एकवाक्यता करनेको यह वाक्य कामनायुक्त व्रतके विषयमें है। तत्त्व तो यह है कि, सत्रह पशुमित्रविन्द आदि प्रकरणमें जिस प्रकार जिस जिस विशेष हवन और विधिका उपसंहार है उसी प्रकार इस हवनविधिको भी जाने। जिस हवनकी जहां विधि है वह वहीं करे। विष्णुधर्ममें लिखा है कि, उसी देवताके मन्त्रका जप, उसीका ध्यान, उसीकी कथा श्रवण, उसीका पूजन और उसीके नामका कीर्त्तन श्रवणादि करे, बुद्धिमानोंने उपवास करनेवालोंके इतने गुण कथन किये हैं। कूर्मपुराणमें लिखा है कि, व्रतके दिन ग्रामके बाहरके अन्त्यजजाति, सूतिका, पतित और रजस्वलाका स्पर्श न करे, न इनको देखे और न इनसे भाषण करे। पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका वाक्य है। व्रत करनेवाले सब व्रतोंमें स्नान करके भूमिपर शयन करे और सुवर्णमयी अपने देवताकी प्रतिमा शक्तिसे निर्माण करे पूजन करे। सामान्यतासे व्रतके उपरान्त जप, होम और दान करे। चौबीस, बारह, पांच वा तीन यथाशक्ति ब्राह्मणोंको जिमाकर दक्षिणा दे। विप्रशब्दसे ब्राह्मणोंको ही जिमाना, उनकी स्त्रियोंको नहीं। इसी प्रकार सहस्रके भोजनादिमें पुरुषोंको ही भोजन करावे, कारण कि, व्याकरणसे विरूप स्त्री पुरुषोंका एकशेष प्रमाणके न मिलनेसे अयुक्त ही है। इसी कारण दो वा अनेक यजमानोंका कर्म क्रमपूर्वक करना। इस कथनसे आचार्योंने यह जताया है कि, भार्याके आशयसे द्वित्व वा बहुत्व नहीं होता तथा पार्थसारथिने भी यह लिखा है। इससे यह बात कट गयी कि, ब्राह्मणकी दोबारादि आवृत्तिसे भोजन मानकर द्वित्व बन

भोजनान्वयाभावादित्यन्यत्र विस्तरः । शूद्रस्य तु 'प्रतिष्ठादिवद्विप्रद्वारा व्याहृतिहोम इति वर्धमानः । व्रतमूर्तयो व्रतदेवताप्रतिमाः ॥ प्रतिमास्वरूपं च मदनरत्ने भविष्ये-"अनुक्तद्रव्यतत्संख्या देवताप्रतिमा नृप । सौवर्णी राजती ताम्री वृक्षजा मार्त्तिकी तथा ॥ चित्रजा पिष्टलेखोत्था निजवित्तानुरूपतः । आमाषात्पलपर्यन्तं कर्त्तव्या शाठ्यवर्जितैः ॥" तत्रैव ब्राह्मे-"आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते । मन्त्रस्य देवतायाश्च प्रजापतिरिति स्थितिः ॥" मन्त्रानुक्तौ समस्तव्याहृतिरूपो मन्त्रः प्रजापतिश्च देवतेति कल्पतरुः । वर्धमानधृतदेवीपुराणे-"होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टाधिकं भवेत् । अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाप्राप्ति विधीयते ॥" मदनरत्ने-"अनुक्तसंख्या यत्र स्याच्छतमष्टोत्तरं शतम्"। वर्धमानधृतवृद्धशातातपः-"उपवासं द्विजः कृत्वा ततो ब्राह्मणभोजनम् । कुर्यात्तेनास्य सगुण उपवासोऽभिजायते ॥" व्रतोद्यापने विशेषः । व्रतोद्यापनानुक्तौ पृथ्वीचन्द्रोदये नन्दिपुराणे-"कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम् । उद्यापनं विना यत्तु तद्व्रतं निष्फलं भवेत् ॥ यदि चोद्यापनं नोक्तं व्रतानुगुणतश्चरेत् । वित्तानुसारतो दद्यादनुक्तोद्यापने व्रते ॥ गाश्चैव काञ्चनं दद्याद्व्रतस्य परिपूर्त्तये ॥" अशक्तौ नारदीये-

---

सकेगा, कारण कि, जिस पदके आगे बहुत्व है उसका अन्वय उसके अर्थ ब्राह्मणमें ही होगा भोजनमें नहीं । दूसरे ग्रन्थोंमें इसका विस्तार लिखा है । प्रतिष्ठाके समान शूद्रको भी ब्राह्मणद्वारा व्याहृतियोंके होमका अधिकार है, ऐसा वर्धमान कहते हैं । व्रतमूर्तिका अर्थ व्रतके देवताकी प्रतिमाका करना, मदनरत्नमें भविष्यके वचनसे प्रतिमाका स्वरूप लिखा है । हे राजन् ! देवताकी प्रतिमाका द्रव्य वा संख्या नहीं है । सुवर्ण, चांदी, ताम्र, वृक्ष, मृत्तिका, चित्र, चून इनकी हो वा लिखी हो, अपने धनके अनुसार एक मासेसे लेकर ३ टके पर्यन्त बनावें, धनकी शठता न करे । वही ब्रह्मपुराणका वाक्य है कि, जहां हवनका द्रव्य नहीं कहा वहां घी लेना और जहां देवताका उल्लेख नहीं किया वहां प्रजापति देवता जानना और यदि मन्त्र न कहा हो तो सात व्याहृतिरूप सम्पूर्ण मन्त्र और प्रजापति देवता जानना ऐसा कल्पतरुमें कहा है । वर्धमानमें देवीपुराणका वाक्य है, होम और गवादि पूजामें १०८, अट्ठाईस वा आठ मन्त्रोंसे हवन करे । मदनरत्नमें लिखा है कि, जहां संख्या न कही हो वहां १०८ आहुति देनी । वर्धमानमें लिखा वृद्धशातातपका वचन है कि, द्विज उपवास करके फिर ब्राह्मणभोजन करावे तो इसका उपवास सफल होता है । जहां व्रतका उद्यापन न लिखा हो वहां पृथ्वीचन्द्रोदयमें नन्दिपुराणके वचनसे यह जाने कि, जो व्रतकी समाप्तिमें लिखा है वही उद्यापन करे. कारण कि, उद्यापनके विना व्रत निष्फल होता है और जो व्रतका उद्यापन न कहा हो तो व्रतके तुल्य जपादि करे और व्रतके अनुसार शक्तिपूर्वक दाम दे, व्रतकी पूर्तिके निमित्त गौ और सुवर्ण देना चाहिये, अशक्तिमें नारदीयपुराणमें कहा है कि, यदि कुछ भी धन न हो और शास्त्रोक्त

"सर्वेषामप्यलाभे तु यथोक्तकरणं विना। विप्रवाक्यं स्मृतं शुद्धं व्रतस्य परिपूर्तये॥" तत्रैव--"यथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभम्। अदत्त्वा दक्षिणां पापः स याति नरकं ध्रुवम्॥" भारते--"वेदोपनिषदे चैव सर्वकर्मसु दक्षिणा। सर्वत्र तु मयोद्दिष्टा भूमिर्गावोऽथ काञ्चनम्॥" बैजवापः--"शिवनेत्रोद्भवं यस्माद्रजतं पितृवल्लभम्। अमंगलं तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥" टोडरानन्दे देवीपुराणे--"व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः। परान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्॥" व्रते नियमः। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽग्निपुराणे--"नित्यस्नायी मिताहारो गुरुदेवद्विजार्चकः। क्षारं क्षौरं च लवणं मधु मांसं च वर्जयेत्॥" क्षारास्तु तत्रैवोक्ताः। "तिलमुद्गादृते शैम्ब्यं सस्ये गोधूमकोद्रवौ। धान्यकं देवधान्यं च शमीधान्यं तथैक्षवम्॥ स्विन्नधान्यं तथा पुण्यं मूलं क्षारगणः स्मृतः॥" गोधूमानां तु तत्रैव प्रतिप्रसवः--"व्रीहिषष्टिकमुद्गाश्च कलायः सतिलं पयः। श्यामाकाश्चैव नीवारा गोधूमाद्या व्रते हिताः॥ कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकपालंकीज्योत्स्निकास्त्यजेत्। चतुर्भैक्षं सक्तुकणाः शाकं दधि घृतं मधु॥ श्यामाकाः शालिनीवारा यावकं मूलतन्दुलम्। हविष्यव्रतनक्तादावग्निकार्यादिके हितम्॥ मधु मांसं विहायान्यद्व्रते वा हितमीरितम्॥" इति। शमीधान्यं माषादि। पालंकी मध्यदेशे (पोई) इति प्रसिद्धा। ज्योत्स्निका कोशातकी। मिताक्षरायां गौतमः--"चरुभैक्षसक्तुकणयावकशाकप-

---

विधि न कर सके तो ब्राह्मणका वचन ही यज्ञकी पूर्तिके निमित्त बहुत है और जो मनुष्य ब्राह्मणके वचनको विना दक्षिणा दिये ग्रहण करता है वह मूढ अवश्य नरकको जाता है। भारतमें लिखा है कि, वेद उपनिषद् पाठ सब कर्मोंमें सर्वत्र मैंने भूमि, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा कही है। बैजवाप कहते हैं–जिस कारण कि, शिवके नेत्रसे उत्पन्न चांदी पितरोंको प्यारी है, इससे वह देवकार्यमें मांगलिक नहीं है, इससे उसको सब कामोंमें त्याग दे। ठोडरानंदमें देवीपुराणका वाक्य है, हे देवी ! व्रत, तीर्थ अध्ययन, श्राद्ध इनमें पराया अन्न भोजन न करे, कारण कि, जिसका भोजन हो उसीको फल मिलता है। पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्निपुराणका वचन है कि, नित्यस्नान करनेवाला, परिमित भोजन करनेवाला, गुरु, देवता, ब्राह्मणका पूजन करे तथा खारी पदार्थ, हजामत, लवण, मधु और मांसको त्याग दे। क्षार वहीं लिखे हैं। तिल और मूंगको छोड़कर सामनी अन्न, गेहूं, कोदों, धान, देवधान, उर्द, गन्ना, स्विन्न, धान्य और बिकते हुए मूल ये सब क्षार कहे हैं और वहां ही यह वचन गेहूंके विषयमें तो निषेधका निषेध है। व्रीहि, सट्ठीके चावल, मूंग, कलाय, तिलसहित दूध, समाके चावल, नीवार और गेहूं आदि यह सब व्रतमें हितकर हैं। काशीफल, घिया बैंगन, पोई, कोशातकी इनको न खाना चाहिये। चरु, भिक्षाका अन्न, सत्तुकण, शाक, गौका दही, घी, मींठा सामक, वनके चावल, नीवार, जौ, मूलतण्डुल और हविष्य अन्न यह क्रमसे नक्तव्रत आदिमें उत्तम कहे हैं और अग्निकार्यमें भी हितकारी हैं, मद्य और मांसको छोड़कर भिन्न वस्तु व्रतमें हितकर हैं। मिता-

योदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि पयो दधि घृतं च गव्यम् इति ।" अन्ये च विशेषा एकादशीचातुर्मास्यादिप्रकरणे वक्ष्यन्ते । गृहीतव्रतत्यागे तु मदनरत्ने छागलेयः-"पूर्वं व्रतं गृहीत्वा यो न चरेत्काममोहितः । जीवन्भवति चाण्डालो मृतः श्वा चाभिजायते ॥" तत्र प्रायश्चित्तमुक्तं पृथ्वीचन्द्रोदये अग्निगारुडपुराणयोः-"क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभंगो भवेद्यदि । दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा ॥" इति । प्रायश्चित्तज्ञानादतिक्रान्तव्रतानुष्ठानं न नास्तीति गम्यते । यत्तु-'प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् ।' इति वचनात् यच्चातिक्रान्तमपि व्रतं कार्यमेवेति शूलपाणिः तन्मध्ये लोपे व्रतशेषसत्त्वे ज्ञेयम् । एतच्च शक्तविषयम् । अशक्तौ तु कालहेमाद्रौ पुराणान्तरे-"उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रं तु भोजयेत् । तावद्धनादि वा दद्याद्भुक्तस्य द्विगुणं तथा ॥ सहस्रसंमितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान् । कुर्याद्द्वादशसंख्याकान्यथाशक्त्यातुरो नरः ॥" इति । शुद्धितत्त्वे मात्स्ये-'उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।' मदनरत्ने वायवीये-'द्रव्यदातोपवासस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ।' तथापरार्के देवलः-"ब्रह्मचर्यं तथा शौचं सत्यमामिषवर्जनम् । व्रतेष्वेतानि चत्वारि वरिष्ठा-

---

क्षरामें गौतमजी कहते हैं-चरु, भिक्षाका अन्न, सत्तुकण, जौ, शाक, गौका दूध, दही, घी, मूल, फल, जल और हवि यह क्रमक्रमसे उत्तम कहे हैं, इनमें विशेष एकादशी और चातुर्मास्यादिके प्रकरणमें कहेंगे । महात्मा छागलेय ग्रहण किये व्रतके त्यागमें कहते हैं कि, जो कोई पहले व्रतको ग्रहण कर फिर कामसे मोहित हो उसे त्याग दे वह जीते ही चाण्डल है और मरकर श्वान होता है । उसका प्रायश्चित्त पृथ्वीचन्द्रोदयमें अग्नि और गरुडपुराणके मतसे लिखा है । क्रोध, प्रमाद वा लोभसे यदि व्रतभंग हो जाय तो तीन दिन भोजन न करे । अथवा शिरका मुण्डन करावे । जब व्रतभंग हो जाय तो शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तके विना उसको न करे और यह जो लिखा है प्रायश्चित्तको करके फिर व्रती हो इस वचनसे भंग हुए व्रतको करे, यह शूलपाणि कहते हैं । यह तबके निमित्त हैं जब मध्यमें व्रतका लोप हो जाय और कुछ दिन व्रतके शेप रहे हो और यह भी सामर्थ्यवान्के निमित्त है, असामर्थ्यमें तो कालहेमाद्रिमें कहे पुराणान्तरका वचन है । यदि उपवासमें अशक्य हो तो एक ब्राह्मणको भोजन करावे वा उतना उसे धन दे और जो ब्राह्मणको विना जिमाये भोजन कर लिया हो तो उससे दूना धन दे और यदि रोगी हो तो प्राणायाम कर सहस्र गायत्रीका जप करे । अथवा बारह प्राणायाम करे । शुद्धितत्त्वमें मत्स्यपुराणका वचन है जो उपवासमें असमर्थ हो वह रात्रिमें भोजन कर ले। मदनरत्नमें वायुपुराणका वाक्य है कि, द्रव्यका दान करनेवाला उपवासके फलको प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । अपरार्कमें देवल कहते हैं ब्रह्मचर्य × पवित्रता, सत्य बोलना और मांस-

---

× स्त्रियोंके प्रेक्षण स्पर्श आलाप और अऋतुमें संगम करनेसे ब्रह्मचर्य नष्ट होता है. इसलिये-

नीति निश्चयः ॥" मात्स्ये-"तस्मात्कृतोपवासेन स्नानमभ्यंगपूर्वकम् । वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप ॥" अन्ये च नियमास्तत्रतत्रान्वेषणीयाः ॥ अथ स्त्रीव्रतेषु विशेष उच्यते ॥ तत्र हेमाद्रौ व्रतकाण्डे गारुडे-"गन्धालंकारताम्बूलपुष्पमालानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥" इति । इदं च सभर्तृकोपवासविषयम् । "अञ्जनं च सताम्बूलं कुंकुमं रक्तवाससी । धारयेत्सोपवासापि अवैधव्यकरं यतः ॥ विधवा यतिमार्गेण कुमारी वा यदृच्छया ॥" इति । तत्रैव भविष्योक्तेः । तथा विष्णुधर्मे-"सर्वेषु तूपवासेषु पुमान्वाथ सुवासिनी । धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च ॥ विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत् ॥" मनुरपि-"पुष्पालंकारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम् । उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम् ॥" मदनरत्ने व्यासः-'दन्तधावनपुष्पादि व्रतेऽप्यस्या न दुष्यति' इति ।

व्रतमें यह चार वस्तु विशेष हैं, यह निश्चय है । मत्स्यपुराणमें लिखा है इससे उपवास करनेवाला शरीरमें उबटन लगाकर स्नान न करे, यह प्रयत्नसे वर्जना चाहिये । कारण कि, यह व्रतमें रूपका नाश करनेवाला है और दूसरे नियम भी वहां वहां खोज लेने । अब स्त्रीके व्रतोंमें विशेष लिखते हैं । हेमाद्रिके व्रतकाण्डमें गरुड़पुराणका वचन है, सुगन्धि लगाना, गहने पहरना, ताम्बूल, फूलमाला, चन्दन, दन्तधावन और अञ्जन यह उपवासमें दूषित नहीं होते, यह वार्ता सौभाग्यवतीके उपवासमें जाननी । कारण कि, वहां भविष्यपुराणका यह वाक्य है अञ्जन, पान, कुंकुम, लाल वस्त्र ये सौभाग्य करनेवाले हैं, इस कारण इनको उपवासमें भी धारण करे । विधवा यतिमार्गसे व्रत करे और कुमारी अपनी इच्छासे व्रत करे । विष्णुधर्ममें लिखा है कि, सब उपवासोंमें पुरुष वा सौभाग्यवती स्त्री लाल वस्त्र और श्वेत पुष्प धारण करे और विधवा एक ही श्वेत वस्त्र धारण करे । मनु भी कहते हैं-फूलोंकी माला, अलंकार, वस्त्र, धूप, अनुलेपन, दतौन और अञ्जन यह उपवासमें दूषित नहीं होते हैं । मदनरत्नमें व्यासजीका वचन.

-जल गौका छोड़कर अन्य दूध सस्यमें मसूर, फलमें जम्भीरी नींबू, शुक्तिचूर्ण, आरनाल यह व्रतमें मांसरूप है । स्मरण, कीर्तन, केलि, दर्शन, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय, क्रियाकी निर्वृत्ति यह आठ प्रकारका मैथुन है इनसे भिन्न ब्रह्मचर्य है । तथा च-"स्त्रीणां तु प्रेक्षणात्स्पर्शात्ताभिः संकथनादपि ॥ विपद्यते ब्रह्मचर्यं स्वदारेऽनृतुसंगमात् ॥ १ ॥ आमिषं दतिपानीयं गोवर्ज्यं क्षीरमामिषम् ॥ मसूरमामिषं सस्ये फले जम्बीरमामिषम् ॥ २ ॥ आमिषं शुक्तिकाचूर्णमारनालं तथामिषम् ॥ ३ ॥" इति । स्मृत्यंतरोक्तं च-"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृतिरेव च ॥ ४ ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणात् ॥ ५ ॥

यद्यपीदं सर्वोपवासविषये प्रतीयते तथापि शिष्टाचारात्सौभाग्याद्यर्थं क्रियमाण-नवरात्रत्रिरात्राद्युपवासविषयमेव । न त्वेकादश्यादिविषयम् । 'असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात् । उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥" इत्यपरार्के देवलेन तन्निषेधात् । न चास्य पुंविषयत्वेन सावकाशत्वात् स्त्रीणां ताम्बूलादि प्राप्नोतीति वाच्यम् । ताम्बूलादिप्रापकस्यैवैकादशीतरविषयत्वेन वैपरीत्यस्यापि सुवचत्वात् । यत्तु हरिवंशे–"अञ्जनं रोचनं चैव गन्धान्सुमनसस्तथा । व्रते चैवोपवासे च नित्यमेव विवर्जयेत् ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनं सौम्येनैवमेतत्प्रशस्यते । न पादयोर्न गात्रस्य स्नेहेनेति स्थितिः स्मृता ॥" इति । तत्तत्रैवोक्तपुण्यकव्रतविषयम् । न तु सर्वत्र । पूर्वोक्तविरोधादिति मदनरत्ने उक्तम् ॥ तत्रैव–"अश्रुप्रपातो रोषश्च कलहस्य कृतिस्तथा । उपवासाद्व्रताद्वापि सद्यो भ्रंशयति स्त्रियम् ॥" स्त्रियमित्युपलक्षणम् ॥ मदनरत्ने शिवधर्मे–"दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः । यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत् ॥ " अथ सूतकादौ निर्णयः ॥ तत्र शावसूत्याशौचयोः सर्वस्मार्तकर्मनिवृत्तिर्निबन्धेषु स्पष्टैव । गौडास्तु शौचादावपि तामाहुः । "जानूर्ध्वं

है, स्त्रियोंके व्रतमें दतौन आर पुष्पादिका निषेध नहीं है । यद्यपि यह सब उपवासके विषयमें प्रतीत होता है तो भी शिष्टाचारसे सौभाग्यके निमित्त किये जाते हैं । नवरात्र त्रिरात्रादि उपवासके विषयमें हैं एकादशी आदिके विषयमें नहीं । कारण कि, अपरार्कमें देवलका वाक्य इसके निषेधका है कि, वारंवार जलपान तथा एक ही वार ताम्बूल चर्वण करने, दिनमें सोने और मैथुन करनेसे उपवास नष्ट हो जाता है । यदि कहो कि, यह वचन पुरुषोंके निमित्त है स्त्रियोंके ताम्बूल सेवनमें दोष नहीं तो ऐसा कहना ठीक नहीं । कारण कि, ताम्बूल भक्षणका कथन करनेवाला वचन ही एकादशीसे भिन्न व्रतोंमें क्यों न माना जाय और जो हरिवंशमें यह लिखा है कि, अञ्जन, गौरीचन्दन, सुगन्धि, फूल इनको व्रत और उपवासमें सदा त्याग दे । शिरसे स्नान, चरण और देहको तेल. आदिसे मलना भी श्रेष्ठ नहीं है, यह मर्यादा है, यह वचन हरिवंशमें लिखे हुए पुण्यकव्रतके ही विषयमें हैं सर्वत्र नहीं । कारण कि, पूर्वोक्त वचनसे विरोध पड़ेगा, यह मदनरत्नमें कहा है । वहाँ ही कहा है कि, आश्रुपात करना, क्रोध, क्लेश यह उपवास वा व्रतमें करनेसे स्त्रियोंके व्रत वा उपवास तत्काल भंग हो जाते हैं । यहां स्त्रीपद पुरुषका भी उपलक्षण है । मदनरत्नके शिवधर्ममें लिखा है–दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, हुत, जप यह यत्नसे सम्पादन करनेसे भी क्रोधीके नाश हो जाते हैं अर्थात् वृथा हो जाते हैं । अब सूतिकादिका निर्णय करते हैं, इसमें मरण और जन्मसूतकमें स्मृतियोंमें लिखे सब कर्मोंका न करना, सब ग्रन्थोंमें स्पष्ट ही लिखा है, गौड तो घावके अशौचमें सब कर्मोंका त्याग लिखते हैं कि, घुटनोंसे

क्षतजे जाते नित्यकर्म न चाचरेत्। नैमित्तिकं च तदधः स्रवद्रक्तो न चाचरेत्॥ लौतके च समुत्पन्ने ज्वरकर्मणि मैथुने। धूमोद्गारे तथा वान्तौ नित्यकर्माणि संत्यजेत्॥ द्रव्ये भुक्ते त्वजीर्णे च नैव भुक्त्वापि किंचन। कर्म कुर्यान्नरो नित्यं सूतके मृतके तथा॥" इति कालिकापुराणात्। वस्तुतस्तु पूर्वं देवीपूजोपक्रमात्तन्मात्रविषयत्वमस्येति युक्तं प्रतीमः। तथा हेमाद्रौ पाद्मे-"गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाथ रोगिणी। यदाऽशुद्धा तदान्येन कारयेत्प्रयता स्वयम्॥" इति। पुंसोऽप्येष विधिः। लिंगस्याविवक्षितत्वात्॥ तेन-'यस्मिन्व्रते यत्पूजाद्युक्तं तदन्येन कारयेत्। शारीरनियमान्स्वयं कुर्यात्' इति हेमाद्रिव्याचख्यौ॥ 'न व्रतिनां व्रते' इति विष्णूक्तेश्च।' आरम्भस्तु न भवत्येव। शुद्धितत्त्वे विष्णुः-"बहुकालिकसंकल्पो गृहीतश्च पुरा यदि। सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति॥" एतत्काम्यपरम्। नित्यं त्वनारब्धमपि कार्यमिति गौडाः। मदनरत्ने-"पूर्वसंकल्पितं यच्च व्रतं सुनियतव्रतैः। तत्कर्तव्यं नरैः शुद्धं दानार्चनाविवर्जितम्॥" माधवीये कौर्मे-"काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके। तत्र काम्यं व्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्॥" इति। एतेन साधिकाराद्व्रतांगदेवपूजादि कार्यमिति वर्धमानोक्तिः परास्ता।

ऊर्ध्वमें घाव हो जानेमें नित्यकर्म न करे और घुटनोंसे नीचेके रुधिरस्रावमें नैमित्तिक कर्मका त्याग कहा है। मांस निकलनेपर, ज्वर, मैथुन, धूम, डकार, वान्तिके होनेमें नित्यकर्म छोड़ दे। यदि किसी वस्तुके भोजन करनेसे अजीर्ण हो जाय तो कुछ भी भोजन न करे, भोजनके उपरान्त सूतक वा मृत्युमें नित्यकर्म न करना, यह कालिकापुराणके वचन हैं, यथार्थमें तो हम प्रथमसे देवीपूजाका प्रकरण होनेसे यह वचन भी देवीपूजाके विषयमें ही जानते हैं। इसी प्रकार हेमाद्रिमें पद्मपुराणका वचन है कि, गर्भिणी, सूतिका, कुमारी, रोगिणी जब अशुद्ध हो तब दूसरेसे व्रत करा दे। यही विधि पुरुषोंके निमित्त है, कारण कि, इसमें लिंगकी विवक्षा नहीं है, इससे जिस व्रतमें जो पूजादि कही ह वह दूसरेसे करा दे, शरीरके नियमोंको स्वयं करे; यह हेमाद्रिने व्याख्या की है और व्रतवालोंके व्रतमें विष्णुने भी यही कहा है कि, सूतक आदिमें व्रतका आरंभ नहीं होता। शुद्धितत्त्वमें विष्णुका कथन है। यदि पहले बहुत कालका संकल्प किया हो अर्थात् बहुत कालके व्रतका संकल्प लिया हो तो सूतक और मृत्युमें वह व्रत दूषित नहीं होता, यह वाक्य काम्य व्रतमें जानना और विना प्रारम्भ किये भी नित्यकर्म कर ले ऐसा गाड कहते हैं। मदनरत्नमें कहा है कि, जिस व्रतका व्रतके नियम करानेवालेने प्रथमसे संकल्प कर रक्खा है वह शुद्ध मनुष्य उस व्रतको दान और अर्चनके विना करे। माधवीयमें कूर्मपुराणका कथन है, यदि काम्य उपवासके आरम्भमें मध्यमें मरण वा सूतक हो जाय तो दान और अर्चनके विना काम्य व्रतका अनुष्ठान करे, इससे वर्द्धमानका यह कहना खण्डन हो गया कि, सांगव्रतमें अधिकार होनेसे उस उस व्रतके अंगभूत देवता

प्रारब्धं पूजादि कार्यमेव । नवरात्रे तु तत्रैव विशेषं वक्ष्यामः । एवं रजस्वलापि । यत्तु सत्यव्रतः-"प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत् । न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कथंचन ॥" इति ॥ तत्प्रतिनिधिना कारयेदित्येतत्परम् । तदुक्तं मदनरत्ने मात्स्ये 'अन्तरा तु रजोयोगे पूजामन्येन कारयेत्' इति । प्रतिनिधयश्च निर्णयामृते पैठीनसिः-"भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद्भार्यायाश्च पतिर्व्रतम् ॥ असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते ॥" स्कान्देऽपि-"पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा । एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत् ॥" पित्राद्यर्थे उपवासव्रतनिर्णयः । कात्यायनः-"पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः। उपवासं प्रकुर्वाणः पुण्यं शतगुणं लभेत् ॥ मातामहादीनुद्दिश्य एकादश्यामुपोषणे । कृते ते तु फलं विप्राः समग्रं समवाप्नुयुः ॥" मदनरत्ने प्रभासखण्डे-"भर्त्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखापि च । यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः ॥ एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् ।" तत्रैव वायवीये-"स्वयं कर्त्तुमशक्तश्चेत्कारयेत पुरोधसा ॥" इदं च सर्ववर्णसाधारणम् । अविशेषात् । यत्तु कश्चिन्महोक्ष आह-शूद्रस्य ब्राह्मणादिरेव प्रतिनिधिर्युक्तो न शूद्रः । "जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रव्रज्या मन्त्रसाधनम् । विप्रैः संपादितं यस्य संपन्नं तस्य तत्फलम् ॥ इति । मरीचि-

---

आदिका तो पूजन करे, आरम्भ किये व्रतके पूजन तो करे ही । नवरात्रमें तो वही विशेष कहेंगे । इसी प्रकार रजस्वला भी व्रत करे और जो सत्यव्रत यह कहते हैं कि, दीर्घव्रतके प्रारम्भमें यदि स्त्री रजोवती हो जाय तो उसका व्रत नहीं रुक सकता, यह वचन प्रतिनिधिसे करवा देनेके विषयमें है । ऐसा ही मदनरत्नमें मत्स्यपुराणका वचन है कि, यदि व्रतमें रजोधर्म हो जाय तो दूसरेसे व्रत करा दे । इस प्रकार प्रतिनिधिनिर्णयामृतमें पैठीनसीके वाक्यसे कहे हैं, भार्या पतिका और पति भार्याका व्रत कर दे, इनके सामर्थ्य न होनेपर दूसरेके व्रत करनेसे व्रतभंग नहीं होता । स्कन्दपुराणमें भी लिखा है, नम्रतायुक्त पुत्र, बहन, भ्राता इनको अथवा इनके अभावमें ब्राह्मणको प्रतिनिधि करना चाहिये। कात्यायन कहते हैं, पिता, माता, भ्राता, पति और विशेष कर गुरुके निमित्त उपवास करनेसे सौगुना पुण्य होता है। मातामहादिके उद्देश्यसे एकादशीमें उपवास करनेसे समग्र फलकी प्राप्ति होती है। मदनरत्नके प्रभासखण्डमें लिखा है कि, भर्ता, पुत्र, पुरोहित, भ्राता, पत्नी, सखा यात्रा और धर्मकार्यमें प्रतिनिधि होते हैं, हे महादेवि ! इनका किया हुआ स्वयं ही किया हुआ है। वही वायुपुराणका वाक्य है कि, यदि स्वयं करनेमें अशक्य हो तो पुरोहितसे करा दे विशेष न कहनेसे यह सब वर्णोंके निमित्त साधारण है और जो किसी महोक्ष (बलीवर्द) ने यह कहा है, शूद्रके ब्राह्मणादिही प्रतिनिधि युक्तहैं, शूद्र नहीं हो सकते। जप, तप, तीर्थसेवा, संन्यास, मन्त्रसाधन जिसका ब्राह्मण सम्पादन करते हैं उसका पूरा फल मिलता है, यह मरीचिका वचन है सो तुच्छ है, कारण

वचनात् इति । तत्तुच्छम् । प्रव्रज्यादीनां शूद्रेऽसंभवात् 'विषये प्रायदर्शनात्' इति न्यायेनास्य ब्राह्मणादिगोचरत्वात् ॥ यदापि-'उपवासो व्रतं होमस्तीर्थस्नानजपादिकम्' इति पूर्वार्द्धे पाठस्तदापि स एव दोषः 'स्त्रीशूद्रपतनानि षट्' इति मानवीये जपनिषेधात् । "ब्राह्मणो हीनवर्णस्य यः कुर्यात्कर्म किंचन । स तां जातिमवाप्नोति इह लोके परत्र च ॥" इति कालहेमाद्रौ मरीचिनिषेधाच्च । वस्तुतस्तु-संपूर्णतावाचनमात्रमत्रोच्यत इति प्रतिनिधेः का वार्तेत्यलम् । अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः-"काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः । काम्येऽप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः ॥ न स्यात्प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु । स देशकालयोर्नास्ति नारणेरग्निरेव सा ॥ नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित् ॥" हिरण्यकेशिसूत्रेऽपि-"न स्वामित्वस्य भार्यायाः पुत्रस्य देशस्य कालस्याग्नेर्देवतायाः कर्मणः शब्दस्य च प्रतिनिधिर्विद्यते" इति ॥ अथ व्रतादिसंनिपाते निर्णयः । तत्र तिथिद्वयसंनिपाते तत्रोक्तं दानहोमादि क्रमेणानुष्ठेयम् । अविरोधात् । इदं पूर्वारब्धेष्वेव ॥ एकमध्येऽन्यकाम्यकर्मारम्भस्तु न भवत्येव गुणफलादृते-'यस्य यज्ञे प्रततेऽन्तरा यज्ञस्तायते तं यज्ञं निर्ऋतिर्गृह्णाति' इति

कि, संन्यासादिका होना शूद्रमें सम्भव नहीं और यह न्यायसंगत भी है कि, कर्मोंके विषय द्रष्टापन ब्राह्मणका है।इससे यह वचन भी ब्राह्मणके विषयमें जानना और जो उसने लिखा है कि, प्रथमका आधा श्लोक यह है उपवास, व्रत,हवन,तीर्थ,जप तो भी वही दोष आता है; कारण कि, स्त्री और शूद्र जपादिसे पतित होते हैं;इस कारण शूद्रको जपका निषेध है, ऐसा मनुमें है और कालहेमाद्रिमें मरीचिके वचनसे इस प्रकार निषेध भी हैं। जो ब्राह्मण शूद्रवर्णके निमित्त कुछ कर्म करे तो वह इस लोक और परलोकमें उस जातिको ही प्राप्त होता है। यथार्थ तो यह है जब पूर्णजातिका होना ही यहां लिखा तो प्रतिनिधिकी क्या बात है? बहुत विस्तार नहीं करते हैं।त्रिकाण्डमण्डनने यहाँ यह विशेष लिखा है कि,काम्य कर्ममें प्रतिनिधि नहीं होता, नित्य नैमित्तिकमें ही होता है। कोई आचार्य आरम्भके उपरान्त काम्य कर्ममें भी प्रतिनिधि मानते हैं, इससे मन्त्र, स्वामी, देवता और अग्निकर्ममें प्रतिनिधि होता है। देश, काल तथा अरणीके मथनमें प्रतिनिधि नहीं होता। कारण कि, वह आग्नि ही ह और निषिद्ध वस्तुको कहीं भी प्रतिनिधि न करे। हिरण्यकेशीसूत्रमें कहा है स्वामी, स्त्री, बेटा, देश, काल,अग्नि, देवता, कर्म और शब्द इनका प्रतिनिधि नहीं होता। अब व्रतादिके मेलमें निर्णय करते हैं। यदि व्रतमें दो तिथियोंका संयोग हो जाय तो उस २ तिथिमें कथन किये दान, हवन आदि विरोध न होनेमें करने चाहिये और यह भी पहले आरम्भ किये व्रतोंमें जानना। एकके बीचमें दूसरे काम्य कर्मका आरम्भ तो नहीं होता और गौणफल तो प्राप्त होता है। जिस यज्ञके आरम्भमें दूसरे यज्ञका विस्तार किया जाय उस यज्ञको राक्षस ग्रहण कर लेते हैं,यह राणकमें श्रुति लिखी है; इससे यज्ञ, व्रत आदि सब कर्मोंमें अनंग(यज्ञके

राणकधृतश्रुतेः। यज्ञः व्रतादिकर्ममात्रम् । अनङ्गेन व्यवधानदोषस्य सर्वत्र साम्यात्। शिष्टास्तु माघकार्तिकस्नानादिमध्ये लक्षहोमतुलाभारतश्रवणाद्याचरन्ति तन्नित्यमध्ये, न तु काम्यमध्ये । यत्र तु नक्तैकभक्तादौ विरोधस्तत्र प्राथम्यादेकभक्तं कार्यम् । नक्तं तु परेद्युस्तत्तिथौ गौणकाले कार्यम् । समकालीनविरुद्धव्रतादौ त्वेकं स्वयं कृत्वान्यद्भार्यादिना कारयेदिति माधवः ॥ यत्र तु शिवरात्र्यादौ तिथिमध्ये पारणयाऽह्नि भोजनं प्राप्तम् । "भूताष्टम्योर्दिवा भुक्त्वा रात्रौ भुक्त्वा च पर्वणि । एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ " इति तन्निषेधश्च । तत्र पारणाया वैधत्वाद्दिवैव भोजनम् । निषेधस्तु रागप्राप्तभोजनविषयः । एवमष्टम्यादि-नक्तव्रते संक्रान्त्यादौ रवौ संकष्टचतुर्थ्यां च रात्रौ भोजनम् । यत्र त्वष्टम्यादौ दिवाभुजिनिषेधः संक्रमे च रात्राविति निषेधद्वयम् । तत्रोपवास एव कार्यः । यद्यपि पुत्रिण उपवासो निषिद्धः तथापि 'उपवासनिषेधे तु भक्ष्यं किञ्चित्प्रकल्पयेत्' इति वचनात्किंचिद्भक्षयित्वोपवासः कार्यः । चान्द्रायणमध्ये एकादश्यादौ तु भोजनं कार्यमेव । चान्द्रायणस्य काम्यत्वेन नित्यबाधकत्वात् । अबाधेन गत्यसम्भवाच्च । एकादश्यामेकान्तरोपवासादिपारणायां जलपारणां कृत्वोपवसेत् । 'आपो वा अशितमनशितं च' इति श्रुतेः । एवं द्वादश्यां मासोपवासश्राद्ध-

---

अंगमें सम्बन्धसे रहित) कर्मके व्यवधानक दोष सब स्थानमें तुल्य है । शिष्ट पुरुष तो कार्त्तिकस्नानादिके मध्यमें लक्षहवन,तुलादान,भारतादिका श्रवण करते हैं;यह उनका कर्त्तव्य नित्यकर्मविषयक है काम्यमें नहीं है । और जहाँ एकभक्तादिमें तथा नक्तादिमें विरोध हो वहाँ प्रथम होनेसे एकभक्त आदि करना चाहिये और नक्त तो दूसरे दिन गौण तिथिमें करना चाहिये और एक ही कालमें विरुद्ध दो व्रत आ पडें तो एक स्वयं करे और एकको भार्या आदिसे करा दे यह माधव कहते हैं । और जहाँ शिवरात्रि तिथिमें पारणाके निमित्त दिनमें भोजन प्राप्त है और निषेध है कि चतुर्दशी और अष्टमीको दिनमें पर्वमें रात्रिको और एकादशीको और दिनरातमें भोजन कर चान्द्रायण करे । उस स्थलमें पारणाको शास्त्रोक्त होनेसे दिनमें भोजन करना और उस निषेधको रागप्राप्त भोजनमें जानना । इस प्रकार अष्टमी आदि, नक्तव्रत संक्रति आदि रवि संकष्ट चतुर्थीमें रात्रिको भोजन करना और जिस स्थलमें अष्टमी आदिमें दिनके भोजनका निषेध है कि, संक्रांतिमें रातको भोजन न करे, वहाँ उपवास करना ही जानना । यद्यपि पुत्रवालोंको उपवासका निषेध है, तथापि उपवासके निषेधमें भी कुछ भोजन कर ले, इस वाक्यसे कुछ भोजन करके ही उपवास करे । और चान्द्रायणमें भी एकादशीको तो भोजन करना ही चाहिये,कारण कि,चान्द्रायण काम्य होनेसे नित्यका बाधक है और विना बाध माने दूसरा मार्ग ही नहीं है । एकादशीको एकान्तर आदि व्रतकी पारणा आ पड़े तो जलसे पारणा करके उपवास करे । कारण कि, (आपो वा अशितमनशितं च) इस श्रुतिके अनुसार जलका भक्षण अभक्षण ही

प्रदोषादिषु ज्ञेयम् । एवं काम्यनैमित्तिकनित्यत्वादिकृतं बलाबलं स्वयमूह्यमिति दिक् । इति कमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥ अथ प्रतिपदादितिथिनिर्णयः ॥ शुक्लप्रतिपदपराह्णव्यापित्वे पूर्वा ग्राह्या । युग्मवाक्यात् 'प्रतिपत्संमुखी कार्य्या या भवेदपराह्णिकी' इति स्कान्दोक्तेः । 'शुक्ला स्यात्प्रतिपत्तिथिः प्रथमतश्चेत्सापराह्णे भवेत्' इति दीपिकोक्तेश्च । अपराह्णश्च पञ्चधाभक्ते दिने चतुर्थो भागः । तदभावे सायाह्नव्यापिनी ग्राह्या । 'तदभावे तु सायाह्नव्यापिनी परिगृह्यताम्' इति माधवोक्तेः । कृष्णा तु परा । 'कृष्णा तूत्तरतोऽखिला' इति दीपिकोक्तेः ॥ 'कृष्णापि पूर्वैव' इत्यनन्तभट्टाः ॥ सर्वतिथिषु वर्ज्यान्युक्तानि मुहूर्त्तदीपिकायाम्–"कूष्माण्डं बृहतीफलानि लवणं वर्ज्यं तिलाम्लं तथा तैलं चामलकं दिवं भ्रमसतां शीर्षं कपालान्त्रकम् । निष्पावांश्च मसूरिकान्फलमथो वृन्ताकसंज्ञं मधु द्यूतं स्त्रीगमनं क्रमात्प्रतिपदादिष्वेवमाषोडश ॥" शीर्षं नारिकेलम् । कपालम् अलाबु । अन्त्रं पटोलकम् । भूपालः–"कूष्माण्डं बृहती क्षारं मूलकं पनसं फलम् । धात्रीशिरःकपालान्त्रं नखचर्मतिलानि च ॥ क्षुरकर्माङ्गनासेवां प्रतिपत्प्रभृति त्यजेत् ॥" नखं शिंबी । चर्म मसूरिका ॥ अथ द्वितीयानिर्णयः । 'द्वितीया तु कृष्णापूर्वा शुक्लोत्तरा' इति हेमाद्रिः ।

है । इसी प्रकार द्वादशी मासोपवास श्राद्ध प्रदोषादिमें जानना । इस प्रकारसे काम्य, नैमित्तिक, नित्य आदि व्रतोंमें बल अबल स्वयं विचार लेना, यह संक्षेपसे कहा है॥इति श्रीकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिंधौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां व्रतपरिभाषा समाप्ता ॥ अब प्रतिपदाका निर्णय करते हैं । जो शुक्लपक्षकी प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी होवे तो पूर्वकी ग्रहण करनी । कारण कि, इसके दो वाक्य मिलते हैं । स्कंदपुराणमें लिखा है, जो प्रतिपदा अपराह्णमें हो तो निःसंदेह उसीको करे । शुक्ला प्रतिपत्तिथि होती है वह जो अपराह्णमें हो तो पहली होती है, यह दीपिकामें लिखा है । अपराह्ण पांच भक्त दिनका चतुर्थ भाग है । यदि वह न प्राप्त हो तो संध्यामें व्यापनेवाली तिथि ग्रहण करनी, ऐसा माधव कहते हैं । कृष्णा प्रतिपदा तो आगेकी लेनी, ऐसा दीपिकामें लिखा है । कृष्णपक्षकी प्रतिपदा भी पहली ही होती है,ऐसा अनन्तभट्ट कहते हैं । मुहूर्त्तदीपिकामें सब तिथियोंमें निम्नलिखित वस्तु वर्जित की हैं–कूष्माण्ड, कटेरी, लवण, तिल, खटाई, तेल, आंवले, नारियल, तोंबा, पटोल, निष्पाव (पसाईके चांवल), मसूर, बैंगन, शहत, द्यूत, स्त्रीगमन इन सोलह वस्तुओंको क्रमसे प्रतिपदादि तिथियोंमें त्याग दें।भूपाल कहते हैं–कूष्माण्ड,कटेरी,क्षार,मूल,पनसका फल, आमले,नारियल,कपाल,(अलाबू),पटोल, नख (शिम्बीशाक), मसूर, तिल, हजामत बनवाना इनको प्रतिपदा आदि तिथियोंमें त्याग दे ॥ और द्वितीयाके विषयमें तो कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी दूसरी ग्रहण करनी चाहिये, यह हेमाद्रिका मत है, कारण कि, दीपिकामें

'कृष्णाद्वितीयादिमा पूर्वाह्ले यदि सा सिता तु परतः सर्वा ' इति दीपिकोक्तेः । माधावानन्तभट्टमते तु सर्वापि द्वितीया परा । तथा च माधवः--"पूर्वेद्युरसती प्रातः परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा । सा द्वितीया परोपोष्या पूर्वविद्धा ततोऽन्यथा ॥' इति । तृतीयानिर्णयः । तृतीया तु सर्वमते रम्भाव्यतिरिक्ता परैव तेन युग्मवाक्यं रम्भाव्रतविषयम् "रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीया द्विजसत्तम । अन्येषु सर्वकार्येषु गुणयुक्ता प्रशस्यते ॥" इति ब्रह्मवैवर्त्तात् । गौरीव्रते तु विशेषमाह माधवः--"मुहूर्त्तमात्रसत्त्वेऽपि दिने गौरीव्रतं परे । शुद्धाधिकायामप्येवं गणयोगप्रशंसनात् ॥" इति । चतुर्थीनिर्णयः । चतुर्थ्यपि सर्वमते गणेशव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । "एकादशी तथा षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका । उपोष्याः परसंयुक्ताः पराः पूर्वेण संयुताः ॥" इति माधवीये बृहद्वसिष्ठोक्तेश्च । 'नागचतुर्थी तु मध्याह्नव्यापिनी पञ्चमीयुता च ग्राह्या ' इति निर्णयामृते । माधवीये चोक्तम्--"युगं मध्यन्दिने यत्र तत्रोपोष्य फणीश्वरान् । क्षीरेणाप्याय्य पञ्चम्यां पूजयेत्प्रयतो नरः ॥ विषाणि तस्य नश्यन्ति न तान्हिंसन्ति पन्नगाः ॥ " इति माधवीये देवलोक्तेः ॥ युगचतुर्थी । पूर्वत्र मध्याह्नव्याप्तौ पूर्वा । अन्यपक्षेषु परैव पञ्चम्यां पूजोक्तेः । गणेश-

---

भी यही लिखा है कि, जो पूर्व दिनमें हो तो कृष्णपक्षकी द्वितीया पहली और शुक्लपक्षकी तो सब प्रकार दूसरी ही होती है। अनन्तभट्ट कहते हैं सब द्वितीया पहली ही करनी चाहिये।माधव भी यही कहते हैं कि, प्रभातकाल जो प्रथम दिन न हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त हो वह द्वितीया उपवासमें दूसरी ही लेनी और यदि ऐसी न हो तो प्रथम तिथि प्रतिपदासे विद्धा लेनी चाहिये ॥ रम्भातीजको छोड़कर सबके मतमें अगली ही तृतीया होती है, उसमें दो वाक्य रम्भाव्रतके विषयमें हैं। हे द्विजसत्तम! रम्भा नामक तीजको छोड़कर और सब कार्योंमें चतुर्थीयुक्त तृतीया श्रेष्ठ है ऐसा ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है ।गौरीव्रतमें माधव विशेष कहते हैं, मुहूर्त्तमात्र होनेसे भी दूसरे ही दिन गौरीव्रत करना चाहिये और यदि शुद्ध तृतीयाकी वृद्धि हो जाय तो भी चतुर्थीमें योगकी प्रशंसा होनेसे परदिनमें ही करनी। और गणेशचतुर्थीको छोड़कर सबके मतमें पहली ही चतुर्थी लेनी । इसमें भी युग्म वाक्य हैं, माधवीयमें वृद्धवसिष्ठका वचन है कि, एकादशी, छठ,अमावस्या,चौथ यह उपवास करनेमें परतिथिसे संयुक्त लेनी और नागचतुर्थी तो मध्याह्नव्यापिनी पंचमीसे युक्त ग्रहण करनी, ऐसा निर्णयामृत और माधवीयने कहा है। नागतिथि मध्याह्नव्यापिनी पंचमीसे युक्त ग्रहण करनी। जिस दिन मध्याह्नमें चतुर्थी हो उस दिन उपवास करके पंचमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराय जो इनकी पूजा करता है उसके विष दूर होते हैं और उनको सर्प नहीं काटते हैं, ऐसा माधवीयमें देवलका वचन है । मध्याह्नसे प्रथम पंचमी आजाय तो पहली न होकर परली होती है। कारण कि, पूजा पंचमीमें लिखी है।

व्रते तृतीयायुतैव चतुर्थी । "चतुर्थी तु तृतीयायां महापुण्यफलप्रदा । कर्त्तव्या व्रतिभिर्वत्स गणनाथसुतोषिणी ॥" इति हेमाद्रौ ब्रह्मवैवर्तात् । माधवीये तु गणेशव्रते मध्याह्नव्यापिनी मुख्या । "चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते । मध्याह्नव्यापिनी चेत्स्यात्परतश्चेत्परेऽहनि ॥" इति बृहस्पतिवचनात् । "प्रातः शुक्लतिलैः स्नात्वा मध्याह्ने पूजयेन्नृप ।" इति तत्कल्पेऽभिधानाच्च । तेन परदिने सत्त्वे परा । अन्यथा पूर्वत्युक्तम् । वस्तुतस्तु यत्र भाद्रशुक्लचतुर्थ्यादौ गणेशव्रतविशेषे मध्याह्नपूजोक्ता तद्विषयाण्येव प्रागुक्तवचनानि, न तु सार्वत्रिकाणि । संकष्टचतुर्थ्यादौ बहूनां कर्मकालानां बाधापत्तेः । तेन सर्वत्र गणेशव्रते पूर्वैवेति सिद्धम् । संकष्टचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वये सत्त्वे मातृयोगस्य सत्त्वात्पूर्वैवेति केचित् । अन्ये तु दिने मुहूर्तत्रयादिरूपस्य तृतीयायोगस्य भावात् परदिने माधवोक्तमध्याह्नव्यापिसत्त्वात्सम्पूर्णत्वाच्च परेत्याचक्षते । दिनद्वये तदभावे तु परैव । गौरीव्रते तु पूर्वैव । "गणेशगौरीबहुला व्यतिरिक्ताः प्रकीर्तिताः । चतुर्थ्यः पञ्चमीविद्धा देवतान्तरयोगतः ॥" इति मदनरत्ने ब्रह्मवैवर्तात् ॥

पञ्चमीनिर्णयः । पञ्चमी तु माधवमते सर्वापि पूर्वा–"चतुर्थीसंयुता कार्या पञ्चमी

और गणेशव्रतमें तृतीयायुक्त चतुर्थी लेनी । कारण कि, तृतीयामें चतुर्थी महापुण्यकी देनेवाली है, वही गणेशजीके प्रसन्न करनेको करनी चाहिये, ऐसा हेमाद्रिमें ब्रह्मवैवर्तका वचन है और माधवीयमें तो गणशव्रतमें मध्याह्नव्यापिनी ही मुख्य कही है कि, गणेशचतुर्थी तृतीयायुक्त श्रेष्ठ ह और जो वह मध्याह्नव्यापिनी हो वा परे हो तो अगले दिन होती है, ऐसा बृहस्पतिका वचन है। हे राजन् ! प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे स्नान कर मध्याह्नमें पूजन करै। ऐसा उसके कल्पमें विधान किया है इससे परदिन होनेसे परा करनी अन्यथा पूर्व करनी यह कहा है और जहां भाद्र शुक्ल चौथमें गणेशव्रत विषयमें मध्याह्नकी पूजा कही है उसके विषयके पहले ही वचन कह दिया है वह सर्वत्रके नहीं है कारण कि, संकष्टचतुर्थी आदिमें बहुतसे कालका बाध हो जायगा, इससे गणेशव्रतमें सर्वत्र पहली लेनी, यह सिद्ध हुआ । और यह कहते हैं कि संकष्टचतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी लेनी और यदि दोनों दिन चन्द्रयोग हो तो तृतीयाका योग होनेसे प्रथमकी ही ग्रहण करनी । और तो यह कहते हैं कि, यदि प्रथम दिन तीन मुहूर्त आदि तृतीयाका योग न हो और अगले दिन माधवकी कही मध्याह्नव्यापिनी हो तो सम्पूर्ण चतुर्थी होनेसे परली स्वीकार करनी और यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी न हो तो परली करनी और गौरीव्रतमें तो पहली ही लेनी । कारण कि, गणेश गौरी बहुला इनसे अतिरिक्त जो चतुर्थी ह वह दूसरे देवताओंके व्रतमें पंचमीयुक्त लेनी चाहिये, ऐसा मदनरत्नमें ब्रह्मवैवर्त्तका वचन है । माधवने सब ही पंचमी पहली लेनी लिखी है । चतुर्थीसे युक्त पंचमी करनी पष्ठीसे युक्त नहीं; चाहे दैव, चाहे

परया न तु। दैवे कर्मणि पित्र्ये च शुक्लपक्षे तथासिता ॥" इति हारीतोक्तेः। हेमाद्रिमते तु कृष्णा पूर्वा सितापरा । 'कृष्णा पूर्वयुता सिता परयुता स्यात्पञ्चमी' इति दीपिकोक्तेः । वस्तुतस्तु हारीतोक्तिरुपवासविषया । "प्रतिपत्पञ्चमी चैव सावित्री भूतपूर्णिमा । नवमी दशमी चैव नोपोष्याः परसंयुताः ॥" इति ब्रह्मवैवर्त्तात् ॥ यत्तु-"पञ्चमी तु प्रकर्त्तव्या षष्ठ्या युक्ता तु नारद" इत्यापस्तम्बीयं तत्स्कन्दव्रतपरम् । "स्कन्दोपवासे स्वीकार्या पञ्चमी परसंयुता" इति वाक्यशेषादिति माधवः । तन्नागपूजाविषयमित्यनन्तभट्टनिर्णयामृतादयः । चमत्कारचिन्तामणौ च-"पञ्चमी नागपूजायां कार्य्या षष्ठीसमन्विता । तस्यां तु तुषिता नागा इतरा सचतुर्थिका ॥" इति । तेन नागपूजादौ परैव ॥ यत्तु मदनरत्नदिवोदासीययोः-"श्रावणे पञ्चमी शुक्ला संप्रोक्ता नागपञ्चमी । तां परित्यज्य पञ्चम्यश्चतुर्थीसहिता हिताः ॥" इति संग्रहोक्तेः ॥ "गणेशस्कन्दयोगाभ्यां क्रमान्नागः शुभाशुभः । मित्रामित्रे तयोः पत्रे नागानामाखुबर्हिणौ ॥" इति षट्त्रिंशन्मताच्च । श्रावणपञ्चम्यतिरिक्ताया नागपञ्चम्याश्चतुर्थीयुतत्वमुक्तम् । तदुपवासादिविषयम् । पत्रे वाहने ॥ षष्ठीनिर्णयः । षष्ठी सर्वमते स्कन्दव्रतातिरिक्ता परैव । युग्मवाक्यात् । 'नागविद्धा न कर्त्तव्या षष्ठी चैव कदाचन' इति स्कान्दाच्च ॥

पित्र्यकर्म हो; चाहे शुक्ल, चाहे कृष्णपक्ष हो ऐसा हारीतने कहा है । हेमाद्रिके मतसे तो कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी अगली ग्रहण करनी । कारण कि, यही दीपिकामें कहा है, कृष्ण पंचमी चौथसे युक्त और शुक्लपक्षकी छठसे युक्त लेनी । यथार्थमें तो हारीतका वचन उपवासके विषयमें है, जैसा कि ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है प्रतिपदा, पंचमी, सावित्री चौदश, पूनौ, नवमी, दशमी ये जब परतिथिसे युक्त हों तो इनमें उपवास न करे और जो आपस्तंबमें यह लिखा है कि हे नारद ! पंचमी षष्ठीसे युक्त करनी चाहिये, यह वाक्य स्कन्दव्रतके विषयमें है, इसमें माधवका यह विशेष वचन है कि, स्कन्दव्रतमें पञ्चमीयुक्त षष्ठी लेनी चाहिये । अनन्तभट्ट निर्णयामृतादि इसको नागपूजाविषयक कहते हैं । चमत्कारचिन्तामणिमें भी लिखा है कि, नागपूजामें षष्ठीयुक्त पंचमी करनी । कारण कि, उसमें नाग प्रसन्न होते हैं और शेष चतुर्थीयुक्त करनी इससे नागपूजामें पर ही करनी । और जो मदनरत्न दिवोदासीयमें लिखा है कि, श्रावण शुक्लामें जो नागपंचमी है उसको छोडकर और पंचमी चतुर्थीयुक्त करनी उत्तम है । यह संग्रहका वचन है, कि चतुर्थीके योगसे क्रमसे नाग शुभ और अशुभ होते हैं । कारण कि चौथ और छठमें नागोंके वाहन मित्र और अमित्र आखु और बर्ही होते हैं, इस प्रकार षट्त्रिंशकका भी मत है । श्रावणशुक्ल पंचमीसे अतिरिक्त पंचमी चतुर्थीयुक्त करनी, यह उपवासके विषयमें है । स्कन्दव्रतके विना सबके मतमें षष्ठी परली ही ग्रहण की है इसमें युग्मवाक्य है । स्कन्दपुराणमें

सप्तमीनिर्णयः ॥ निर्णयामृते-"षष्ठी च सप्तमी चैव वारश्चेद् शुमालिनः । योगोऽयं पद्मको नाम सूर्यकोटिग्रहैः समः॥" सप्तमी पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'षष्ठ्या युता सप्तमी च कर्तव्या तात सर्वदा ' इति स्कान्दाच्च ॥ अष्टमीनिर्णयः । अष्टमी तु सर्वमते कृष्णा पूर्वा सिता परा । ' व्रतमात्रेऽष्टमी कृष्णा पूर्वा शुक्लाष्टमी परा ' इति माधवोक्तेः । परयुक् शुक्लाष्टमी पूर्वयुक् कृष्णा इति दीपिकोक्तेश्च ॥ शिवशक्त्युत्सवे च कृष्णाप्युत्तरा-"पक्षद्वयेप्युत्तरैव शिवशक्तिमहोत्सवे" इति माधवोक्तेः । बुधाष्टमीनिर्णयः ॥ दिवोदासीये भविष्ये-"यदायदा सिताष्टम्यां बुधवारो भवेत्कचित् । तदातदा हि सा ग्राह्या एकभक्ताशने नृप ॥ संध्याकाले तथा चैत्रे प्रसुप्ते च जनार्दने । बुधाष्टमी न कर्तव्या हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥" अंत्यं पद्यं हेमाद्रौ न धृतम् ॥ नवमीनिर्णयः ॥ नवमी तु सर्वमते पूर्वा युग्मवाक्यात् । ' न कुर्यान्नवमी तात दशम्या तु कदाचन ' इति स्कान्दाच्च ॥ दशमीनिर्णयः । दशमी तु पूर्वा परा च इति हेमाद्रिः । 'कृष्णा पूर्वोत्तरा शुक्ला दशम्येवं व्यवस्थिता' इति माधवः । वस्तुतस्तु मुख्या नवमीयुतैव ग्राह्या । 'दशमी तु प्रकर्त्तव्या सदुर्गा द्विजसत्तम' इत्यापस्तम्बोक्तेः । यत्तु-'सम्पूर्णा दशमी कार्या पूर्वया परयाथवा' इत्याङ्गिरसोक्तम्-तन्नवमीयुक्तालाभे औदयिकी ग्राह्येत्येवं नैवम् ॥ एकादशीनिर्णयः । अथै-

---

लिखा है कि,पंचमी विद्धा छठ कभी न करे।निर्णयामृतमें लिखा है,जो षष्ठी, सप्तमी रविवारके दिन हो यह पद्मक नामक योग सौ करोड सूर्यग्रहणके समान है । युग्मवाक्यसे सप्तमी पहली ही होती है । स्कन्दमें लिखा है, हे तात ! सदा सप्तमी छठके सहित करनी चाहिये । और अष्टमी सबके मतमें कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी पिछली होती है, ऐसा माधव कहते हैं । दीपिकामें भी यही लिखा है कि, कृष्णपक्षकी अष्टमी सप्तमीसे युक्त और शुक्लपक्षकी नवमीसे युक्त लेनी और शिवा शिवके उत्सवमें दोनों पक्षमें नवमीसे युक्त लेनी चाहिये,ऐसा माधव कहते हैं।दिवोदासीयमें भविष्यका वचन है, जब जब शुक्लाष्टमी बुधवारी हो हे राजन् ! तब तब एकभक्तवाले मनुष्यको वह ग्रहण करनी चाहिये। सन्ध्याकाल, चैत्र, जनार्दनके शयनमें बुधाष्टमी न करनी चाहिये, करनेसे पुरातन पुण्यको हरण करती है। हेमाद्रिमें अन्तका पद नहीं लिखा है ॥ नवमी तो सबके मतमें अष्टमीसे युक्त पहली ही लिखी है । युग्मवाक्य होनेसे स्कन्दपुराणका वचन है-हे तात ! दशमीयुक्त नौमी कभी न करनी चाहिये । हेमाद्रि कहते हैं कि,दशमी पहली वा परली होती है । कृष्णपक्षकी पहली और शुक्लपक्षकी पिछली करनी ऐसा माधव कहते हैं । यथार्थमें तो मुख्य नौमीयुक्त ही ग्रहण करनी चाहिये। कारण कि, हे द्विजश्रेष्ठ ! नौमीसे युक्त दशमी करनी ऐसा आपस्तम्बका वाक्य है और जो यह अंगिराने कहा है-सम्पूर्ण दशमी पूर्व वा परसे युक्त करनी चाहिये, यह वचन तब जानना जब नवमीयुक्त न मिले ॥ अब एकादशीका निर्णय कहते हैं । एकादशी उपवासके

कादशी ॥ तत्रैकादश्युपवासो द्वेधा--निषेधपरिपालनात्मको व्रतरूपश्च ॥ तत्राद्यः--"न शंखेन पिबेत्तोयं न खादेत्कूर्मसूकरौ । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति कौर्मदेवलाद्युक्तेः । अग्निपुराणेऽपि--"गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति ॥ न चात्र पर्युदासेन व्रतविधिः, तद्धेतुव्रतादिशब्दाभावात् ॥ व्रतरूपस्तु ब्रह्मवैवर्ते--"प्राप्ते हरिदिने सम्यग्विधाय नियमं निशि । दशम्यामुपवासस्य प्रकुर्याद्वैष्णवं व्रतम् ॥" इति । इदं च शिवभक्तादिभिरपि कार्यम् । "वैष्णवो वाथ शैवो वा कुर्यादेकादशीव्रतम्" इति शिवधर्मोक्तेः । 'वैष्णवो वाथ शैवो वा सौरोऽप्येतत्समाचरेत्' इति सौरपुराणाच्च । सोऽपि द्वेधा--नित्यः काम्यश्च । 'उपोष्यैकादशी नित्यं पक्षयोरुभयोरपि' इति गारुडोक्तेः । 'पक्षेपक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्' इति नारदोक्तेश्च नित्यता । "यदीच्छेद्विष्णुसायुज्यं श्रियं सन्ततिमात्मनः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति कौर्मादिषु फलश्रुतेश्च काम्यता । उभयैकादशीव्रतं गृहस्थातिरिक्तानामेव नित्यम् । गृहस्थस्य तु शुक्लायामेव व्रतं नित्यम्, न कृष्णायाम् । "एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि । वनस्थयति-

---

दो भेद हैं, एक निषेधपालन, एक व्रतरूपसे। पहला निषेधपालनात्मक कहते हैं--एकादशीके दिन शंखसे जल न पीये, कूर्म और शूकरको न खाय और दोनों पखवारोंमें एकादशीको भोजन न करे, यह कूर्मपुराण और देवलादिका वचन है । अग्निपुराणमें लिखा है--गृहस्थ, ब्रह्मचारी, अग्निहोत्री ये दोनों एकादशीको भोजन न करें। यहां कोई कहे कि, भोजनके निषेधसे व्रतकी विधि प्राप्त हो जायगी, सो उचित नहीं; कारण कि, व्रतविधिका हेतु कोई व्रतादि शब्द उन वचनोंमें नहीं है। व्रतका स्वरूप तो ब्रह्मवैवर्त्तने लिखा है। एकादशीके प्राप्त होनेपर रात्रिमें सम्यक् प्रकारसे नियम करके नियमपूर्वक दशमीके दिन ही वैष्णव व्रतका संकल्प करे । यह व्रत शिवके भक्तोंको भी करना उचित है ।शिवधर्ममें लिखा है--वैष्णव शैव कोई हो, एकादशीव्रत करना चाहिये । सौरपुराणमें लिखा है-वैष्णव, शैव, सूर्यभक्त कोई हो, यह व्रत करना चाहिये ।यह भी नित्य और काम्यभेदसे दो प्रकारका है । गरुडमें लिखा है कि, दोनों पक्षकी एकादशीमें नित्य उपवास करना नित्य है । नारद भी कहते हैं--प्रत्येक पक्षमें एकादशीका उपवास करना चाहिये यह नित्यपरत्व है । जो विष्णुके सायुज्यकी इच्छा हो, अपने कल्याणकी इच्छा हो, श्री और सन्तानकी इच्छा हो तो एकादशी दोनों पखवारेकीमें भोजन न करे, इस प्रकार कूर्मपुराणादिकी फलश्रुतिसे काम्यता भी है । दोनों एकादशीका व्रत गृहस्थसे अतिरिक्तोंको ही नित्य है । गृहस्थको तो शुक्लमें ही नित्यव्रत है, कृष्णमें नहीं । कारण कि, देवल कहते हैं, दोनों पक्षकी एकादशीमें भोजन न करे । यह वनवासी और

धर्मोऽयं शुक्लामेव सदा गृही ॥" इति देवलोक्तेः। न चानेन निषेधपालनमेव वनस्थयतिविषये उपसंह्रियते न तु व्रतमिति वाच्यम्। अस्य पर्युदासेन व्रतविधिपरत्वात्। अन्यथा पूर्वोक्ताग्निपुराणवचने निषेधपालने गृहस्थस्याधिकारोक्तया विरोधः स्यात्। निषेधस्य निवृत्तिमात्रफलत्वेन विशेषानपेक्षणादुपसंहारायोगात्। अभावस्य धर्मत्वाभावाच्च। तस्मादनेन सर्वेषामेकादशीव्रतविधायिनां सामान्यवाक्यानां वनस्थयतिविषये उपसंहारान्न गृहस्थस्य कृष्णायां नित्यव्रतप्राप्तिः॥ कथं तर्हि—"संक्रान्त्यामुपवासं च कृष्णैकादशिवासरे। चन्द्रसूर्यग्रहे चैव न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥" इति नारदादिवचनेषु कृष्णानिषेधः, प्राप्त्यभावादिति चेच्छ्रूयताम्—"शयनीबोधिनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन ॥" इति पाद्मे। गृहस्थस्य आषाढीकार्तिकीमध्यस्था या कृष्णा विहिता सा पुत्रवतो निषिध्यते। अन्यकृष्णायां तु न विधिः। सर्वविधीनां वनस्थयतिषूपसंहारात् निषेधः प्राप्त्यभावात्। शयन्यादिवाक्यं त्वपुत्रगृहिगोचरमित्यनन्तभट्टहेमाद्र्यादिग्रन्थाः॥ दीपिकापि—"असिता तु शयनी-

---

यतियोंका धर्म है और गृहस्थीको शुक्लाका व्रत करना चाहिये। यदि कोई कहे कि, इस वचनसे वानप्रस्थ और संन्यासीके विषयमें निषेधके पालनका ही उपसंहार करते हैं व्रतका नहीं, सो उचित नहीं। कारण कि, यह वाक्य पर्युदासद्वारा व्रतकी विधिका कहनेवाला है। यदि यह न मानोगे तो अग्निपुराणके वचनमें निषेधपालनमें जो गृहस्थीको अधिकार लिखा है उससे विरोध होगा, इस कारण निषेधको निवृत्तिका कथन करनेवाला होनेसे विशेषकी अपेक्षा नहीं है और इसीसे उपसंहारका अयोग है और अभाव कभी किसीका धर्म भी नहीं हो सकता, इस कारण इस वचनके द्वारा संपूर्ण सामान्य वाक्य जो एकादशी व्रतके बोधक हैं उनका वनवासी और संन्यासीके विषयमें उपसंहार होनेसे गृहस्थको नित्यव्रतकी विधि कृष्णपक्षमें प्राप्त नहीं होती। और यदि ऐसा है तो क्यों नारदजी ऐसा कहते हैं कि, संक्रांति कृष्णपक्षकी एकादशी सूर्य चन्द्रमाका ग्रहण इनमें पुत्रवान् गृहस्थी उपवास न करे, इत्यादि वचनोंसे सिद्ध है कि, निषेध प्राप्तिके विना नहीं हो सकता। ऐसी शंकापर यह समाधान है कि, देवशयनी और देवोत्थान इन दोनों एकादशियोंके मध्यमें जो कृष्णपक्षकी एकादशी है वही गृहस्थीको करनी चाहिये दूसरी नहीं। इस पद्मपुराणके वाक्यसे आषाढ और कार्तिकके मध्यमें जो कृष्णपक्षीय एकादशी हैं उनमें उपवास करना कहा है और पुत्रवालेको पूर्व कहे वचनसे उसका ही निषेध कहा है और कृष्ण एकादशीका तो विधान नहीं है, सब विधियोंमें वानप्रस्थ और संन्यासीके विषयमें समाप्ति होनेके कारण अभावसे निषेध नहीं है और पूर्वोक्त देवशयनी देवोद्बोधिनी आदि जो वचन है व पुत्री गृहस्थीके विषयमें जानने, यह अनन्तभट्ट हेमाद्रि आदि ग्रन्थ कहते हैं। दीपिकामें भी लिखा है कि, शयनी

बोधान्तरस्थाप्यथो न स्यात्सात्मजिनोऽपि" इति । मदनरत्ने भविष्ये-"यथा शुक्ला तथा कृष्णा द्वादशी मे सदा प्रिया । शुक्ला गृहस्थैः कर्त्तव्या भोगसन्तान-वर्धिनी । मुमुक्षुभिस्तथा कृष्णा न ते तेनोपदर्शिता ॥ " इति । निषेधपालनं काम्यव्रतं च सर्वकृष्णायां सर्वगृहिणां भवत्येव । "पुत्रवांश्च सभार्यश्च बन्धुयुक्त-स्तथैव च । उभयोः पक्षयोः काम्यव्रतं कुर्यात्तु वैष्णवम् ॥" इति नारदोक्तेः। एतच्च सर्वं कालादर्शे उक्तम्-"विधवाया वनस्थस्य यतेश्चैकादशीद्वये ॥ उपवासो गृहस्थस्य शुक्लायामेव पुत्रिणः । भुजेर्निषेधः कृष्णायां सिद्धिस्तस्य ततो व्रते ॥" इति । प्राच्यास्तु वैष्णवगृहस्थानां कृष्णापि नित्या । "नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्वि-ष्णुपरायणैः । पक्षेपक्षे च कर्तव्यमेकादश्यामुपोषणम् ॥ सपुत्रश्च सभार्यश्च सुजनो भक्तिसंयुतः । एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि ॥" इति नारदोक्तेरित्याहुः ॥ पुत्रशब्दश्चापत्यमात्रवचनः ॥ नारायणवृत्तौ-'पुमांस एव मे पुत्रा जायेरन्' इत्य-त्रापत्यमात्रवाचित्वोक्तेः ॥ 'जनयेद्बहुपुत्राणि' इति लिङ्गात् । 'पौत्री मातामहस्तेन' इति मनूक्तेः । पुत्र्या अपत्यमित्यर्थे तु " स्त्रीभ्यो ढक् " इति पौत्रेय इत्यापत्तेः ॥ 'पुमान् पुत्रो जायते ' इति च ॥ उपवासनिषेधे विशेषो वायवीये उक्तः-"उपवास-

---

बोधिनीके बीचमेंकी कृष्णा एकादशीको पुत्रवाला गृहस्थी न करे । मदनरत्नमें भविष्यपुरा-णका वचन है कि, जैसी शुक्ला वैसी ही कृष्णा द्वादशी मुझको सदा प्यारी है, शुक्ला गृहस्थि-योंको करनी चाहिये । यह भोग और सन्तानकी बढानेवाली है, मुमुक्षुओंको कृष्णा करनी चाहिये, जो उनके आचार्यने कही है । निषेधका पालन और काम्यव्रत तो सब कृष्णा एकादशियोंमें सब गृहस्थी करें; कारण कि, नारद यह कहते हैं कि, पुत्रवान् भार्यायुक्त और बन्धुसम्पन्न गृहस्थी विष्णुके काम्यव्रतको दोनों पखवारेमें करे, यह सब कालादर्शमें कहा है कि, विधवा, वानप्रस्थ और संन्यासी ये दोनों एकादशी और पुत्रवान् गृहस्थी शुक्लामें व्रत करे और भोजनका निषेध तो गृहस्थीको कृष्णामें भी है, इससे उसका व्रत सिद्ध होता है । प्राच्योंका यह कथन है कि, वैष्णव गृहस्थियोंको कृष्णा एकादशी भी नित्य है, कारण कि, नारदने यह लिखा है कि, विष्णुकी भक्तिमें तत्पर मनुष्य प्रत्येक पक्षमें एकादशीका व्रत करे, पुत्र, स्त्री, बंधु सम्पन्न भक्तिमान् मनुष्य भी दोनों पक्षोंकी एकादशीका व्रत करे, इन वाक्योंमें पुत्रशब्दसे सन्ततिमात्रका कथन जानना । नारायणवृत्तिमें कहा है कि, पुरुष ही मेरे अपत्य हो इसमें अपत्यमात्रका वाची पुत्रशब्द कहा है और मनु भी कहते हैं कि, नाना भी उस पुत्रके पुत्रसे पोतेवाला होता है । पुत्रके पुत्रको पौत्र कहते हैं । यदि बेटीका जो अपत्य ऐसा अर्थ होता तो (स्त्रीभ्यो ढक्) इस अष्टाध्यायीके सूत्रसे ढक् प्रत्यय होनेसे पौत्रेय पद होता और पुमान् पुत्र सन्तान होता है, ऐसा भी कहा है इससे भी पुत्रपद अपत्यका बोधक विदित होता है । वायुपुराणमें उपवासके निषेधमें कहा

निषेधे तु भक्ष्यं किंचित्प्रकल्पयेत् । नदुष्यत्युपवासेन उपवासफलं लभेत् ॥ " भक्ष्यं च तत्रैवोक्तम्–"नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाः क्षीरमथाम्बु चाज्यम्। यत्पञ्चगव्यं यदि वापि वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरं च ॥ " इत्यलम्। दशमीवेधनिर्णयः । तत्र दशमीवेधो द्वेधा–अरुणोदयवेधः सूर्योदयवेधश्चेति ॥ आद्यो गारुडे–"दशमीशेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्धि नैकादशीव्रतम् ॥ " इति । अरुणोदयस्वरूपं च माधवीये स्कान्दे–"उदयात्प्राक्चतस्रस्तु घाटिका अरुणोदयः " इति । यदपि–"उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता। संपूर्णैकादशी नाम तत्रैवोपवसेद्गृही ॥ इति " गारुडसौधर्मादिवचनम्। यच्च भविष्ये–"आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धान्या परिकीर्तिता। " इति । तदप्युपसंहारन्यायेन दण्डचतुष्टयपरमेव । हेमाद्रावप्येवम् । यत्तु ब्रह्मवैवर्ते–"चतस्रो घटिकाः प्रातररुणोदयनिश्चयः। चतुष्टयविभागोऽत्र वेधादीनां किलोदितः॥ अरुणोदयवेधः स्यात्सार्द्धं तु घटिकात्रयम् । अतिवेधो द्विघटिकः प्रभासं दर्शनाद्रवेः ॥ " महावेधोऽपि तत्रैव दृश्यते । "तुरीयस्तत्र विहितो योगः सूर्योदये बुधैः " इति तदप्यवयवद्वारा

है कि, यदि कोई वस्तु उपवासके निषेधमें भक्षण कर ले तो उपवासके न करनेसे वह दूषित नहीं होता और उसको उपवासका फल प्राप्त होता है। भक्ष्य वस्तु भी वहीं कही है–नक्त, हविष्य, अन्न, चावल, फल, तिल, दूध, जल, घी, गौका दूध, वायु इनमें क्रमसे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ जानने। विस्तारसे अलम्। दशमीका वेध एकादशीके विषयमें दो प्रकारका है। पहला अरुणोदयका और दूसरा सूर्योदयका वेध। प्रथम गरुडपुराणमें इस प्रकार कहा है कि, यदि दशमीके शेषमें अरुणोदय हो तो वैष्णव एकादशीव्रत न करें और माधवीयमें स्कंदके वचनसे इस प्रकार अरुणोदयका स्वरूप कहा है कि, सूर्योदयमें प्रथम चार घड़ी अरुणोदयकाल होता है और गरुड और धर्मादिका जो यह वाक्य है कि, हे ब्राह्मण ! यदि उदयसे पहले दो मुहूर्त एकादशी हो तो वह सम्पूर्ण एकादशी होती है। गृहस्थीको उसमें ही व्रत करना चाहिये। और जो भविष्यका यह वाक्य है कि, सूर्यके उदयसे प्रथम दो मुहूर्त हो तो वह एकादशी सम्पूर्ण जाननी। और इसके सिवाय विद्धा जाननी। उपसंहारके न्यायसे ये दोनों वाक्य भी चार घडीके विषयमें ही जानने। हेमाद्रिमें भी यही है और जो ब्रह्मवैवर्तमें यह लिखा है कि, प्रभात समय चार घड़ी अरुणोदयका निश्चय है और चार प्रकार वेधादिका विभाग कहा है, १ साढे तीन घडी अरुणोदय है, २ सूर्यकी प्रभा दीखनेसे दो घड़ी अतिवेध है, ३ सूर्यका दर्शन हो वा न हो वह महावेध भी वहां ही है, चौथा वेध वहां यह लिखा है कि, जो दशमी सूर्य उदयके समय हो। यह वचन भी अवयवके द्वारा अरुणोदयवेधपर ही है। यह माधवीय और मदनरत्नमें लिखा है। इनसे भिन्न

अरुणोदयवेधविशेषपरमेवेति माधवीये मदनरत्ने च । अन्यस्तूदयवेधः । तथान्येऽपि वेधाः । हेमाद्रौ माधवीये च गारुडे–"उदयात्प्राक् त्रिघटिकाव्यापिन्येकादशी यदा । संदिग्धैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मकाङ्क्षिभिः ॥ उदयात्प्राङ्मुहूर्तेन व्यापिन्येकादशी यदा । संयुक्तैकादशी नाम वर्ज्येयं धर्मवृद्धये "॥ हेमाद्रौ–रात्रेरन्त्याष्टमो भागोऽप्यरुणोदय उक्तः । "निशः प्रान्ते तु यामार्धे देववादित्रवादने । सारस्वतानध्ययने चारुणोदय उच्यते " ॥ इति स्मृतेः । अत्रेके एषां सर्वपक्षाणां मुहूर्तद्वयेन क्रोडीकारात् ' निशःप्रान्ते' इति वचनाच्च रात्रिमानवशात्सार्धत्रिदण्डादयोऽनेकेऽरुणोदयाः । तदाह हेमाद्रिः–"सार्धघटिकात्रयोक्तिरष्टाविंशति-

---

उदयवेध जानना । इसी प्रकार और भी वेध हेमाद्रि, माधव और गरुडपुराणमें कहे हैं । जो उदयसे पहले एकादशी तीन घड़ी व्यापिनी हो यह संदिग्धा एकादशी है,धर्मकी वृद्धिवालोंको यह त्यागनी चाहिये और जो एकादशी उदयसे पहले एक मुहूर्त हो वह संयुक्त एकादशी है। धर्मवृद्धिके अर्थ उसे भी छोड़ दे । हेमाद्रिमें रात्रिके अन्तका आठवां भाग अरुणोदय लिखा है, रात्रिके अन्तमें वह आधा पहर जब देवताओंके निमित्त बाजे बजें अथवा जब सरस्वतीका अनध्याय हो तब अरुणोदय होता है, ऐसी स्मृति है।किन्हींका इसमें यह कहना है कि, इन सब पक्षोंसे, मुहूर्त आनेसे और 'निशः प्रान्ते' इस स्मृतिके वचनसे रात्रिमानके अनुसार तीन घड़ी आदि अनेक अरुणोदय होते हैं । यही हेमाद्रि कहते हैं कि, साढ़े तीन घड़ीके वेधका कहना तब जानना जब अट्ठाईस घड़ी रात्रिका मान हो और यदि इससे अधिक रात्रिका

---

१ पूर्णा, खण्डा और विद्धाके भेदसे एकादशी तीन प्रकारकी है। उसमें ३२ मुहूर्तव्यापिनी पूर्ण, जो सूर्यके उदयसे प्रतिपदा आदि चली आवे वह एकादशीको छोडकर और पूर्ण कहाती है, ऐसा स्कन्दमें निषेध होनेसे लिखा है कि, हे विप्र ! जो उदयसे पहले दो मुहूर्त एकादशी हो वह पूर्णा एकादशी व्रतके योग्य है, यह गरुडमें कहा है। इसमें विशेष भी है कि, सूर्योदय ६० घडीपर्यन्त एकादशी हो तो सम्पूर्ण एकादशी धर्मफलवालोंको करनी चाहिये, यह गरुडमें लिखा है । अरुणोदयव्यापिनी परदिनमें न्यून होनेसे खण्डा कहाती है । अरुणोदयव्यापिनी विद्धा होती है। आदित्यके उदयसे दो मुहूर्त पहलेतक होनेसे एकादशी सम्पूर्ण होती है, इससे भिन्न विद्धा होती है। यह भविष्यमें लिखा है। विद्धा भी संदिग्ध और संयुक्त भेदसे दो प्रकारकी है। पुत्र और राज्यकी प्रसिद्धिके निमित्त द्वादशीमें उपवास कर त्रयोदशीमें पारण करनेसे सौ यज्ञका फल मिलता है। यह काम्य उपवास कहकर विधान किया । अब संदिग्धामें लक्ष देकर निषेध करते हैं । पुत्र पौत्रकी प्रसिद्धिके निमित्त द्वादशीमें व्रत करे, त्रयोदशीमें पारणासे सौ यज्ञका फल है। यह विहित काम्य उपवास व्रतका लक्ष कर निषेध करते हैं । उदयादिति-- यह दोनों वाक्य वैष्णवोंसे भिन्न दूसरोंके विषयमें हैं । वैष्णवोंके प्रति (नैवोपोष्यं वैष्णवेन) इस वचनसे व्यर्थ होनेसे इस प्रकार साधारणसे ही निवृत्तिसाधारणद्वारा निषेध होनेसे कहा ॥–

घटीमितरात्रिविषया । महत्तरास्तु-'रात्रीरपेक्ष्य चतस्रो घटिकाः इत्युक्तमिति' इत्याहुः तन्न। अरुणोदयशब्दस्यानेकार्थत्वापत्तेः न च मुहूर्तद्वयमर्थः । दण्डद्वयैकमुहूर्त्तादिवेधानां तथाप्यनुपपत्तेः । नहि तेषां यामार्धत्वमरुणोदयत्वं चास्ति । मुहूर्त्तद्वयस्य यामार्द्धस्य च चतस्रो घटिका इत्यनेनोपसंहाराच्च न तदर्थः। न च 'सार्द्धं तु घटिकात्रयम्' इत्यनेनापि तदापत्तिः शंक्या । तेन चतुर्दण्डवेधस्यैवोक्तेः । चतुर्दण्डेऽर्धघटीदशमीसत्त्वे हि वेधस्तदर्थः । द्विघटिकादौ तदयोगाच्च । यत्तु मतम्-कियतारुणोदयवेध इत्यपेक्षायां सार्द्धघटिकात्रयनियमादरुणोदयेऽर्धघटिकातो न्यूनदशमीसत्त्वे न दोष इति । तत्तुच्छम् । द्विदण्डादावपि तदापत्तेः । "दशमी-

---

मान हो तो उसकी अपेक्षासे चार घडीका अरुणोदय जानना, ऐसा जो कहना है सो ठीक नहीं। कारण कि, ऐसा कहनेसे अरुणोदय पदके अनेक अर्थ हो जायँगे और जो कहो कि, अरुणोदयका अर्थ दो मुहूर्त है, यह भी ठीक नहीं। इसमें भी दो घडी वा एक मुहूर्तका वेध न बन सकेगा। कारण कि, उनको आधा पहर और अरुणोदय नहीं बन सकते और दो मुहूर्त तथा आधे पहरकी चार घडी मानकर जो पूर्ति की है वह अर्थयोग्य नहीं है और यदि कहो कि, साढे तीन घडीके वचनसे अरुणोदय हो जायगा सो भी ठीक नहीं है। कारण यहाँ इस प्रकार चार घडी पर वेध लिखा है कि, जो चार घडीके आरम्भमें आधी घडी दशमी हो तो वेध होता है, यह दो घडीके अरुणोदयमें नहीं हो सकता। और जो किसीने यह स्वीकार किया है कि, वेध कितने अरुणोदयपर होता है यह अपेक्षा प्राप्त होनेपर अरुणोदयमें साढे तीन घडीके नियमसे आधी घडीसे न्यून दशमी हो तो कुछ दोष नहीं, यह मन्तव्य तुच्छ है। कारण

-"तथा च--एकादशी त्रेधा--पूर्णा, खण्डा, विद्धा चेति भेदात् ॥ तत्र या द्वाविंशन्मुहूर्त्तव्यापिनी सा पूर्णा-'प्रतिपत्प्रभृतिः सर्वा उदयादुदयाद्रवेः । सम्पूर्णा इति विख्याता हरिवासरवर्जिता' इति स्कान्दे। हरिवासरपर्युदासा तत्र-'उदयात्प्राग्यदा विप्र मुहूर्त्तद्वयसंयुता । सम्पूर्णैकादशी नाम, तत्रैवोपवसेद्गृही ॥' इति गारुडात्। अत्र विशेषापेक्षायाम् 'आदित्योदयवेलायां आरभ्य षष्टिनाडिकाः । सम्पूर्णैकादशी नाम कार्या धर्मफलेप्सुभिः' । इति गारुडं द्रष्टव्यम् । अरुणोदयव्यापिन्याः परदिने न्यूनत्वे खण्डा ॥ अरुणोदयाव्यापिनी तु विद्धा-'आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता । एकादशी तु सम्पूर्णा विद्धाऽन्या परिकीर्तिता ।' इति भविष्यात् । विद्धापि द्वेधा-संदिग्धा संयुक्ता च ॥ तत्र 'पुत्रराज्यप्रसिद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥' इति विहितं काम्योपवासं संदिग्धां लक्षयित्वा तत्र निषेधति-उदयादिति । 'पुत्रपौत्रप्रसिद्ध्यर्थं द्वादश्यामुपवासयेत् । तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम् ॥' इति विहितं काम्योपवासं संयुक्तां लक्षयित्वा तत्र निषेधति-उदयादिति । एतच्च वाक्यद्वयं वैष्णवेतरविषयम् । वैष्णवान्प्रति तन्निषेधवैयर्थ्यात्। 'नैवोपोष्यं वैष्णवेन' इति सामान्यत एव निवृत्त्यसाधारण्येन निषिद्धत्वात् ॥ इति टीका ॥"

शेषसंयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः । नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम् ॥" इति गारुडे भविष्ये च योगमात्रनिषेधात् ॥ नारदीयेऽपि—"लववेधेऽपि विप्रेन्द्र दशम्यैकादशीं त्यजेत् । सुराया बिंदुना स्पृष्टं गङ्गांभ इव निर्मलम् ॥" स्कान्देऽपि—" कलाकाष्ठादिगत्यैव दृश्यते दशमी विभो । एकादश्यां न कर्तव्यं व्रतं राजन्कदाचन ॥ " इति । तत्र कलादिवेधनिर्णयः । माधवोऽप्याह—सोऽयं कलादिवेधोऽरुणोदयवेधे सूर्योदयवेधे च समान इति ॥ निगमेऽपि—"सर्वप्रकारवेधोऽथमुपवासस्य दूषकः ।" इति । अत एव माधवेन—'अरुणोदयाद्यदंडेऽल्पदशमीस्पर्शे संपृक्ता, कृत्स्नघटीयोगे संदिग्धा, मुहूर्त्तव्याप्तौ संयुक्ता, उदये संकीर्णा, इत्युक्त्वा "अरुणोदयवेलायां दशमी यदि सङ्गता । संपृक्तैकादशी तां तु मोहिन्यै दत्तवान् प्रभुः ॥" इति गोभिलाद्युक्तेः पूर्वोक्तगारुडादेश्च सामान्यतो विशेषतश्चारुणोदयवेधो निषिद्धः । यत्त्वष्टमभागोऽरुणोदय इति हेमाद्रिणोक्तम् । यच्च महत्तरा रात्रीरिति तत्परमतं स्वयमेव दूषितम् । अन्तेऽप्युक्तम् । वेधतारतम्यं च दोषतारतम्यादुपपद्यत इति । दोषतारतम्यं च प्रायश्चित्ततारतम्यादवगम्यते । तच्चोक्तं हेमाद्रौ स्मृत्यन्तरे—"अज्ञानाद्यदि वा मोहात्कुर्वन्नेकादशीं नरः । दशमी-

---

कि, दो घडीके अरुणोदयमें भी यही बात होगी । जिस दिन अरुणोदयमें दशमी शेष हो उस दिन वैष्णवोंको एकदशीव्रत न करना चाहिये।इस गरुड और भविष्यपुराणके मतसे दशमीके योगमात्रमें व्रतका निषेध है। नारदपुराणमें लिखा है—हे राजन् ! जो दशमीका एकादशीसे लवमात्र भी वेध हो तो उसे त्याग कर दे, जैसे सुराकी बूंदसे निर्मल गंगाजल अपेय हो जाता है तद्वत् छोड दे।स्कन्दपुराणमें भी लिखा है—हे राजन् ! यदि काष्ठा कलायुक्त भी दशमी हो तो एकादशीका व्रत कभी न करे । माधवने भी लिखा है सो यह कला आदिका भेद अरुणोदय और सूर्यके वेधमें तुल्य है, निगममें भी लिखा है—यह सब प्रकारका ही वेध उपवासका दूषक है ।इसी कारण माधवने यह कहकर कि, अरुणोदयकी प्रथम घडीमें थोडा भी दशमीका स्पर्श हो तो सम्पृक्ता, पूरी घडीका योग होनेसे सन्दिग्धा, मुहूर्तकी व्याप्तिमें संयुक्ता और उदयमें दशमी हो तो यह एकादशी संकीर्णा होती है । फिर इस गोभिलके वचनसे यह कहा है कि अरुणोदयके समय दशमीका संग होनेसे सम्पृक्ता एकादशी होती है, प्रभुने उसे मोहनीको दिया है और पूर्वमें कहे गरुडादिके वचनसे भी सामान्य और विशेष रीतिसे भी अरुणोदयका वेध निषिद्ध ह । और जो हेमाद्रिने अरुणोदयकी रात्रिका आठवां भाग लिखा है और जो दीर्घरात्रिमें चार घडी वेध कहा है वह स्वयं ही दूषित किया है और पीछे लिखा है कि, वेधका न्यून अधिकता दोष न्यूनाधिक्यसे सिद्ध होता है और दोषकी न्यूनता और अधिकाई प्रायश्चित्तकी न्यूनाधिकतासे जानी जाती है, यह हेमाद्रिमें और स्मृतिके वचनसे लिखा है । जो मनुष्य अज्ञान वा मोहसे दशमीशेष एका-

शेषसंयुक्तां प्रायश्चित्तमिदं चरेत् ॥ कृच्छ्रपादं नरश्चीर्त्वा गां च दद्यात्सवत्सकाम्। सुवर्णस्यार्धकं देयं तिलद्रोणसमन्वितम् ॥" विधानान्तरं तत्रैव-"ब्राह्मणान्भोजयेत्त्रिंशद्गां च दद्यात्सवत्सकाम्। धरणस्यार्धकं देयं तिलद्रोणमथापि वा ॥" इति। अत्र वेधतारतम्याद्व्यवस्थेति हेमाद्रिः। 'निशः प्रान्ते' इत्यपि दोषाधिक्यार्थमेव। तस्माच्चतुर्घटिकात्मक एवारुणोदय इति सिद्धम्। तेन षट्पञ्चाशद्दण्डानंतरं दशमीप्रवेशेऽरुणोदयवेध उक्तो भवति। अंत्योऽपि तत्रैव कण्वेनोक्तः-"उदयोपरि विद्धा तु दशम्यैकादशी यदि। दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान्पाकशासनः ॥" इति। स्मृत्यन्तरेऽपि-"दशम्याः प्रान्तमादाय यदोदेति दिवाकरः। तेन स्पृष्टं हरेर्दिनं दत्तं जम्भासुराय तत् ॥" इति। तत्रारुणोदयवेधो वैष्णवविषयः। तद्वाक्येषु वैष्णवग्रहणात्। तत्स्वरूपं तु माधवीये स्कान्दे-"परमापदमापन्नो हर्षे वा समुपस्थिते। नैकादशीं त्यजेद्यस्तु यस्य दीक्षास्ति वैष्णवी ॥ विष्णवर्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ॥" इति। यद्यपि पित्रादेरागमदीक्षायां तन्मात्रस्य वैष्णवत्वं न तु पुत्रादेः तथापि स्वपारम्पर्यप्रसिद्धमेव वैष्णवत्वं स्मार्त्तत्वं च मन्यन्ते वृद्धाः। अत्रान्येषामतिप्रसक्तेरव्यभिचाराद्वैष्णवदीक्षावत्त्वमेव वैष्णवत्वम्। तत्त्वसागरे भविष्ये-"यथा शुक्ला

दशीको करता है, वह चौथाई कृच्छ्र करके वत्ससहित गौ, आधा सुवर्ण और द्रोण (३२ सेर) तिल देकर प्रायश्चित्त करे। वहीं विधानान्तर भी है कि, तीस ब्राह्मणोंको भोजन दे और सवत्सा गौ आदिका दान करे। इन प्रायश्चित्तोंमें वेधकी न्यूनाधिकतासे व्यवस्था है। यह हेमाद्रिका कथन है। 'निशःप्रान्ते' यह पूर्वोक्त वचन भी दोषकी आधिकताके निमित्त है इससे यह सिद्ध है कि, चार घडीका ही अरुणोदय होता है, इससे छप्पन घडीके उपरान्त दशमीके प्रवेशमें अरुणोदय लिखा गया है। कण्वके इस वचनसे और वेध भी वहीं कहा गया है। यदि दशमीमें सूर्योदयके उपरान्त एकादशी हो उसका फल इन्द्रने दानवोंकी प्रसन्नताके निमित्त प्रदान किया है और स्मृतियोंमें भी लिखा है यदि दशमीके अन्तमें सूर्योदय हो तो वह दशमीमिश्रित दिन राक्षसोंको मिलता है, अर्थात् जम्भ असुरके निमित्त है। उसमें अरुणोदय वेध वैष्णवोंके विषयमें है। कारण कि, उन वाक्योंमें वैष्णवपदका ग्रहण है। उसका स्वरूप तो माधवीयमें स्कन्दपुराणके वचनसे लिखा है कि, जिसको वैष्णवी दीक्षा है वह चाहे परम आपत्ति और परम हर्षको प्राप्त होवे एकादशी न त्यागे। जिसने अपने सम्पूर्ण आचार विष्णुको अर्पण कर दिये हैं उसको वैष्णव कहते हैं। यद्यपि पिता आदिको शास्त्रसे विष्णुकी दीक्षा हो तो पिता ही वैष्णव होगा, उसके पुत्र आदि वैष्णव न होंगे तो भी निज कुलकी परम्परासे प्रसिद्धिके कारण वृद्ध उनको वैष्णव और स्मार्त मानते हैं, परन्तु यथार्थमें व्यभिचारके अभावसे वही वैष्णव हो सकता है, जिसे विष्णुकी दीक्षा हो। तत्त्वसागरमें भविष्यका वचन है कि, जो शुक्ल और कृष्ण एकदशियोंको तुल्य मानता है उसको

तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा । तुल्ये ते मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते ॥ ” केचित्तु दशम्यां नवमीवेधमपि त्यजन्ति तत्र मूलं मृग्यम् । उदयवेधस्तु परिशेषात् स्मार्त्तगोचरः । तदाह माधवः–“अरुणोदयवेधोऽत्र वेधः सूर्योदये तथा । उक्तौ द्वौ दशमीविधौ वैष्णवस्मार्त्तयोः क्रमात् ॥ ” हेमाद्रिस्तु केषांचिदर्धरात्रेऽपि दशमीवेधमाह–“ अर्धरात्रे तु केषांचिद्दशम्या वेध उच्यते । कपालवेध इत्याहुराचार्या ये हरिप्रियाः ॥ नैतन्मम मतं यस्मात्त्रियामा रात्रिरिष्यते ॥ ” इति ब्रह्मवैवर्तात् । अस्यार्थः–‘अनद्यतने लङ्’ इत्यत्रातीताया रात्रेः पश्चिमयामद्वयमागामिन्या रात्रेः पूर्वयामद्वयं दिवसश्च स काल एषोऽद्यतनः । स काल इत्युक्तं महाभाष्ये स एव वर्त्तमानः काल एकादश्यहोरात्र उपोष्यः । तन्मध्ये दशमीप्रवेशे विद्धा सा त्याज्या । अत एव हेमाद्रौ–“दशम्याः संगदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु । वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोः सदा ॥ ” इति दोष उक्तः । चतुरो यामान् दिवसस्येत्यर्थः । स्वमते तु रात्रेस्त्रियामत्वात् प्रहरत्रयं पूर्वशेषः । तेन चतुर्थप्रहर एव वेधो युक्तः । सोऽप्यरुणोदय एव । ‘सूर्योदयं विना नैव स्नानदानादिकः क्रमः ’ इति मार्कण्डेयपुराणात् । ‘ प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः ’ इति कोशादरुणोदयमारभ्य सूर्यांशुप्रवृत्तेस्तत्रैव निषेधः । तेन मतभेदाद्व्यवस्थेति

वैष्णव कहते हैं । कोई दशमीमें नौमीका वेध हो तो इसको भी त्याग करते हैं परन्तु इसमें प्रमाण खोजना चाहिये और उदयवेध तो परिशेष होनेसें स्मार्तोंके निमित्त है सोई माधवने कहा है–दशमीके अरुणोदयमें और सूर्योदयमें दोनों वेध क्रमसे वैष्णव और स्मार्तोंके निमित्त हैं और हेमाद्रि तो ब्रह्मवैवर्तपुराणके वचनसे किसीके मतमें अर्धरातमें दशमीका वेध इष्ट कहते हैं परन्तु वह कहते हैं इसको भगवान्के प्रिय आचार्य कपालवेध कहते हैं यह मेरा मत नहीं है । कारण कि, रात्रि तीन पहरकी ही इष्ट है । इसका यह अर्थ है (अनद्यतने लङ्) अनद्यतन कालमें लङ् लकार हो । इसपर महाभाष्यमें यह लिखा है कि, बीती हुई रात्रिका पिछले दो पहर और आनेवाली रातके पहले दो पहर और मध्यका सारा दिन अद्यतन काल है, इसीको वर्तमान कहते हैं । इसी अहोरात्र समयमें एकादशीका व्रत करना चाहिये । यदि उसमें दशमीका प्रवेश हो जाय तो विद्धा एकादशी त्याग देनी चाहिये, इसीसे उसके विषयमें हेमाद्रिने दोष लिखा है कि, आधीरातसे उपरान्त दशमीके संग दोषसे दिनके चार पहरोंका संकल्प और पूजनमें सदा त्याग दे और अपने मतमें तो निशा तीन पहरकी होनेसे रातको तीन पहरकी पूर्वका शेष हो जाता है, इससे चौथे पहरमें ही वेध युक्त है और वह भी अरुणोदयमें ही जानना । कारण कि, सूर्योदयके विना स्नान दानादिका क्रम नहीं होता ऐसा मार्कण्डेयपुराणमें लिखा होनेसे और ‘प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यः’ ऐसा कोषसे अरुणोदयसे आरंभ करके सूर्यकी किरण जबतक प्रवृत्त हों तबतक उसमें ही वेधका निषेध है, इससे कोई इसकी

केचित् ॥ कैमुतिकन्यायेनारुणोदयवेधस्यैवेयं स्तुतिरिति तु माधवः ॥ यस्तु 'दिक्पञ्चदशभिस्तथा' इति वेधः स उपवासातिरिक्तविषय इति माधवः ॥ "सर्वप्रकारवेधोऽयमुपवासस्य दूषकः । सार्धसप्तमुहूर्त्तस्तु योगोऽयं बाधते व्रतम् ॥" इति निगमादित्यलम् ॥ अत्र माधवमते–वैष्णवैररुणोदयाविद्धा त्याज्या ॥ एकादशीद्वादशीवृद्धौ विशेषः । यदा त्वेकादश्येव शुद्धा सती वर्द्धते द्वादशी वा उभयं वा तदा परोपोष्या । "एकादशी द्वादशी वाधिका चेत्त्यज्यतां दिनम् । पूर्वं ग्राह्यं तूत्तरं स्यादिति वैष्णवनिर्णयः ॥" इति माधवोक्तेः। स्मार्त्तैस्तु–सूर्योदयविद्धा त्याज्या । यदा त्वेकादशी शुद्धा सती वर्धते द्वादशी च समा न्यूना वा तदा गृहस्थैः पूर्वा, यतिभिरुत्तरा कार्या। "प्रथमेऽहानि सम्पूर्णा व्याप्याहोरात्रसंयुता । द्वादश्यां च तथा तात दृश्यते पुनरेव च ॥ पूर्वा कार्या गृहस्थैश्च यतिभिश्चोत्तरा विभो ॥" इति स्कान्दोक्तेः । वर्धमानोऽप्येवमेवाह । उभयवृद्धौ तु शुद्धा विद्धा वा सर्वेषां परैव। "सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा । सर्वैरेवोत्तरा कार्या परतो द्वादशी यदि ॥" इति नारदोक्तेः। द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धायां पूर्वैव। "न चेदेकादशी विष्णौ द्वादशी परतः स्थिता । उपोष्यैकादशी तत्र यदीच्छेत्परमं

मतभेदसे व्यवस्था करते हैं। कैमुतिकन्यायसे यह अरुणोदयवेधकी ही स्तुति है। और जो दश पन्द्रह घडीका वेध किसीने लिखा है वह उपवाससे भिन्नमें जानना। कारण कि, निगममें यह लिखा है कि, यह सब प्रकारका वेध उपवासको दूषित करता है; और साढे सात घडीका वेध व्रतको दूषित करता है, विस्तार नहीं करते हैं। इसमें वैष्णवोंको माधवके मतसे अरुणोदय वेधवाली एकादशी त्यागनी चाहिये ॥ और जब शुद्ध एकादशीकी ही वृद्धि हो वा द्वादशी बढे अथवा दोनों बढ़ जायँ तो माधवके कहे अनुसार दूसरे दिन व्रत करना, अर्थात् एकादशी वा द्वादशी तिथि बढ़ जाय तो पहले दिनको त्याग दे अगले दिन व्रत करे, यह वैष्णवोंका निर्णय है। और स्मार्तोंको तो सूर्योदयविद्धा एकादशी त्यागनी चाहिये और जब शुद्ध एकादशी बढे द्वादशी उसके समान हो वा न्यून हो तो प्रथम दिन गृहस्थ और दूसरे दिन संन्यासी उपवास करे। यदि एकादशी पहले दिन सम्पूर्ण अहोरात्रव्यापिनी हो और हे तात! द्वादशीमें भी दीखे तो गृहस्थियोंको पहली और संन्यासियोंको पिछली करनी चाहिये, ऐसा स्कन्दपुराणमें लिखा है। वर्द्धमान भी कहते हैं–यदि दोनोंकी वृद्धि हो तो शुद्ध हो चाहे विद्ध सबकी पहली ही होती है। जब एकादशी पूर्ण दिन हो और प्रभातमें फिर भी हो तो सबको दूसरे दिन व्रत करना चाहिये, जो उससे अगले दिन द्वादशी हो तो यह नारदने कहा है। यदि द्वादशी मात्रकी वृद्धि हो तो प्रथम ही होती है, कारण कि, यह भी नारदजी ही कहते हैं–एकादशीकी वृद्धि न हो और अगले दिन

पदम् ॥" इति नारदोक्तेः। "द्वादशीमात्रवृद्धौ तु शुद्धाविद्धे व्यवस्थिते । शुद्धा पूर्वोत्तरा विद्धा स्मार्त्तनिर्णय ईदृशः॥" इति माधवोक्तेश्च । मदनरत्नेऽप्येवम्। यत्तु–"विद्धाप्यविद्धा विज्ञेया परतो द्वादशी न चेत्। अविद्धापि च विद्धा स्यात्परतो द्वादशी यदि॥" इति हेमाद्रौ पाद्मवचनम्। तदेकादश्या वृद्धौ ज्ञेयम्। तदुक्तं माधवेन–"एकादशी द्वादशी चेत्युभयं वर्द्धते यदा ॥ तदा पूर्वदिनं त्याज्यं स्मार्तैर्ग्राह्यं परं दिनम्॥" इति । द्वादशीमात्रवृद्धौ निर्णयः। विद्धैकादश्यां द्वादशीमात्रवृद्धौ च सर्वेषां परैव। तत्रैवैकादशीमात्रवृद्धौ गृहिणः पूर्वा, यतेरुत्तरा। पूर्वोक्तपाद्मोक्तेः। "एकादशीविवृद्धौ चेच्छुक्ले कृष्णे विशेषतः । उत्तरां तु यतिः कुर्यात्पूर्वामुपवसेद्गृही ॥" इति प्रचेतस उक्तेः॥ एतच्छुद्धाविद्धातुल्यमिति माधवः। "त्रयोदश्यां न लभ्येत द्वादशी यदि किंचन। उपोष्यैकादशी तत्र दशमीमिश्रितापि च॥" इति स्कान्दात्। "अविद्धानि निषिद्धैश्च न लभ्यन्ते दिनानि तु। मुहूर्तैः पञ्चभिर्विद्धा ग्राह्यैवैकादशी तिथिः॥" इत्यृष्यशृङ्गोक्तेश्च। मुहूर्तपञ्चकमरुणोदयमारभ्य ज्ञेयम्। अन्यथोत्तरेऽह्नि एकादश्यभावासम्भवात्। तथा च स एव–"सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः। प्रातर्भवतु वा मा भूद्यस्मान्नित्य-

---

द्वादशी हो तो परमपदकी इच्छावालेको उस एकादशीके दिन उपवास करना चाहिये। माधव कहते हैं केवल द्वादशी मात्रकी वृद्धि हो तो स्मार्तोंने इस शुद्धा विद्धाकी व्यवस्थामें ऐसा निर्णय कहा है कि, पहली शुद्धा और दूसरी विद्धा होती है। मदनरत्नमें भी यही लिखा है और हेमाद्रिमें जो पद्मपुराणका यह वचन है कि, यदि परे द्वादशी न हो तो विद्धा भी एकादशी अविद्धा जाननी चाहिये और द्वादशी हो तो अविद्धा भी विद्धा जाननी चाहिये। एकादशीके वृद्धिमें यह वचन है सोई माधव कहते हैं–जो एकादशी द्वादशी दोनोंकी वृद्धि हो तो स्मार्तोंको पहला दिन छोड़कर दूसरे दिन करनी चाहिये॥ यदि एकादशी विद्धा हो द्वादशीमात्रकी वृद्धि हो तो सबके मतमें परली होती है और यदि एकादशीमात्रकी वृद्धि हो तो गृहस्थको पहली, यतिको परली करनी चाहिये। यह पूर्वोक्त पक्षका वचन है। और प्रचेता भी कहते हैं कि शुक्लपक्षमें कृष्णपक्षमें एकादशीकी वृद्धि हो तो पहली गृहस्थी और यति अगली करे, यह वचन शुद्धा और विद्धामें तुल्य है ऐसा माधव कहते हैं। यदि द्वादशी कुछ भी त्रयोदशीमें न मिले तो दशमीसंयुक्त एकादशीमें भी व्रत कर ले, यह स्कन्दमें लिखा है और ऋष्यशृङ्ग यह कहते हैं कि, निषिद्धोंसे विना वीधे बहुधा दिन नहीं मिलते हैं इससे एकादशी तिथि पांच मुहूर्तोंसे विद्धा हुई भी ग्रहण कर लेनी चाहिये। अरुणोदयसे आरम्भ कर पांच मुहूर्त लेने नहीं तो अगले दिन करे एकादशीके अभावकी असंभवतः प्राप्त होगी उनका ही यह कहना है कि, मनुष्योंको सर्वत्र द्वादशीसे मिली एकादशी करनी चाहिये प्रभातकालमें हो वा न हो। कारण कि, उपवास नित्य है

मुपोषणम् ॥" यदपि हेमाद्रिणा—"शुद्धसमा शुद्धन्यूना वा अधिकद्वादशीका चेत्सर्वेषां परैवेत्युक्तम्" तदपि वैष्णवविषयम् । स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्याविरोधः। हेमाद्रिमते तूच्यते तत्र—"शुद्धा विद्धा द्वयी नन्दा त्रेधा न्यूनसमाधिकैः। षट्प्रकारा पुनस्त्रेधा द्वादश्यूनसमाधिकैः॥" इत्यष्टादशैकादशीभेदाः । तत्र शुद्धाधिकन्यूनद्वादशिका शुद्धाधिकसमद्वादशिका च सकामैः पूर्वा। निष्कामैरुत्तरा कार्या। 'प्रथमेऽहानि सम्पूर्णा'इति पूर्वोक्तस्कान्दात्। ऊनद्वादशिकायां तु विष्णुप्रीतिकामैरुपवासद्वयं कार्यम्। "सम्पूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। लुप्यते द्वादशी तस्मिन्नुपवासः कथं भवेत्॥ उपोष्ये द्वे तिथी तत्र विष्णुप्रीणनतत्परैः॥" इति वृद्धवसिष्ठोक्तेः। शुद्धन्यूना शुद्धाधिका शुद्धसमा विद्धन्यूना विद्धसमा वाधिकद्वादशिका चेत्सर्वेषां परैवेति हेमाद्रिः । मदनरत्ने तु शुद्धाधिका परा। 'सम्पूर्णैकादशी यत्र' इति पूर्वोक्तेः। अन्या पूर्वा। "शुद्धा यदा समा हीना समा हीनाधिकोत्तरा। एकादशीमुपवसेन्न शुद्धां वैष्णवीमपि॥" इति स्कान्दात्। शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी। 'न चेदेकादशी विष्णौ' इति नारदोक्तेश्च॥ यत्तु—'अवि-

---

और जो हेमाद्रिने यह लिखा है कि, शुद्धके तुल्य शुद्धसे न्यून अधिक द्वादशीयुक्त एकादशी हो तो परली ही सबके मतमें होती है। यह भी वैष्णवोंके विषयमें है। और स्मार्तोंकी तो प्रथमकी ही होती है, इसमें कोई विरोध नहीं। हेमाद्रिके मतमें तो यह लिखा है कि, एकादशीके यह अठारह भेद हैं, वह इस प्रकार हैं कि, शुद्धा विद्धा—यह प्रत्येक न्यून सम और अधिक होनेसे छः भेद हुए फिर द्वादशीसे सम न्यून और अधिक यह तीन प्रकार हुए। प्रत्येकके साथ यह तीन मिलानेसे ६×३=१८ भेद हुए। जिसमें शुद्धासे अधिक वा न्यून द्वादशी हो तो सकाम पुरुष पहली और कामनारहित पिछली एकादशी "प्रथमेऽहनि सम्पूर्णा" इस स्कन्दके वचनसे करे। यदि एकादशीसे न्यून द्वादशी हो तो भगवान्के प्रिय करनेवाले भक्तोंको दो व्रत करने चाहिये। कारण कि, वृद्धवसिष्ठ कहते हैं कि, जब सम्पूर्ण एकादशी हो और प्रभातकालमें फिर भी द्वादशीकी हानि हो जाय तो उपवास कैसे करे तो ऐसे स्थलमें नारायणके प्रियकारीको दो उपवास करने चाहिये। और शुद्धसे न्यून, अधिक वा सम हो तो तथा विद्धसे तुल्य वा अधिक द्वादशीवाली एकादशी सबके मतसे परली ही होती है, यह हेमाद्रिका कथन है। मदनरत्नमें तो यह लिखा है—शुद्धाधिका एकादशी परली ही होती है "सम्पूर्णैकादशी यत्र" इसमें यह वचन प्रमाण है और इससे भिन्न हो तो पहली करनी चाहिये। कारण कि, स्कन्दपुराणमें लिखा है कि, जब समहीन शुद्धा एकादशी हो अथवा समहीन अधिक द्वादशी हो तो उस शुद्ध एकादशीको वैष्णव भी उपवास न करें शुद्धा एकादशी उत्तरा द्वादशी, "न चेदेकादशी विष्णौ" नारदजीके कथनसे यह

द्वापि च विद्धा स्यात् इति पाद्मम् । तच्छुद्धाधिकापरम् । यत्तु "सम्पूर्णैकादशी त्याज्या परतो द्वादशी यदि । उपोष्या द्वादशी शुद्धा द्वादश्यामेव पारणम् ॥" इत्यादि तद्वैष्णवपरम् । स्मार्तानां तु पूर्वैवेत्युक्तम् ॥ विद्धन्यूना समद्वादशिका तु मुमुक्षूणां पुत्रवतां च परा, अन्येषां पूर्वा । पुत्रवतोऽपि पूर्वेति मदनरत्ने ॥ विद्धन्यूना न्यूनद्वादशिका सैव सर्वैः कार्येति हेमाद्रिः ॥ मुमुक्षूणां परा । अन्येषां पूर्वेति मदनरत्ने ॥ विद्धसमा समद्वादशिकोनद्वादशिका च मुमुक्षुभिः पराऽन्यैः पूर्वा कार्या—"दशमीमिश्रिता पूर्वा द्वादशी यदि लुप्यते । शुद्धवद्द्वादशी राजन्नोपोष्या मोक्षकांक्षिभिः ॥" इति व्यासोक्तेः । मोक्षकांक्षिग्रहणादन्येषां पूर्वैव । "सर्वत्रैकादशी कार्या द्वादशीमिश्रिता नरैः । प्रातर्भवतु वा मा वा यतो नित्यमुपोषणम् ॥" इति पाद्मोक्तेः । विद्धाधिका समद्वादशिका च सर्वेषां पूर्वैव । "पारणाहे न लभ्येत द्वादशी कलयापि चेत् । तदानीं दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथिः ॥" इति ऋष्यशृङ्गोक्तेश्च ॥ माधवमते तु—अत्र गृहिणः पूर्वा यतेरुत्तरा विद्धाधिका न्यूनद्वादशिका मोक्षपापक्षयविष्णुप्रीति-

---

विदित है कि, अविद्धाको भी ऐसे स्थलमें विद्धा जाने, यह पद्मका वचन शुद्धाधिकाके विषयमें जानना चाहिये । और जो यह कथन है कि, यदि आगे द्वादशी हो तो सम्पूर्ण एकादशीको छोड़ दे और शुद्ध द्वादशीमेंही उपवास और पारणा करे । यह वचन वैष्णवोंके विषयमें है । यह पहले ही कह दिया है स्मार्तोंकी पहली होती है, जो एकादशी विद्धासे न्यून द्वादशीके तुल्य हो वह मुक्तिकी इच्छावालोंको और पुत्रवालोंको परली करनी चाहिये, औरोंको पहली करनी चाहिये । मदनरत्नमें लिखा है कि, पुत्रवालेकी भी पहली ही होती है । हेमाद्रिका यह कथन है कि, जो एकादशी विद्धासे न्यून और न्यून द्वादशीवाली है वह सबको करनी चाहिये । मदनरत्नमें कहते हैं—मुमुक्षुओंको परली और दूसरोंको पहली करनी चाहिये । और विद्धाके तुल्य द्वादशीके तुल्य वा जिससे द्वादशी न्यून हो ऐसी एकादशी मुमुक्षुओंको परली और दूसरोंको पहली करनी चाहिये । व्यासजी कहते हैं यदि द्वादशी घट जाय तो हे राजन् ! दशमीसे मिली पहली ही शुद्ध द्वादशी है, मुक्तिकी इच्छावालोंको उसमें व्रत करना चाहिये। इसमें मोक्षकी इच्छावालोंको ऐसा कहनेसे यह जताया कि, औरोंकी प्रथमकी होती है । कारण कि, पद्मपुराणमें यह लिखा है कि, सर्वत्र मनुष्य द्वादशीमिश्रित एकादशी करे । प्रभातकालमें हो वा न हो कारण कि, उपवास नित्य है । विद्धासे अधिक और द्वादशीके समान तो सबकी ही पहली होती है। यदि द्वादशी पारणाके दिन एक कला भी न मिले तो दशमीविद्धा एकादशीको भी उपवास कर लेना, ऐसा ऋष्यशृंगने कहा है । माधवके मतमें गृहस्थियोंकी पहली, संन्यासियोंकी अगली होती है। विद्धासे अधिक और द्वादशीसे हीन एकादशी मुक्ति, पापकी नष्टता, विष्णुकी प्रीति

कामैः परा कार्या। गृहस्थेन तु नक्तं कार्यम्। "एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी। उपवासं न कुर्वीत पुत्रपौत्रसमन्वितः॥" इति कौर्मे दिनक्षये उपवासनिषेधात्॥ "दशम्येकादशीविद्धा द्वादशी च क्षयं गता। क्षीणा सा द्वादशी ज्ञेया नक्तं तु गृहिणः स्मृतम्॥" इति वृद्धशातातपोक्तेश्च। गृहिणः पूर्वत्रोपवासः। एकादश्याः शुद्धन्यूनत्वे, शुद्धसमत्वे वा द्वादश्या न्यूनसमत्वयोरेकादश्यामुपवासः। यानि तु-"दशम्यनुगता हन्ति द्वादशी द्वादशीफलम्। धर्मापत्यधनायूंषि त्रयोदश्यां तु पारणम्॥" इति कौर्मादीनि दशमीवेधत्रयोदशीपारणयोः निषेधकानि तानि विहितभिन्नपराणि। अत्र मूलवचनानि तद्व्यवस्था चाकरे ज्ञेया। यत्तु कालहेमाद्रौ-"बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा। द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यां तु पारणम्॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः। 'संदिग्धेषु च वाक्येषु द्वादशीं समुपोषयेत्।' तथा-"विवादेषु च सर्वेषु द्वादश्यां समुपोषणम्। पारणं च त्रयोदश्यामाज्ञेयं मामकी मुने॥" इति पाद्मोक्तेश्च। वेधसंदेहे ज्योतिर्विदां विप्रतिपत्तौ वा परा कार्येत्युक्तम्। तद्वैष्णवविषयमित्यलं बहुना॥ अथात्रोपयुक्तं किंचिदुच्यते। तत्र दशमीप्रामेकादशीयोगे दशमीमध्ये एव भोजनं

देनेवाली है। इन वस्तुओंकी जिसको इच्छा हो वह परली करे। गृहस्थियोंको तो नक्तव्रत करना चाहिये। कारण कि, कूर्मपुराण और वृद्धशातातपके यह दो वचन क्रमसे लिखे हैं कि, यदि एकादशी और द्वादशी हो और त्रयोदशी रातके शेषमें हो तो पुत्र पौत्रवाला उपवास न करे। इसमें उपवासका निषेध दिनके क्षयमें है। यदि एकादशी दशमीसे विधी हो और द्वादशी घटी हो तो ऐसे अवसरमें वह द्वादशी क्षीण कहाती है। उसीमें गृहस्थीको नक्तव्रत करना लिखा है और गृहस्थीको पहलीमें उपवास करना कहा है। यदि एकादशी शुद्धासे कमती वा तुल्य हो वा द्वादशी कमती और तुल्य हो तो एकादशीमें व्रत करे और कूर्मपुराणादिके दशमी वेध और त्रयोदशीमें पारणके निषेधादि जो वचन हैं कि, दशमीसे मिश्रित एकादशी और तेरसमें पारणा करनी। द्वादशी एकादशीके पुण्यको और धर्म तथा सन्तानको नष्ट करती है। वे जिसका शास्त्रसे विधान नहीं है उनके निषेध हैं, इनके मूलवचन और उनकी व्यवस्था बड़े ग्रन्थोंमें जाननी चाहिये। और जो कालहेमाद्रिमें यह लिखा है कि, जब बहुत वाक्योंके विरोध होनेसे सन्देह हो तो द्वादशीमें व्रत और त्रयोदशीमें पारणा करनी, यह मार्कण्डेयका कथन है कि, सन्देहके वाक्य हों तो द्वादशीमें उपवास करे। और पद्मपुराणका यह वचन है कि, सब विवाद होनेसे द्वादशीमें व्रत करे और त्रयोदशीमें पारणा करे। हे मुने! यह मेरी आज्ञा है, इस पद्मपुराणके वचनसे वेधके सन्देहमें ज्योतिषियोंके विवादमें अगली करनी चाहिये, यह दिखलाया सो यह वैष्णवोंके विषयमें है। विस्तारसे अलम्। अब कुछ उपयोगी कहते हैं। दशमीका

कार्यम्। 'एकादश्यां न भुञ्जीत' इति तस्या एव निमित्तत्वात्। 'निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते' इति देवलोक्तेश्च। केचित्तु एकादशीव्रताङ्गत्वेन पूर्वेद्युरेकभक्तविधानाद्विधिस्पृष्टे च निषेधानवकाशान्न काम्यव्रतांगे भोजननिषेधः प्रवर्तते तेनैकादशीमध्येऽपि पूर्वदिने भोजनमित्याहुः। अत्राधिकारी माधवीये कात्यायनेनोक्तः—"अष्टवर्षाधिको मर्त्यो ह्यशीतिर्न्यूनवत्सरः॥ एकादश्यामुपवसेत्पक्षयोरुभयोरपि॥" इति। स्त्रीणां भर्तुरनुज्ञया व्रतविधिः। भविष्ये—'ब्रह्मचारी च नारी च शुक्लामेव सदा गृही।' इति। यत्तु विष्णुः—"पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्। आयुष्यं हरते भर्तुर्नरकं चैव गच्छति॥" इति। तद्भर्त्रनुज्ञाविषयमिति प्रागुक्तम्॥ उपवासासामर्थ्ये तु मार्कण्डेयकौर्मयोः—"एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन दानेन न निर्द्वादशिको भवेत्॥" अत्र—"एकभक्तेन यो मर्त्य उपवासव्रतं चरेत्" इत्येकभक्तादिषूपवासशब्दस्तद्धर्मातिदेशार्थः। तेन तत्प्रयुक्ताः सर्वे धर्माः संकल्पमात्रे चैकभक्तादिपदेनोहः कार्य इति मदनरत्ने। तथाऽसामर्थ्ये प्रतिनिधिना कारयेदिति प्रागुक्तम्। व्रताकरणे प्रायश्चित्तमाह माधवीये कात्यायनः—"अर्के पर्वद्वये रात्रौ चतुर्दश्यष्टमी दिवा। एकदश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं

एकादशीसे योग हो तो दशमीके मध्यमें भोजन कर लेना, कारण कि, एकादशीमें भोजन न करे उसमें यह निमित्त है। निषेध तो निवृत्तिरूप कालमात्रकी अपेक्षा रखता है, ऐसा देवल कहते हैं। और कोई तो एकादशीके व्रताङ्गत्वका कारण प्रथम दिन भोजनके निषेधकी विधिसे युक्त कालमें भोजनके निषेधका अनवकाश कहते हैं, इससे काम्यव्रतके अंगमें भोजनका निषेध प्राप्त होता है, इससे पूर्व दिन एकादशीके मध्यमें भी भोजन कर ले यह प्राप्त हुआ। इसमें अधिकारी माधवीयमें कात्यायनके वचनसे कहा है—आठ वर्षसे अधिक और ८० वर्षतकका मनुष्य एकादशी उपवास दोनों पक्षमें करे। भविष्यपुराणमें लिखा है—ब्रह्मचारी, स्त्री और गृहस्थी शुक्ला एकादशीमें व्रत करें। जो विष्णु कहते हैं कि, जो स्त्री पतिके जीवित रहते उपवास कर व्रत करती है वह स्वामीकी आयु हरण करती है तथा नरकको जाती है। यह स्वामीकी आज्ञाके विना व्रत करनेमें है, ऐसा पहले ही कह चुके हैं। उपवासके असमर्थ होनेमें मार्कण्डेय और कूर्मपुराणमें लिखा है, एकभक्त, नक्त, अयाचित, उपवास और दान इनसे भी एकादशी व्रत होता है, इनमें जो मनुष्य एकभक्तसे उपवास व्रत करता है, इसमें उपवास शब्द इस कारण है कि, उसमें उपवासके धर्म करने उचित हैं, इससे उसके प्रतिनिधिमें भी उपवासके सब धर्म होते हैं और केवल संकल्पमात्रमें उपवासके स्थानमें एकभक्त उच्चारण करे ऐसा मदनरत्नमें लिखा है। और सामर्थ्य न होनेसे प्रतिनिधिसे करावे यह पहले ही कह चुके हैं। व्रतके न करनेमें माधवने कात्यायनके वचनसे प्रायश्चित्त लिखा है—रविवार अमावस पूर्णिमामें तो रात्रिमें

चरेत् ॥" इति ॥ अथ काम्यव्रतविधिः लघुनारदीये-"दशम्यादि महीपाल त्रिदिनं परिवर्जयेत्। गन्धताम्बूलपुष्पादि स्त्रीसंभोगं महायशाः ॥" तत्र दशम्यां विधिः कौर्मे-"कांस्यं मांसं मसूरांश्च चणकान्कोरदूषकान्। शाकं मधु परान्नं च त्यजेदुपवसंस्त्रियम् ॥" तथा-"शाकं मांसमसूरांश्च पुनर्भोजनमैथुने। द्यूतमत्यंबुपानं च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत् ॥" मदनरत्ने नारदीये-"अक्षारलवणाः सर्वे हविष्यान्ननिषेविणः। अवनीतलपशयनाः प्रियासंगमवार्जिताः ॥" व्रतघ्नान्याह हेमाद्रौ देवलः-"असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्। उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात् ॥" अशक्तौ तु मदनरत्ने देवलः-'अत्यये चाम्बुपानेन नोपवासः प्रणश्यति'। अत्यये कष्टे ॥ विष्णुरहस्ये-"गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं चानुलेपनम्। व्रतस्थो वर्जयेत्सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतम् ॥" एषु प्रायश्चित्तमुक्तं निर्णयामृते संग्रहे-"स्तेनहिंसकयोः सख्यं कृत्वा स्तैन्यं च हिंसनम्। प्रायश्चित्तं व्रती कुर्याज्जपेन्नामशतत्रयम् ॥ मिथ्यावादे दिवास्वापे बहुशोऽम्बुनिषेवणे। अष्टाक्षरं व्रती जप्त्वा शतमष्टोत्तरं शुचिः ॥" तत्रैव पैठीनसिः-"ताम्बूलचर्वणे स्त्रीसंभोगे मांसनिषेवणे। व्रतलोपो न चेत्कुर्यात्कृष्णावद्धुजिवर्जनम् ॥" इति।

चौदश और अष्टमीको दिनमें और एकादशीको दिन रातमें किसी समय भोजन करे तो चान्द्रायण व्रत करना होता है। अब काम्यव्रतकी विधि कहते हैं-लघुनारदीयमें लिखा है कि, हे राजन्! दशमी, एकादशी, द्वादशी तीन दिनतक गन्धसेवन, ताम्बूलका खाना, पुष्पादिधारण और स्त्रीसम्भोग त्याग दे। उसमें दशमीमें कर्तव्य विधि कूर्मपुराणमें लिखी है, कांसीके पात्रमें भोजन, मांस, मसूर, चना, कोदों, शाक, शहत, पराया अन्न और स्त्री इनको व्रती त्याग दे। तथा शाक, मांस, मसूर, पुनर्भोजन, मैथुन, द्यूत, बहुत जलका पीना यह वैष्णव दशमीको त्याग दे। मदनरत्नमें नारदीयका वचन है-सब प्रकारके खारी और लवण यह व्रती न खाय और हविष्यान्नका भोजन करे, भूमिमें शयन करे, प्रियाके संगको वर्जित करे। देवल कहते हैं-वारंवार जलपान, एक ही बार ताम्बूल भक्षण, दिनमें सोने और मैथुन करनेसे उपवास नष्ट हो जाता है। अशक्तिमें तो मदनरत्नमें देवल कहते हैं-कि, कष्टमें जलमात्रपानसे उपवास नहीं नष्ट होता। विष्णुरहस्यमें लिखा है-शरीर और शिरमें उबटन लगाना, ताम्बूल खाना, सुगन्ध लगाना तथा और भी निषिद्ध वस्तुओंको व्रतमें व्रतीको त्यागना चाहिये। निर्णयामृतसंग्रहमें इनका प्रायश्चित्त लिखा है, हिंसक और चोरकी मित्रताई, चोरी और हिंसा करनी इनको व्रती मनुष्य त्याग दे, यदि करे तो तीन सौ नाम भगवानके जपे। असत्य भाषण, दिनमें शयन और वारंवार जलपान अष्टाक्षर मन्त्रको व्रती १०८ वार जपे (ओं नमो नारायणाय) यह अष्टाक्षरमन्त्र है। वहीं पैठीनसी स्मृतिका वचन है-ताम्बूलचर्वण, स्त्रीसंभोग, मांससेवन इनसे जो व्रतलोप

कृष्णैकादशीवद्भोजननिषेधमात्रपरिपालने तु ताम्बूलचर्वणादावपि न दोष इत्यर्थः । संभोगे ऋतुकालादन्यत्र । 'रेतःसेकात्मसंभोगमृतेऽन्यत्र क्षयः स्मृतः' इति कात्यायनोक्तेः । हेमाद्रौ वसिष्ठः—"उपवासे तथा श्राद्धे न कुर्याद्दन्तधावनम् । दन्तानां काष्ठसंयोगो दहत्यासप्तमं कुलम् ॥" काष्ठग्रहणान्मृल्लोष्टाद्यनिषेध इति हेमाद्रिः । विष्णुरहस्ये—"श्राद्धोपवासादिवसे खादित्वा दन्तधावनम् । गायत्र्या शतसंपूतमम्बु प्राश्य विशुध्यति ॥" निर्णयामृते व्यासः—'वर्जयेत्पारणे मांसं व्रताहेऽप्यौषधं सदा' इति ॥ तत्र श्राद्धनिर्णयः । एकादश्यां श्राद्धप्राप्तौ माधवीये कात्यायन आह—"उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत् । उपवासं तदा कुर्यादाघ्राय पितृसेवितम् ॥ मातापित्रोः क्षये प्राप्ते भवेदेकादशी यदि । अभ्यर्च्य पितृदेवांश्च आजिघ्रेत्पितृसेवितम् ॥" इति । हेमाद्र्यादिसर्वनिबन्धेष्वप्येवम् । एतेन एकादशीनिमित्तकं श्राद्धं द्वादश्यां कार्यमिति वदन्तः परास्ताः ॥ किंच महालये—"स पक्षः सकलः पूज्यः श्राद्धषोडशकं प्रति" इति श्रुतं षोडशत्वम् । पौषैकादश्यां

होनेकी इच्छा करे तो कृष्ण एकादशीके समान भोजनको छोड़ दे, अर्थात् एकादशीके समान भोजनके निषेध मात्र परिपालनमें तो ताम्बूलचर्वणादिमें भी दोष नहीं है और संभोगका निषेध ऋतुमात्रको त्याग कर लेना। कारण कि, कात्यायन कहते हैं—रेतका सिंचन ऋतुके विना अपने सुखके निमित्त करनेसे उपवासका लोप करता है । हेमाद्रिमें वसिष्ठका वचन है-उपवास और श्राद्धमें दतौन न करे, दांतोंसे काष्ठका संयोग सात कुलको दग्ध करता है, काष्ठके ग्रहणसे मृत्तिका ढेले आदिका निषेध नहीं है, यह हेमाद्रि कहते हैं । विष्णुरहस्यमें लिखा है, श्राद्ध और उपवासके दिन दतौनको चाबकर सौ गायत्री पढ़ जलका आचमन करनेसे फिर शुद्ध होता है । निर्णयामृतमें व्यास कहते हैं—पारणमें मांस और व्रतके दिन औषधीको कभी न खाय, एकादशीमें श्राद्ध आ पड़े तो माधवीयमें कात्यायनका वचन है कि, उपवास तो नित्य और श्राद्ध नैमित्तिक है तो पितरोंको दिये पदार्थको सूंघकर उपवास कर ले। यदि माता पिताके क्षयाहमें एकादशी आ जाय तो पितृदेवताओंका पूजन करके पितरोंके दिये पदार्थको सूंघ ले । हेमाद्रि आदि सब निबन्धोंमें भी यही लिखा है,इससे एकादशी निमित्तक श्राद्ध द्वादशीमें करना चाहिये ऐसा कहनेवाले परास्त हुए और महालयमें भी अर्थात् कन्यागतमें भी वह पक्ष सम्पूर्ण सोलह श्राद्धके कारणसे सत्कार योग्य है। इस प्रकार सोलह संख्या सुनी हुई।

---

१ व्यासः—'अलाभे दन्तकाष्ठानां निषिद्धायां तिथौ तथा अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम् ॥' इति मयूखः । पैठीनसिः—'अलाभे वा निषेधे वा काष्ठानां दन्तधावने ॥ पर्णादिना विशुध्येत जिह्वोल्लेखं सदैव च' ॥ निषिद्ध तिथिमें बारह कुल्ले कर ले दतौन न करे यह व्यास कहते हैं । वा पत्तेसे मुख शुद्ध कर ले ।

च मन्वादिश्राद्धं, क्षयाहापरिज्ञाने च तत्पक्षैकादश्यां विहितं श्राद्धं बाधितमेव स्यात्। यदपि स्मृतिचन्द्रिकास्थं पठन्ति-"अन्नाश्रितानि पापानि तद्भोक्तुर्दातुरेव च। मज्जन्ति पितरस्तस्य नरके शाश्वतीः समाः॥" इति। तस्यापि रागप्राप्त-भुजिगोचरस्य वैधं श्राद्धं गोचरयतां महत्साहसमित्यलम्। योऽपि-'अकृतश्राद्ध-निचया जलपिण्डं विना कृताः' इति। लघुनारदीये एकादश्यां श्राद्धादिनिषेधः स मातापितृभिन्नविषयः। पूर्ववाक्ये तद्ग्रहणात्। निचयः प्रतिग्रहः॥ व्रतघ्ननिर्णयः। व्रतघ्नान्याह मदनरत्ने देवलः-"सर्वभूतभयं व्याधिः प्रमादो गुरुशासनम्। अव्रतघ्नानि पठ्यन्ते सकृदेतानि शास्त्रतः॥" स्कान्देऽपि-"अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥" इदं चातिसंकटविषयम्॥ नारदीये-"अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि। मूलं फलं पयस्तोयमुपभोज्यं भवेच्छुभे॥ न त्वेवं भोजनं कैश्चिदेकादश्यां बुधैः स्मृतम्॥" इति॥ अस्यापवादः-"शयने च मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्तने। नरो मूलफलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्॥" एते चाविरोधिनो निर्णयाः सर्वव्रतेषु ज्ञेयाः॥ तत्रैकादश्यां संकल्पः-"गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः।

और मन्वादिक श्राद्ध पौषकी एकादशीको और मृत्युदिनके अज्ञातमें उस पक्षकी एकादशीमें श्राद्ध करना, इन सबका बाध हो जायगा। यद्यपि स्मृतिचन्द्रिकाकार यह वाक्य पढते हैं कि, एकादशीको भोक्ता और दाताके पाप अन्नमें निवास करते हैं,इससे दाता भोक्ताके पितर बहुत कालतक नरकमें रहते हैं यह वचन अनुरागसे प्राप्त हुए भोजनका निषेधक है, इसको शास्त्र-कथित श्राद्धमें माननेवाले मानो बडा ही साहस करते हैं और जो लघुनारदीयमें यह लिखा है कि, एकादशीको व्रती मनुष्य श्राद्धमें प्रतिग्रह न ले तथा जलपिण्ड न करे, यह जो श्राद्धका निषेध है वह माता पिताके भिन्नविषयमें है। कारण कि,पूर्ववाक्यमें माता पिताका ही ग्रहण है॥ मदनरत्नमें लिखे देवलके वाक्यसे व्रतघ्न वर्णन करते हैं कि, सब प्राणियोंसे भय, व्याधि, प्रमाद,गुरुकी आज्ञा यह सब एकबार होनेसे ही शास्त्रके अनुसार व्रतको नष्ट नहीं करते हैं। स्कन्दमें कहा है कि, ये आठ वस्तु व्रतनाशक नहीं हैं-जल, मूल, फल, दूध, हवि,ब्राह्मणकी इच्छा, गुरुका वचन और ओषधि; परन्तु अतिसंकट पडनेपर इनका प्रयोग है। नारदीयमें लिखा है कि, हे पार्वती! रोगी मनुष्यको व्रतमें यह अनुकल्प लिखे हैं, मूल, फल, दूध, थोडा भोजन यह उत्तम है, किन्तु भोजनके निमित्त किसीने भी एकादशीको नहीं लिखा है। इसका अपवाद भी है कि,मेरे सोने,जागने और करवट लेनेमें जो मनुष्य मूल फलका आहार करता है वह मेरे हृदयमें शल्य अर्पण करता है। यह भी आरोग्यतामें जानना और विरोधरहित यह निर्णय सब व्रतोंमें जानने।एकादशीमें इस प्रकार संकल्प है कि, जलसे पूर्ण उदुम्बर, वा ताम्र-

उपवासं तु गृह्णीयाद्यद्वा वार्येव धारयेत् ॥" इति माधवीये वाराहोक्तेः । मन्त्रस्तु विष्णूक्तः-'एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि । भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥"। इति शैवादीनां तु हेमाद्रौ सौरपुराणे-"सावित्र्याप्यथवा नाम्ना संकल्पं तु समाचरेत् ॥" शिवादिगायत्र्यो यजुर्वेदे प्रसिद्धाः ॥ वाराहे-"इत्युच्चार्य ततो विद्वान् पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत् "॥ ततस्तज्जलं पिबेत्। "अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जप्तेनाभिमन्त्रितम्। उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत्पात्रगतं जलम् ॥" इति कात्यायनोक्तेः। मध्यरात्रे उदये वा दशमीवेधे रात्रौ संकल्प इति माधवः ॥ " दशम्याः सङ्गदोषेण अर्धरात्रात्परेण तु। वर्जयेच्चतुरो यामान्संकल्पार्चनयोस्तदा ॥ विद्धोपवासेऽनश्नंस्तु दिनं त्यक्त्वा समाहितः । रात्रौ संपूजयेद्विष्णुं संकल्पं च तदाचरेत् ॥" इति नारदीयोक्तेः । तत्रैव पूजामभिधाय-'देवस्य पुरतः कुर्याज्जागरं नियतो व्रती ।' द्वादश्यां निवेदनमन्त्रविधिः । द्वादश्यां निवेदनमन्त्र उक्तः कात्यायनेन-"अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव । प्रसीद सुमुखो नाथ ज्ञानदृष्टिप्रदो भव ॥" इति । नारदीये-"ब्राह्मणान्भोजयेच्छक्त्या दद्याद्वै दक्षिणां ततः"॥ स्कान्देऽपि-"कृत्वा चैवोपवासं तु योऽश्नीयाद्द्वादशीदिने । नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्या-

---

पात्रको लेकर उत्तरमुख हो व्रत ग्रहण करे अथवा जलमात्र ही ग्रहण करे, यह माधवीयमें वाराहपुराणका वचन है और विष्णुने इस प्रकार संकल्पका मंत्र कहा है कि, हे भगवन् ! मैं एकादशीमें निराहार रहकर द्वादशीमें भोजन करूंगा। हे पुण्डरीकाक्ष ! आप ही मेरी गति हो और शैवादिक तो हेमाद्रिमें सौरपुराणके मतसे कहा है कि, सावित्री अथवा नामसे ही संकल्प करे। शिवादिकी गायत्री यजुर्वेदके तैत्तिरीयारण्यकमें सब लिखी है। वाराहपुराणमें ऐसा कहा है कि, फिर विद्वान् इस प्रकार उच्चारण कर पुष्पाञ्जलि समर्पण करे, फिर जलपान करे। तीन वार अष्टाक्षर मंत्र पढ़कर और अभिमंत्रित करके उपवासके फलकी इच्छावाला मनुष्य वह जलपान कर ले, ऐसा कात्यायनने कहा है। आधी रातमें वा उदयमें दशमीका वेध हो तो रात्रिमें ही संकल्प करे यह माधव कहते हैं। नारदपुराणमें यह लिखा है-यदि आधी रातसे आगे दशमीके संगका दोष हो तो पूजन और संकल्पमें चार प्रहरोंको छोड़ देना चाहिये और दशमीविद्धाके उपवासमें दिनको त्याग कर रात्रिमें सावधानीसे विष्णुका पूजन और संकल्प करे और उसी स्थलमें पूजनको करनेके पश्चात् कहा है कि, व्रती देवताके सम्मुख सावधानीसे जागरण करे ॥ द्वादशीमें निवेदनका मंत्र कात्यायनने लिखा है-हे केशव ! अज्ञानरूपी अंधकारसे अन्धे मेरे इस व्रतके करनेसे प्रसन्न होकर आप मुझे ज्ञानदृष्टि प्रदान कीजिये। नारदीयमें लिखा है कि, शक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराके दक्षिणा दे। स्कन्दपुराणमें भी लिखा है कि, उपवास करके जो द्वादशीके दिन भोजन करता है और तुलसीमिश्रित नैवेद्य पाता है उसकी अनेक

कोटिविनाशनम्" । द्वादश्यां च वर्ज्यान्याह बृहस्पतिः—"दिवानिद्रा परान्नं च पुनर्भोजनमैथुने । क्षौद्रं कांस्यामिषं तैलं द्वादश्यामष्ट वर्जयेत्" ॥ हेमाद्रौ ब्रह्माण्डपुराणे—"पुनर्भोजनमध्यायो भार आयासमैथुने । उपवासफलं हन्युर्दिवानिद्रा च पञ्चमी" ॥ स्कान्दे—"परान्नं कांस्यताम्बूले लोभं वितथभाषणम् ॥" वर्जयेदिति शेषः । विष्णुधर्मे—"असंभाष्यान्हि सम्भाष्य तुलस्यतसिकादलम् । आमलक्याः फलं वापि पारणे प्राश्य शुध्यति ॥" बृहन्नारदीये—"रजस्वलां च चाण्डालं महापातकिनं तथा । सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् ॥ व्रतादिमध्ये शृणुयाद्ययेषां ध्वनिमुत्तमः । अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद्वै वेदमातरम् ॥" एतद्व्रतं सूतकेऽपि कार्यम् । "सूतके मृतके चैव न त्याज्यं द्वादशीव्रतम्" इति विष्णूक्तेः। तत्र त्यक्तं दानादि सूतकान्ते कार्यम् । "सूतकान्ते नरः स्नात्वा पूजयित्वा जनार्दनम् । दानं दत्त्वा विधानेन व्रतस्य फलमश्नुते" ॥ इति मात्स्योक्तेः । रजोदर्शनेऽपि कार्यम्—"एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि" । इति पुलस्त्योक्तेः । यदा द्वादश्यां श्रवणर्क्षं तदा शुद्धामप्येकादशीं त्यक्त्वा तत्रैवोपवासः कार्यः । "शुक्ला वा यदि वा कृष्णा द्वादशी श्रवणान्विता । तयोरेवोप-

---

कोटिहत्या दूर हो जाती हैं । बृहस्पतिने द्वादशीमें ये वर्जित किये हैं,–दिनमें शयन, परान्नभोजन, पुनर्भोजन, मैथुन, शहत, कांसीके पात्रमें भोजन, मांस, तेल ये आठ वस्तु द्वादशीको वर्जित करनी चाहिये । हेमाद्रिमें ब्रह्माण्डपुराणका वचन है कि, दूसरी बार भोजन, पढ़ना, बोझ उठाना, परिश्रम करना, मैथुन, दिनमें सोना ये पांच वस्तु उपवासके फलको नष्ट करती हैं । स्कन्दमें कहा है–परान्न, कांसीके पात्रमें भोजन, पान, लोभ, असत्यभाषण इनको व्रती त्यागि दे । विष्णुधर्ममें लिखा है कि, असंभाषोंके साथ वार्ता कर तुलसी, अतसीपत्र, आंवले इनको खाकर शुद्ध होता है।बृहन्नारदीयमें लिखा है–रजस्वला, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित, जूँठन, धोबी, यदि व्रती व्रतादिमें इनकी ध्वनिको श्रवण कर ले तो १०८ वेदमाता (गायत्री)का जप करे । यह व्रत सूतकमें भी करना।द्वादशीका व्रत सूतक और मृतक (पातक) में भी न छोड़ना ऐसा विष्णु कहते हैं और सूतकमें छोडे हुए दानादि सूतकके पश्चात् करने, मत्स्यपुराणमें लिखा है । मनुष्य सूतकके अन्तमें स्नान कर और जनार्दनका पूजन कर विधिपूर्वक दान देकर व्रतका फल प्राप्त करता हैं । पुलस्त्य कहते है एकादशीका व्रत रजोदर्शनमें भी करना चाहिये । रजोदर्शन होनेपर भी स्त्री एकादशीको भोजन न करे । और जो द्वादशीमें श्रवण नक्षत्र हो तो शुद्ध एकादशीको छोड़कर उसमें ही व्रत करे । शुक्ला व

---

१ 'श्वशुरान्नं गुरोरन्नं मातुलान्नं तथैव च । पितृव्यभ्रातृपुत्राणां परान्नं नैव दोषकृत्' इति वचनं तु निर्मूलम् ॥ अर्थात्–श्वशुर, गुरु, मातुल, चाचा, भाईके पुत्र इनके परान्न दोषकारक नहीं है, यह वचन निर्मूल है ।

वासश्च त्रयोदश्यां च पारणम् ॥ " इति नारदीयोक्तेः । एते च नियमाः काम्यव्रते नियताः । नित्यव्रते सति सम्भवे कार्याः । "शक्तिमांस्तु पुनः कुर्यान्नियमं सविशेषणम् " इति कात्यायनोक्तेः । व्रतं कर्तुमशक्तौ निर्णयः माधवीये ब्रह्मवैवर्ते-" इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशीव्रतम् । विशेषनियमाशक्तोऽहोरात्रं भुजिवर्जितः ॥ " इति ॥ अथाष्टौ महाद्वादश्यः । तत्र शुद्धाधिकैकादशीयुता द्वादशी उन्मीलिनीसंज्ञा । द्वादश्येव शुद्धाधिका वर्धते चेत्सा वञ्जुली । वासरत्रयस्पर्शिनी त्रिस्पृशा । अग्रे पर्वणः सम्पूर्णाधिकत्वे पक्षवर्धिनी । पुष्यर्क्षयुता जया । श्रवणयुता विजया । पुनर्वसुयुता जयन्ती । रोहिणीयुता पापनाशिनी । एताः पापक्षयमुक्तिकाम उपवसेत् । अत्र मूलं हेमाद्रौ ज्ञेयम् ! एकादशीद्वादश्योरेकत्वे तन्त्रेणोपवासः । पार्थक्ये तु शक्तस्योपवासद्वयम् । "एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत् " इति विष्णुरहस्यात् । अशक्तौ तु द्वादश्यामेव-"एवमेकादशीं त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत् । पूर्ववासरजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥ " इति तत्रैवोक्तेः । यदा त्वल्पा द्वादशी तदोक्तं मात्स्ये-" यदा भवति अल्पापि द्वादशी पारणादिने । उषःकाले द्वयं कुर्यात्प्रातर्मध्याह्निकं तदा " ॥ नारदीयेऽपि-" अल्पायामथ विप्रेन्द्र द्वादश्यामरुणोदये ॥ स्नानार्चनक्रिया

कृष्ण एकादशी जो श्रवणनक्षत्रसे युक्त हो तो उसी द्वादशीमें उपवास करके तेरसको पारणा करे ऐसा नारदीयमें कहा है । यह नियम काम्यव्रतोंके जानने और नित्यव्रतमें हो सके तो भी करबे । कारण कि कात्यायन कहते हैं कि, शक्तिमान् मनुष्य पूर्णरूपसे नियम करे और शक्ति न हो तो माधवीयमें ब्रह्मवैवर्तका कथन है यह जानकर एकादशीके दिन व्रतको अवश्य करे । यदि विशेष नियम न सके तो अहोरात्रका व्रत छोडना चाहिये । अब आठ महाद्वादशी लिखते हैं-जो द्वादशी शुद्ध अधिक एकादशीसे युक्त हो वह उन्मीलिनी और जो शुद्धद्वादशी ही अधिक हो जाय तो वंजुली, जो तीन वारोंको स्पर्श करे वह त्रिस्पृशा, आगे सम्पूर्ण पर्व १२ ही अधिक हो तो पक्षवर्द्धिनी, पुष्यनक्षत्रयुक्त जया, श्रवणयुक्त विजया, पुनर्वसुयुक्त जयन्ती, रोहिणीयुक्त पापनाशिनी । जिसको पापक्षयपूर्वक मुक्तिकी अभिलाषा हो इनमें उसको व्रत करना चाहिये। इसका मूल हेमाद्रिमें लिखा है, यदि द्वादशी एकादशी एक होजायँ तो उस ही दिन उपवास कर ले और पृथक् हो तो शक्तिअनुसार दोनों व्रत करे. कारण कि, विष्णुरहस्यमें कहा है कि, एकादशीमें उपवास करके द्वादशीमें उपवास करे और शक्ति न हो तो द्वादशीमें ही व्रत करे। कारण कि, वहां ही यह लिखा है कि, जो एकादशीको भोजन कर द्वादशीमें उपवास करे वह अवश्य ही पूर्व दिनके पुण्यको प्राप्त करता है और द्वादशी थोडी हो तब मत्स्यपुराणमें यह कहा है कि, जो पारणाके दिन थोडी भी द्वादशी हो तो प्रभात और मध्याह्नके दोनों कृत्य प्रभातमें ही कर ले। नारद कहते हैं-हे ब्राह्मणोत्तम! यदि अरुणोदयमें थोडी

कार्या दानहोमादिसंयुताः ॥" संकटे तु माधवीये देवलः-"संकटे विषमे प्राप्ते द्वादश्यां पारयेत्कथम्। अद्भिस्तु पारणां कुर्यात्पुनर्भुक्तं न दोषकृत्॥" इति। संकटे त्रयोदशीश्राद्धप्रदोषादौ। अत्र केचिदाहुः-अपकर्षवाक्यान्यनाहिताग्निविषयाणि अग्निहोत्रादीनां श्रौतत्वेनापकर्षायोगादिति। द्वादश्यां च प्रथमपादमतिक्रम्य पारणं कार्यम्। "द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञितः। तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः॥" इति निर्णयामृते मदनरत्ने च विष्णुधर्मोक्तेः। अत्र केचित्संगिरन्ते। यदा भूयसी द्वादशी, तदापि प्रातर्मुहूर्त्तत्रये पारणं कार्यम्। 'सर्वेषामुपवासानां प्रातरेव हि पारणम्" इति वचनात्। अस्मद्गुरवस्तु-बहूनां कर्मकालानां विना कारणं बाधापत्तेः प्रागुक्तवचनैश्च अल्पद्वादश्यामेवापकर्षविधानादपराह्न एव कार्यम्। प्रातःशब्दस्तु-" सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम्" इतिवदपराह्णवाचित्वेऽप्युपपन्नः। न च वाक्यवैयर्थ्यं, पुनर्भोजनसायंपारणनिवृत्त्यर्थत्वात्तस्येत्याहुः॥ प्रमादेन एकादश्युपवासातिक्रमे अपरार्के वाराहे-"एकादशी विप्लुता चेद्द्वादशी परतः स्थिता। उपोष्या द्वादशी तत्र यदीच्छेत्परमं पदम्॥" इति। कैश्चित्तु-" विष्णुना चेत्" इति पठितम्। अत्राविरोधिनो

द्वादशी हो तो उसी समय स्नान, दान, हवन, पूजन आदि क्रिया कर ले और संकट होनेपर माधवीयमें देवलका कथन है। यदि कठिन संकट हो तो द्वादशीमें कैसे पारणा करे? वहां लिखा है जलसे पारंणा करने उपरान्त फिर भोजनका दोष नहीं है। कहां संकट शब्दसे त्रयोदशीमें श्राद्ध प्रदोषादिका ग्रहण करना। इसमें किसीका तो यह कथन है कि, यह अल्पविधायक वाक्य अग्निहोत्रियोंसे भिन्नोंके निमित्त है। कारण कि, वेदोक्त होनेसे अग्निहोत्रमें अल्पता नहीं है और पारणा द्वादशीका प्रथम चरण त्यागकर करे। द्वादशीका पहला चरण हरिवासरसंज्ञक है। विष्णुभक्तको उसके उपरान्त पारणा करनी चाहिये, यह निर्णयामृतमें लिखा है और मदनरत्नमें विष्णुधर्मका भी यही कथन है। इसपर कोई कहते हैं जो बहुत द्वादशी हो तब भी प्रभातसमय तीन मुहूर्ततक पारणा कर ले। कारण कि, ऐसे लेख है कि, सब उपवासोंकी पारणा प्रभातमें होती है। और हमारे गुरुका तो यह कथन है कि, बहुतसे कर्मोंका एक ही समय विना कारण बाध हो जायगा, इससे पूर्वमें कहे वचन थोडी द्वादशीमें ही जानकर अल्पके विधानसे अपराह्णमें पारणा करनी चाहिये और प्रभातका कथन करनेवाला प्रातः शब्द तो इसके तुल्य अपराह्णमें संगत होगा कि, सन्ध्यासमय और प्रभातसमय द्विजातियोंको भोजन कराना वेदमें लिखा है। यदि कोई सन्देह करे कि, वाक्योंकी व्यर्थता हो जायगी सो भी नहीं। कारण कि, वे वाक्य तो पुनर्भोजन सायंकालकी पारणावृत्तिके विषयवाले हैं। यदि प्रभातसे एकादशीका उपवास न हुआ हो तो अपरार्कमें वाराहपुराणका कथन है कि, यदि एकादशी छुट गई हो तो द्वादशीमें उपवास करना और कोई इस वाक्यमें "विष्णुना चेत्" पढते हैं। इसमें सब व्रतोंमें अविरोधके नियम जानने। दूसरे वचन नवरात्रोंमें

नियमा सर्वव्रतेषु बोद्धव्याः । अन्ये च नवरात्रे वक्ष्यन्ते इति दिक् ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ एकादशीनिर्णयः । अथ द्वादशी निर्णयः ॥ द्वादशी तु पूर्वैव युग्मवाक्यात् । 'द्वादशी तु प्रकर्त्तव्या एकादश्या युता-प्रभो' इति स्कान्दाच्च । त्रयोदशीनिर्णयः ॥ त्रयोदशी तु सर्वमते शुक्ला पूर्वा

लिखेंगे, यह दिङ्मात्र कहा है ॥ इति श्रीरामकृष्णभट्टात्मजकमलाकरभट्टकृते निर्णयसिन्धौ पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायामेकादशीनिर्णयः॥ युग्मवाक्यसे द्वादशी पूर्वा करनी चाहिये और स्कन्दपुराणमें भी लिखा है–हे प्रभो ! एकादशी युक्त द्वादशी करनी चाहिये और त्रयोदशी तो शुक्ल और कृष्णपक्षकी सबके मतमें पिछली होती है । कारण कि, दीपिका

---

१ अत्र प्रदोषव्रतम्–ब्रह्मोत्तरखण्डे–'पक्षद्वये त्रयोदश्यां निराहारो भवेद्दिवा । घटीत्रयाद-स्तमयात्पूर्वं स्नानं समाचरेत् । शुक्लाम्बरधरो भूत्वा वाग्यतो नियमान्वितः । कृतसंध्याजपविधिः शिवपूजां समारभेत् ॥' इति व्रतमभिधाय 'एवमाराधयेद्देवं प्रदोषे गिरिजापतिम् । ब्राह्मणान्भोज-येत्पश्चाद्दक्षिणाभिश्च तोषयेत्' ॥ इति दिनेनाहारकर्तृकं शिवपूजाप्रधानकं व्रतं स्मर्यते । अत्र प्रदोष-व्यापिनी ग्राह्या तत्रैव पूजाविधानात् । प्रदोषस्त्रिमुहूर्तमित्यभिप्रायः । दिनद्वये प्रदोषव्याप्ताव-व्याप्तौ वा पूर्वा 'त्रयोदशी तु कर्तव्या द्वादशी सहिता मुने' इति सुमन्तूक्तिरिति मयूखकृतः । दिनद्वये प्रदोषव्याप्तौ, तदव्याप्तौ, साम्येन तदेकदेशास्पर्शे च उत्तरा, संकल्पकाले सत्त्वात् । वैषम्ये तदेकस्पर्शे तदाधिक्यवती ग्राह्येति विवेचनानुसारिणः । इदं च मन्दवारे कृष्णपक्षेऽतिप्र-शस्तम् । 'मन्दवारे प्रदोषोऽयं दुर्लभः सर्वदेहिनाम् । तत्रापि दुर्लभस्तस्मिन्कृष्णपक्षे समागतः ॥' इति तत्रैवोक्तेः । आरम्भश्च शनिप्रदोषे कार्यः–' यदा त्रयोदशी शुक्ला मन्दवारेण संयुता । आरभेत व्रतं तत्र संतानफलसिद्धये ॥'' इति तत्रैवोक्तेः । इति । अर्थात् प्रदोषव्रत ब्रह्मोत्तरखण्डमें लिखा है कि दोनों पक्षकी त्रयोदशीको दिनमें निराहार हो फिर अस्तसे तीन घडी पहले स्नान करे । श्वेत वस्त्र पहर वाणीको रोक नियममें तत्पर हो सन्ध्या जपविधि कर शिवका पूजन करे । इस प्रकार व्रत कहकर 'इस प्रकार गिरजापतिको प्रदोषमें आराधना करके फिर ब्राह्मणोंको जिमाय दक्षिणा दे' इस वचनसे दिनमें अनाहारपूर्वक प्रधान शिवपूजनका व्रत है । इसमें प्रदोषव्यापिनी त्रयोदशी ग्रहण करनी । प्रदोष तीन मुहूर्तका लेना । दोनों दिनमें प्रदोषकी व्याप्ति हो तो पहली करनी । अव्याप्ति मयूखमें सुमन्तुका कथन है हे मुने ! त्रयोदशी द्वादशीयुक्त करनी और जो प्रदोष दोनों दिन हो वा दोनों दिन न हो या साम्यतासे एकदेशमें स्पर्श हो तो संकल्पकालमें होनेसे उत्तरा करनी । विषमता तथा एकस्पर्शमें वा अधिकवती होनेसे अधिक लेनी । यह प्रदोष शनि भौमवारका कृष्णपक्षमें हो तो उत्तम है, मन्दवारका प्रदोष सब देहधारियोंको दुर्लभ है और कृष्णपक्षका तो अधिक ही दुर्लभ है । यह वहीं लिखा है–शनिप्रदोषसे इसका आरम्भ करे । वहीं लिखा है जो शुक्ला त्रयोदशी शनिवारी हो तो सन्तानफलकी सिद्धिके निमित्त उस समय व्रत आरम्भ करे ।

कृष्णोत्तरा। 'त्रयोदशतिथिः पूर्वः सितोत्थोऽथासितः पश्चात्' इति दीपिकोक्तेः। शुक्ला त्रयोदशी पूर्वा परा कृष्णा त्रयोदशी' इति माधवाच्च। चतुर्दशीनिर्णयः॥ चतुर्दशी सर्वमते कृष्णा पूर्वा शुक्लोत्तरा। उपवासे तु द्वय्यपि परेति मदनरत्ने। पूर्णिमानिर्णयः। पौर्णमास्यमावास्ये तु सावित्रीव्रतं विना परे ग्राह्ये। "भूतविद्धे न कर्त्तव्ये दर्शपूर्णे कदाचन। वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्॥" इति ब्रह्मवैवर्तात्॥ अमवास्यानिर्णयः। अमायां योगविशेषमहापरार्के शातातपः– "अमावास्यां भवेद्वारो यदा भूमिसुतस्य वै। जाह्नवीस्नानमात्रेण गोसहस्रफलं लभेत्॥ अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी। चतुर्थी भौमवारेण विषुवत्सदृशं फलम्॥" तत्रैव व्यासः–"सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत्। गोसहस्रफलं दद्यात्स्नानं वै मौनिना कृतम्॥" हेमाद्रौ बृहन्मनुः–"श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रानागदैवतमस्तके। यद्यमा रविवारेण व्यतीपातः स उच्यते॥" नागदैवतमाश्लेषा। मस्तको मृगशिरः। प्रथमपाद इत्यन्ये स च सर्वेषाम्। अथेष्टिकालः॥ गोभिलः–"पक्षान्ता उपवस्तव्याः पक्षाद्योऽभियष्टव्याः' इति। उपवासोऽन्वाधानम्। तत्र मध्याह्ने तत्पूर्वं वा पर्वप्रतिपत्संधौ तद्दिने यागः। "पूर्वाह्णे वाथ

और माधवके ये वाक्य हैं कि, सबके मतमें उपवासमें शुक्लपक्षकी पहली और कृष्णपक्षकी पिछली होती है। सबके मतमें कृष्णपक्षकी पहिली शुक्लपक्षकी पिछली। उपवास व्रतमें दोनों पक्षकी पिछली चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये, ऐसा मदनरत्नमें कहा है। पूर्णिमा और अमावास्या ये दोनों तिथि सावित्रीव्रतको छोड़कर परली ही लेनी। कारण कि, ब्रह्मवैवर्त्तमें लिखा है हे मुनिराज! सावित्रिके श्रेष्ठव्रतको त्यागकर अमावास्या और पूर्णिमा यह पूर्वविद्धा न करनी चाहिये। शातातपने अमावास्यामें विशेष योग लिखा है कि, यदि मंगलवारी अमावस हो तो उस दिन गंगाके स्नानमात्रसे सहस्र गोदानका फल होता है। जब अमावस सोमवारी और सप्तमी रविवारी हो तो और चतुर्थी मंगलवारी हो तो इनमें मेष और तुलासंक्रांतिके समान फल मिलता है। वही व्यासजी कहते हैं–यदि चन्द्रमायुक्त अमावस और जिसमें चन्द्रमा न दीखे ऐसी अमावस सोमवती हो तो मौन होकर स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। हेमाद्रिमें बृहन्मनुका कथन है कि, श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, आश्लेषा, मृगशिर इन नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र हो और रविवार हो वा रविवारी अमा हो तो व्यतीपात होता है। कोई कहते हैं–इनका प्रथम पाद व्यतीपात होता है। अब इष्टि (यज्ञ) का समय लिखते हैं। गोभिलका वचन है कि, पक्षकी अन्तकी तिथियोंमें उपवास और आदिकी तिथियोंमें यज्ञ करना चाहिये। उपवाससे अग्निहोत्रका ग्रहण करना, इससे मध्याह्नमें वा उससे पूर्व दोनों पर्व और प्रतिपदाकी संधि हो तो उसमें यज्ञ करना। लौगाक्षि कहते हैं कि, पूर्वाह्णमें

मध्याह्ने यदि पर्व समाप्यते। उपोष्य तत्र पूर्वेद्युस्तदहर्योग इष्यते ॥" इति लौगाक्षिवचनात् । तत्र द्वेधा विभागः-"आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परः । मध्याह्नस्तु तयोः संधिर्यदावर्तनमुच्यते ॥" इति मदनरत्ने वचनात् ॥ मध्याह्नादूर्ध्वं संधौ माधवमते परेऽह्नि यागः "अपराह्णेऽथवा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते। उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते ॥" इति लौगाक्ष्युक्तेः ॥ हेमाद्रिस्त्वपराह्णसंधावपि परदिने प्रतिपच्चतुर्थांशे चन्द्रोदये च सति द्वितीयादिष्वत्यन्तक्षये सति पूर्वेद्युर्यागः। "पर्वणोंऽशे द्वितीये तु यष्टव्यं तु द्विजातिभिः । द्वितीयासहितं यस्माद्दूषयंत्याश्वलायनाः ॥" इति । द्वितीये त्विति कैमुतिकन्यायेन तुर्यांशपरम् । तुरीये त्विति शूलपाणौ पाठः स्पष्टार्थ एव । तथा-"भूता पञ्चदशी पूर्णा द्वितीया क्षयगामिनी । चरुरिष्टिरमायां स्याद्भूते कव्यादिकी क्रिया ॥" इति बौधायनवचनाच्चेत्यूचिवान् । मदनरत्नेऽपि-"चतुर्दशी चतुर्यामा अमावास्या न दृश्यते । श्वोभूते प्रतिपच्चेत्स्यात्पूर्वा तत्रैव कारयेत् ॥" इति । यत्तु माधवः-"यस्तु वाजसनेयी स्यात्तस्य संधिदिनात्पुरा । न क्वाप्यन्वाहितिः किंतु सदा संधिदिने हि सा" इत्याह । यच्च कालादर्शेऽप्युक्तम्-"आवर्तनादधः संधिर्यद्यन्वाधाय तद्दिने ।

वा मध्याह्नमें पर्व समाप्त हो जाय तो प्रथम दिन उपवास करके उसी दिन यज्ञ करे । दो प्रकारसे इसका विभाग है आरंभसे पूर्वाह्ण और उसका उपरान्त पराह्ण होता है, इनकी संधिका नाम मध्याह्न है उसीको आवर्तन कहा है, यह मदनरत्नका कथन है । मध्याह्नसे ऊर्ध्वसन्धिके विषयमें माधवके मतसे परले दिन यज्ञ करना चाहिये । अपराह्ण वा रात्रिमें यदि पर्वकी समाप्ति हो जाय तो उस दिन उपवास करक अगले दिन यज्ञ करना चाहिये, यह लौगाक्षिका कहना है । हेमाद्रिका तो यह कहना है कि, यदि सन्धि अपराह्णमें हो और प्रतिपदाके चौथे अंशमें चन्द्रोदय हो और द्वितीया आदिका क्षय हुआ हो तो प्रथम दिन ही यज्ञ करे । ऐसे वाक्य हैं कि, द्विजाति पर्वक दूसरे अंशमें याग करें; कारण कि, द्वितीयाके सहित यज्ञको आश्वलायन दूषित करते हैं । (द्वितीये तु) यह पद इस वचनमें कैमुतिकन्यायसे चौथे अंशका जतानेवाला है, जिससे कि, (तुरीये तु) ऐसा चौथे अंशका बोधक पद शूलपाणिने स्पष्ट लिखा है । बौधायन कहते हैं-पूनो और चौदश पूरी हो और द्वितीयाका क्षय होनेवाला हो तो चरुयज्ञ और अमावास्यामें कव्यकर्म पितरोंके निमित्त करना चाहिये । मदनरत्नमें भी लिखा है यदि चौदश चार प्रहर हो और अमावस घठ जाय और प्रतिपदा अगले दिन हो तो प्रथम दिन ही करे और माधव जो कहते हैं कि, वाजसनेयिशाखावाले पुरुषोंका अग्न्याधान सन्धिदिनसे प्रथम नहीं होता किन्तु सदा सान्धिके दिन ही होता है और जो कालादर्शमें भी यह लिखा है कि, वाजसनेयिब्राह्मणोंका यह कथन है कि, जो मध्याह्नसे

परेद्युरिष्टिरित्याहुर्विप्रा वाजसनेयिनः ॥" इति । यच्च मदनरत्ने-"मध्यंदिनात्स्यादहनीह यस्मिन् प्राक्पर्वणः संधिरियं तृतीया । सा खर्विका वाजसनेयिमत्या तस्यामुपोष्याथ परेद्युरिष्टिः ॥" इति । एतत् पौर्णमासीपरमिति तत्रैव । आवर्तनोर्ध्वमर्वागस्ताद्रात्रौ वा समाप्तौ द्वे, मध्याह्नादर्वाक् समाप्तौ तृतीयेत्यर्थः ॥ तत्कर्कभाष्यदेवजानीश्यनन्तभाष्यादिसकलतच्छाखीयग्रन्थविरोधात् वृद्धानादराच्चोपेक्ष्यम् । पौर्णमास्यां विशेषमाह कात्यायनः-"संधिश्चेत्संगवादूर्ध्वं प्राक्पर्यावर्तनाद्रवेः । सा पौर्णमासी विज्ञेया सद्यस्कालविधौ नरैः ॥" अमायां विशेषमाह बौधायनः-"द्वितीया त्रिमुहूर्ता चेत्प्रतिपद्यापराह्णिकी । अन्वाधानं चतुर्दश्यां परतः सोमदर्शनात् ॥" कात्यायनश्च-"यजनीयेऽह्नि सोमश्चेद्वारुण्यां दिशि दृश्यते । तत्र व्याहृतिभिर्हुत्वा दंडं दद्याद्द्विजातये ॥" इति । एतच्च बौधायनवाजसनेयिविषयम् । तैत्तिरीयश्रुतौ तु चन्द्रदर्शनेऽपि याग उक्तः । अमायां चन्द्रदर्शनेऽपि यागनिर्णयः । "एषा वै सुमनानामेष्टिर्यामभ्यजानन् । पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेत्यस्मिन्नेवास्मै लोकेर्धुकं भवति" इति । श्रुत्यन्तरेऽपि-'यदहः पश्चाच्चन्द्रमा अभ्युदेति तदहर्यजन्निमाँल्लोकानभ्युदेति' इति । इदं बह्वृचापस्तम्बविषयम् ॥

प्रथम सन्धि हो तो उस दिन अग्न्याधान करके अगले दिन योग करे और मदनरत्नमें जो लिखा है कि, जिस दिन मध्याह्नसे पहले पर्वकी सन्धि प्राप्त हो । वाजसनेयियोंके मतसे वह तीज खर्विका कहाती है । उस दिन उपवास करके अगले दिन इष्टि करे, यह तीनोंका कहना पूर्णिमाके विषयमें जानना । और उसी स्थलमें यह भी कहा है कि, मध्याह्नसे उपरान्त वा अस्तसे प्रथम वा समाप्तिके उपरान्त सन्धि हो और तृतीया मध्याह्नसे प्रथम समाप्त हो जाय यह पूर्वोक्त वचनका अर्थ है । यह सब वाक्य कर्कभाष्यदेवजानी, श्रीअनन्तभाष्य और उस उस शाखाके सम्पूर्ण ग्रन्थ इनके विरोध और वृद्धोंके अनादरसे उपेक्षा करने योग्य हैं । कात्यायनने पूर्णिमामें यह विशेष लिखा है कि, यदि सूर्योदयके उपरान्त और मध्याह्नसे प्रथम सन्धि हो तो शीघ्रकालकी विधिमें मनुष्योंको वही पूर्णिमा माननी चाहिये । बौधायनने अमावास्यामें विशेष लिखा है यदि प्रतिपदा अपराह्णमें हो और द्वितीया तीन मुहूर्त हो तो चौथिमें अन्वाधान करे । कारण कि, आगे चन्द्रमाका दर्शन होगा और कात्यायनने भी लिखा है कि, यदि यागके दिन चन्द्रमाका पश्चिममें दर्शन हो तो व्याहृतियोंसे हवन करके द्विजातियोंको दण्ड दे, यह बौधायनवाजसनेयिशाखावालोंके विषयमें कहते हैं और तैत्तिरीयश्रुतिमें तो चन्द्रदर्शनमें भी याग कहा है कि, यह सुमना नाम है । जिस इष्टिको करते हुए पीछे चन्द्रोदय हो इस यज्ञसे यजमानको निश्चल पुण्य होता है और श्रुतियोंमें भी कहा है कि, जिस दिन यज्ञके उपरान्त चन्द्रोदय हो उस दिन यज्ञका करनेवाला इन लोकोंको प्राप्त होता है । यह आप-

मदनरत्नेऽप्येवम्। आपस्तम्बभाष्यार्थसंग्रहेऽप्येवम् ॥ अतः पक्षद्वयस्य स्वस्वसूत्राद्व्यवस्थेति तत्त्वम् ॥ 'दूषयन्त्याश्वलायनाः' इति तु पूर्वाह्णसंधिविषयमिति माधवः। शेषपर्वणीष्टौ विशेषमाह माधवीये गार्ग्यः—"प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते। पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या यागवित्तमैः"॥ गृह्याग्नेर्नायं नियम इति मदनपारिजातः। एवं पर्वान्त्यांशः प्रतिपदश्च त्रयोऽंशा यागकाल उक्तः। क्वचित् प्रतिपत्तुर्यांशेऽपि यागः—"संधिर्यद्यपराह्णे स्याद्यागं प्रातः परेऽहनि। कुर्वाणः प्रतिपद्भागे चतुर्थेऽपि न दुष्यति" इति वृद्धशातातपोक्तेः। एतत्पूर्णिमापरमिति मदनरत्ने। पर्वणि प्रतिपदः क्षयस्य वृद्धेश्चार्द्धं प्रक्षिप्य संधिर्ज्ञेयः। तदाह माधवः—"वृद्धिः प्रतिपदो यास्ति तदर्धं पर्वणि क्षिपेत्। क्षयस्यार्धं तथा क्षिप्त्वा संधिर्निर्णीयतां सदा॥" इति। कात्यायनोऽपि—"परेऽह्नि घटिका न्यूनास्तथैवाभ्यधिकाश्च याः। क्षिप्त्वा तदर्थं पूर्वस्मिन् ह्रासवृद्धी प्रकल्पयेत्॥" इति। एवं स्मार्तस्थालीपाकेऽपि ज्ञेयम्। तत्रेष्टिस्थालीपाकान्वाधानगृहप्रवेशनीयहोमानन्तरभाविन्यां पौर्णमास्यां प्रारम्भणीयौ, न तु दर्शे। मलमासादावप्यारम्भः। यद्यारम्भे मलमासपौषमासगुरुशुक्रास्तादि भवति तदाप्यारम्भः कार्यः॥ यानि तु—"उपरागोऽधिमासश्च यदि

स्तम्ब बह्वृचोंके विषयमें कहते हैं। मदनरत्नमें भी ऐसा ही कहा है। आपस्तम्बभाष्यार्थसंग्रहमें भी यही है इस कारण दोनों पक्षोंकी व्यवस्थाके सिद्धान्तको जो आश्वलायनने दूषित किया है वह पूर्वदिन सन्धि होनेसे जानना यह माधवका कहना है। माधवीय ग्रन्थमें गर्गने शेषपर्वोंके यज्ञमें यह विशेष लिखा है कि, प्रतिपदा आनेसे पहले २ यदि यज्ञ समाप्त हो जाय तो यज्ञके जाननेवाले फिरसे उस सम्पूर्ण इष्टिको करें। मदनरत्नमें पारिजातका यह कथन है कि, गृह्य अग्निमें यह नियम नहीं है। इस प्रकार पर्वका अन्त्य पाद और प्रतिपदाका पहला, तेरहवां भाग भी यज्ञका समय कहा है और स्थलमें तो पडवाके प्रथम चतुर्थ भागमें यज्ञ करना कहा है। कारण कि, वृद्धशातातप यह कहते हैं कि, यदि अपराह्णमें सन्धि हो तो दूसरे दिन प्रतिपदाके चौथे भागमें यज्ञ करनेका दोष नहीं है। मदनरत्नमें लिखा है कि, यह वाक्य पूर्णिमाविषयक है। प्रतिपदाकी पर्वमें वृद्धि और क्षयके अर्धभागको मिलाकर सन्धि जाननी और यही माधवने लिखा है कि, प्रतिपदाकी वृद्धिके आधेको पर्वमें मिला दे और इसी भाँति क्षयके आधेको मिलाकर सदा सन्धिका निर्णय करे। कात्यायन भी कहते हैं जो घटी परदिनमें न्यून हो वा अधिक हो उसका अर्धभाग करके पर्वमें न्यून वा वृद्धि कर ले। यही विधान स्मार्तोंके स्थालीपाकमें जानना। उसमें इष्टि और स्थालीपाक ये दोनों उस पूर्णिमामें प्रारम्भ करने जो अग्न्याधान और गृहप्रवेशके हवनके उपरान्त आयी हो। अमावास्यामें न करने। जो मलमास, पौषमास तथा गुरुशुक्रादिका अस्त हो तो ऐसे समयमें भी आरंभ कर दे और जो चन्द्रसूर्यके ग्रहण मलमास यह प्रथम पर्वमें हो वा अधिक

प्रथमपर्वणि। तथा मलिम्लुचे पौषे नान्वारम्भणमिष्यते। गुरुभार्गवयोर्मौढ्ये चन्द्रसूर्यग्रहे तथा॥" इति संग्रहवचनानि। तानि आलस्यादिनातिक्रान्तशुद्ध-कालप्रारम्भविषयाणि। "नामकर्म च दर्शेष्टिं यथाकालं समाचरेत्। अतिपाते सति तयोः प्रशस्ते मासि पुण्यभे॥" इत्यपरार्के गर्गवचनादिति प्रयोगपारिजाते उक्तं चैतत् प्रयोगरत्ने भट्टैः। कालादर्शे तु-'नामकर्म च जातेष्टिम्' इति पाठः। याज्ञिकास्तु-"आधानानन्तरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा। तस्यामारम्भणीयादीन्न कुर्वीत कदाचन॥" इति त्रिकाण्डमण्डनवचनाच्छुद्धकाल एव विभ्रष्टेष्टिं कृत्वारंभं कुर्यादित्याहुः। कालादर्शे स्मृतिसंग्रहेऽपि-" आरम्भे दर्शपूर्णेष्ट्योरग्निहोत्रस्य चादिमम्। प्रतिष्ठाः पञ्चकर्माद्या मलमासे विवर्जयेत्"॥ इति। विकृतीष्टिनिर्णयः। अथ विकृतीष्टिः। तत्रापस्तम्बः-' यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेत सोऽमावास्यायां पौर्णमास्यां वा' इति। अत्र प्रकृतितः काले सिद्धेऽपि सद्यस्कालता विधेया। तृतीयायां साङ्गत्वे-नोक्तेः॥ अत्र पौर्णमास्यमावास्याशब्दाभ्यां तदन्त्यक्षणो गृह्यते। तेन तद्वत्यहोरात्र इत्यर्थमाह रामाण्डरः॥ माधवोऽपि-'इष्ट्यादिविकृतिः सर्वा पर्वण्येवेति निर्णयः' इति। अत्र विशेषमाह त्रिकाण्डमण्डनः कात्यायनश्च-"आवर्तनात्

मास पौष गुरु और शुक्रका अस्त हो तो प्रारंभ न करना, यह संग्रहके वचन हैं। यह उस विषयमें जानने चाहिये जब आलस्यमें शुद्ध काल बीत गया हो तो अशुद्धमें प्रारम्भ न करके शुद्धमें करे। अपरार्कमें गर्ग यह कहते हैं-नामकर्म अमावस्याकी इष्टि यह शुद्धकालमें करे और यदि ऐसे कालमें न हो सके तो किसी उत्तम मास और पवित्र नक्षत्रमें प्रारम्भ करे। प्रयोगपारिजात और प्रयोगरत्नमें भट्टजी ऐसा ही कहते हैं। कालादर्शमें तो नामकर्म और जातकर्म यह दो पाठ हैं और याज्ञिक तो यह लिखते हैं कि, जो पूर्णिमा अग्न्याधानके उपरान्त मलमासमें हो उसमें किसी प्रकारके यज्ञकार्य आरंभ न करे। त्रिकाण्डमण्डनके वचनसे शुद्धकालमें ही नष्ट यज्ञको प्रारम्भ करना चाहिये। कालादर्शमें स्मृतिसंग्रहका वचन है कि, अमावस पूर्णिमाका यज्ञ प्रथम अग्निहोत्र और प्रतिष्ठा पंचकर्मादिको मलमासमें त्याग देना चाहिये। अब विकृतियज्ञका वर्णन करते हैं-इसमें आपतस्तम्ब कहते हैं कि, जो मनुष्य प्रधान यज्ञकी सिद्धिके निमित्त इष्टि, अग्नीषोमीयपशु वा सोमयज्ञ करना चाहे उसे अमावस्या और पूर्णिमामें करना चाहिये। इसमें प्रकृतिका समय सिद्ध भी था, परन्तु शीघ्र-कालमें करनी यह सांगत्वने तृतीयामें कहा है। यहां पूर्णिमा और अमावसशब्दोंसे इनके अन्त्यका क्षण ग्रहण करना। इससे अन्त्यक्षणवाले अहोरात्रमें करना यह अर्थ रामाण्डरने लिखा है और माधव भी यह कहते हैं कि, यह निर्णय है कि, इष्टि आदि सब विकृति पर्वमें ही होती हैं, यह निर्णय है। इसमें विशेष त्रिकाण्डमण्डन और कात्यायनने कहा है कि, यदि पर्वकी संधि मध्याह्नसे पहले की हो तो उस दिन पहले

आग्यदि पर्वसंधिः कृत्वा तु तस्मिन् प्रकृतिं विकृत्याः । तदैव यागः परतो यदि स्यात्तस्मिन्विकृत्या प्रकृतेः परेद्युः ॥ " इति । धूर्तस्वाम्यादयोऽप्येव-माहुः । 'यदीष्ट्येति साङ्गाया विकृतेः पर्वकालत्वादावर्तनात् प्राक् संधौ संधि-मभितो यतेत' इति प्रकृतेः प्रतिपदि समाप्तिनियमात् प्रकृत्यन्तरप्रतिपदि-विकृत्ययोगात् पूर्वेद्युर्विकृतिरित्युक्तं तन्त्ररत्ने पार्थसारथिना । यद्यपि-'प्रकृतेः पूर्वत्वादपूर्वमन्ते स्यात्' इत्यापस्तम्बेनोक्तं तथापि हेतुवादेन श्रुतिमूल-त्वाभावात्-'अङ्गं वा समभिव्याहारात्' इतिवदप्रामाण्यमिति तदाशयः । आग्रयणे तु विशेषं वक्ष्यामः । अन्वारम्भणीया तु चतुर्दश्यां कार्येति हिरण्यकेशिवृत्तौ मातृदत्तीये । अन्येषां पर्वण्येव । पशौ सोमे च कालान्तर-मप्याह बौधायनः-'अमावास्येन वा हविषेष्ट्वा नक्षत्रे च' इति ॥ शुक्लपक्षे कृत्तिकादिविशाखान्तेषु देवनक्षत्रेष्विति केशवस्वामी व्याचख्यौ । चातुर्मा-स्येष्वपि इष्ट्यारम्भनिर्णयः । चातुर्मास्येष्वपि द्वादशाहयथाप्रयोगपक्षयोर्नक्षत्रे-ष्वप्यारम्भः ॥ यावज्जीवसांवत्सरप्रयोगयोस्तु फाल्गुन्यां चैत्र्यां वारम्भः । पशौ तु विशेषमाह कात्यायनः-"अर्धादह्नो भवति नियतं पर्वसंधिः परस्ता-त्कृत्वा तस्मिन्नहनि तु पशुं सद्य एव द्व्यहं वा । आरभ्याथ प्रकृतिरथ

विकृतिकी प्रकृतिको करके पीछेसे यज्ञ होता है। उस दिन विकृतिसे दूसरे दिनमें विकृतिकी प्राप्ति हो सकती है। इसी प्रकार धूर्तस्वामी आदि भी कहते हैं । (यदीष्टया) इस वाक्यसे पर्वकालमें अंगसहित विकृतिको ही होनेसे मध्याह्नसे प्रथम सन्धि हो तो यज्ञ दोनों दिन करना, इस वाक्यसे प्रकृतिकी पूर्तिका प्रातिपदाको नियम है। यदि प्रकृतिके पीछे प्रतिपदा आवे तो विकृति नहीं हो सकती। तन्त्ररत्नमें पार्थसारथि यह कहते हैं कि, पहले दिन विकृति होती है। यद्यपि प्रकृतिको पहले होनेसे अपूर्व अन्तमें होता है यह आपस्तम्ब लिखते हैं तथापि हेतुवादसे यह वार्ता श्रुतिप्रमाण न होनेसे जिस प्रकार असमाभिव्याहार होनेसे अंगकी अप्रमाणता है इसी प्रकार यह भी अप्रमाण हो जायगा यह उसका आशय है। विशेष आग्रयण यज्ञमें लिखेंगे और अन्वारम्भणयाग तो चतुर्दशीमें करना, यह वार्ता हिर-ण्यकेशिवृत्ति और मातृदत्तीयमें लिखी है औरोंके मतमें यह भी पर्वमें ही करना। बौधायन पशु और सोमयाग अन्यसमयमें भी कहते हैं कि, अमावास्याको हविष इष्टिसे नक्षत्रमें करे और शुक्लपक्षमें कृत्तिका आदि विशाखातक देव नक्षत्रोंमें करे। केशवस्वामीने ऐसी व्याख्या की है॥ चातुर्मास्यमें भी कर्मानुसार द्वादश दिनतक नक्षत्रोंमें भी प्रारम्भ करे, यदि जीवनपर्यन्त वा एक वर्षका प्रयोग हो तो फाल्गुन और चैत्रकी अमावस्याको प्रारम्भ करना चाहिये। अग्नीषोमीय पशुयागमें कात्यायनने विशेष लिखा है कि, यदि नियमसे आधे दिनसे आगे पर्वकी संधि हो तो उसमें उसी कालमें वा दो दिनतक पशुयाग आरंभ करके प्रकृतिको निष्पादन

चेत्पर्वसंधिः पुरस्तात्कृत्वा तस्मिन्प्रकृतिमथ तु स्यात्पशुः सद्य एव ॥" अधिकारपशुस्त्वग्नीषोमीयेण सवनीयेन वा समानतन्त्रो वा कार्य इति त्रिकाण्डमण्डनः । सोमे त्वाहापस्तम्बः–'अमावास्याया दीक्षायजनीये वामावास्यायां यजनीये वा सुत्यमहः, पौर्णमास्या दीक्षायजनीये वा पौर्णमास्यां यजनीये वा सुत्यमहः ॥" इति । लाट्यायनसूत्रेऽपि–'पूर्वपक्षस्य प्रथमेऽहनि दीक्षेत दृष्ट्वा वा नक्षत्रयोगे च' इति । पूर्वपक्षः शुक्लपक्षः । नक्षत्रयोगे चेति । अयमर्थः–'चैत्र्यादिपूर्णिमायाश्चित्रानक्षत्रयोगे दीक्षेत' इति । आधानकालनिर्णयः। आधानं तु पर्वणि नक्षत्रेषु चोक्तम् । तत्र पर्व नर्क्ष 'गार्हपत्यमादधीत' इत्यादिकर्मकालव्यापि ग्राह्यम् । दिनद्वये सत्त्वे परं ग्राह्यम् । संकल्पस्य पर्वणि लाभात् । पूर्वत्र नक्षत्रयोगे तदेव ग्राह्यम् । यत्र त्रीणि सन्निपतितान्यृतुर्नक्षत्रं च पर्व तत्समृद्धं 'विप्रतिषेधे ऋतुर्नक्षत्रं च बलीयः' इति हिरण्यकेशिसूत्रात् । ऋतुः–'वसंते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत' इत्यादिः । रेणुकारिकायां तु–" माघादिपञ्चमासेषु श्रावणे वाश्विने तथा । मार्गशीर्षे शुक्लपक्षे आधानमथ कारयेत् ॥' इत्युक्तम् । अत्र मूलं मृग्यम् । आधाननक्षत्राणि त्वापस्तम्बसूत्रे–'कृत्तिकारोहिणीमृगशीर्षपुनर्वसुपुष्यपूर्वोत्तरापूर्वाषाढोत्तराषाढाहस्तचित्राविशाखाऽनुराधा-

---

करे । यदि मध्याह्नसे प्रथम पर्वकी संधि हो तो उसी दिन प्रकृतिको निष्पादन करे सद्य ही पशुयाग करे। त्रिकाण्डमण्डन कहते हैं कि, अधिकार पशुयागको तो अग्नीषोमीयके वा सवनीयके संग करे वा एक साथ ही करे। सोमयागमें तो आपस्तम्बने यह लिखा है कि, अमावस्याको दीक्षा ले और अमावास्यामें वा यज्ञके दिन स्तुतिका दिन होता है । लाटथायनसूत्रमें भी लिखा है कि, नक्षत्रके योगको देखकर वा शुक्लपक्षके प्रथम दिनमें दीक्षा ले और चैत्र पूर्णिमाकी चित्रादि नक्षत्रके योगमें दीक्षा लेनी । आधान तो पर्व वा नक्षत्रोंमें भी लिखा है इसमें पर्व नक्षत्रको उसे ही माने । गार्हपत्य अग्निका आधान करे इस आदिकर्मकालका व्यापी हो। जो दोनों दिन हो तो परदिनमें माननी चाहिये । कारण कि, पर्वमें संकल्पका लाभ होगा और यदि प्रथम ही संकल्पका योग हो तो उसको ही माने और जहां ऋतु नक्षत्र पर्व यह तीनों प्राप्त हो जायँ वह श्रेष्ठ है। विरोधमें ऋतु नक्षत्रका बल विचारकर कार्य करे। हिरण्यकेशिसूत्रका कथन है कि, ऋतु वह है कि, वसन्तमें ब्राह्मण अग्न्याधान करे इत्यादि और रेणुकारिकामें यह लिखा है कि, माघआदि पांच महीने श्रावण, आश्विन और मार्गशीर्षके शुक्लपक्षमें अग्न्याधान करे, पर इसमें प्रमाण खोजना चाहिये । आपस्तम्बमें यह आधानके नक्षत्र लिखे हैं कि, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, हस्त, चित्रा,

श्रवणोत्तराभाद्रपदा' इति । सोमपूर्वाधाने विशेषमाहापस्तम्बः—'सोमेन यक्ष्यमाण आदधानोः नर्तून्सूर्क्षेन्न नक्षत्रम्' इति ॥ अत्र प्रकरणादाधानकालबाधः । तेन सोमस्य वसंतकालता न बाध्यत इति रुद्रदत्तवृत्तौ नारायणवृत्तौ चोक्तम् ॥ तन्त्ररत्ने वार्तिके च—'ते वा एते उभये अपहतपाप्मानो ऋतवः । एष वा उद्यन्नादित्य एषां पाप्मनोऽपहन्ता । यदेवैनं कदाचन यज्ञमुपनमेदथादधीत' इत्यत्रोत्तरायणरूपं दैवं दक्षिणायनरूपं च पित्र्यमित्युभयमृतुत्रयं सोमाधाने शतपथे विशिष्य विहितम् । तदेकवाक्यतया शाखान्तरेऽपि—'नर्तून् सूर्क्षेत्' इत्यत्र सोमकालबाध एव । आधानकालबाधस्य—'यदेवैनं श्रद्धोपनमेत्तदादधीत' इत्यस्यां शाखायां वाक्यान्तरेणासिद्धत्वात्सोमकालबाधार्थमेवेदमित्युक्तम्॥ धूर्तस्वामी तु—'सोमस्यापि य ऋतुस्तस्यापि न सूर्क्षेत्' इति लिखनादुभयकालबाधं मन्यते । श्रीरामाण्डारस्तु—'कालान्तरविधानं वा सर्वकालाऽनादरो वा' इति पक्षद्वयमुक्तवान् । तत्राद्ये कृत्तिकादिकालान्तरस्य यथाधाने वसन्ताद्यबाधेन विधानम् । तथा—'सोमेऽप्युदगयनपूर्वपक्षपुण्याहसंनिपाते यज्ञकालानादेशः' इति छन्दोगसूत्रोक्तोदगयनबाधेन सोमाभिसंधिरूपकालान्तरविधानादुदग-

---

विशाखा, अनुराधा, श्रवण और उत्तराभाद्रपदा ये नक्षत्र हैं और आपस्तम्बने सोमपूर्वक आधानमें विशेष लिखा है कि, सोमयागकर्ताको आधानमें ऋतु और नक्षत्रोंके पूछनेकी आवश्यकता नहीं। यहां प्रकरणसे आधानकालका बाध प्राप्त है, इससे सोमको वसन्तकालका बाध नहीं है। यह वार्ता रुद्रदत्तवृत्ति और नारायणवृत्तिमें कही है।तन्त्ररत्नवार्त्तिकमें भी लिखा है कि, यह दोनों उत्तरायण दक्षिणायन पापरहित ऋतु हैं यह उदय होता हुआ सूर्य इनका पाप दूर करनेवाला है। जो इनमें कभी यज्ञ करै और आधान करे, इस प्रकार उत्तर नारायणरूप दैव और दक्षिणायनरूप पितृकार्य ये दोनों और तीनों ऋतु सोमाधानमें शतपथब्राह्मणने विशेष लिखी है,सो एकवाक्यता होनेसे शाखान्तरमें भी ऋतु और नक्षत्रको न देखे यह सोमकालका बाध हो है। आधानके कालका बाध यह है कि, जब वह श्रद्धासे युक्त हो तब आधान करे, इस शाखासे वाक्यान्तरसे सिद्ध होनेसे यह सोमकालके बाधके निमित्त ही है ऐसा कहा है। धूर्तस्वामिका तो यह लिखना है कि, सोमकी जो ऋतु है उसकी ही परीक्षा न करे इस लिखनेसे दोनों कालका बाध मानते हैं। श्रीरामाण्डार तो दूसरे कालकी विधि वा समयोंका अनादर मानना इन दो पक्षोंको कहते हैं, उनमें प्रथम पक्षमें कृत्तिका आदि समयान्तरका विधान अग्न्याधानमें वसन्तादिके बाध विना होता है। इसी प्रकार सोमयागमें भी उत्तरायण पूर्वपक्ष पुण्याह इन सबके संयोगमें पुण्यसमय वहां होता है जिस स्थलमें कोई विशेष विधान न हो। इस प्रकार छान्दोग्यसूत्रके लिखे हुए उदगयन अर्थात् उत्तरायण सोमयज्ञके प्रारंभरूप कालान्तरके विधानसे

यनं त्वपेक्षत इत्युक्तम् ॥ द्वितीयपक्षे तु 'यदैवैनं यज्ञ उपनमेत्' इति सर्वकालानादर उक्तः इति भारद्वाजसूत्रात्सर्वशब्दस्य च 'विश्वजित्सर्वपृष्ठः' इतिवद्द्वयोरप्रयोगात् सर्वकालबाध इति । तेन दक्षिणायनेऽपि भवतीत्युक्तम् ॥ षड्गुरुभाष्ये देवत्रातभाष्ये तन्त्ररत्ने च षट्स्वपि ऋतुषु भवतीत्युक्तामिति दिक् ॥ दर्शश्राद्धकालः ॥ श्राद्धे त्वमावास्या त्रेधाविभक्तदिनतृतीयांशे योऽपराह्णभागस्तद्व्यापिनी साग्निकैर्ग्राह्या । "पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते । वासरस्य तृतीयेंऽशे नातिसंध्यासमीपतः ॥" इति कात्यायनोक्तेः । "दर्शश्राद्धं तु यत्प्रोक्तं पार्वणं तत्प्रकीर्तितम् । अपराह्णे पितॄणां च तत्र दानं प्रशस्यते ॥" इति शातातपोक्तेश्च । दिनद्वये तत्र सत्त्वे सर्वापराह्णव्यापी दर्शो ग्राह्यः ॥ "यद्युभयेद्युरेष विहितः सर्वापराह्णस्थितः" इति दीपिकोक्तेः । यत्तु काष्र्णाजिनिः-"भूतविद्धाममावस्यां मोहादज्ञानतोऽपि वा । श्राद्धकर्मणि ये कुर्युस्तेषामायुः प्रहीयते" ॥ इति । तदपराह्णे चतुर्दशीवेधपरमिति श्राद्धहेमाद्रिः ॥ अपराह्णव्याप्तिपरमिति माधवः ॥ 'दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यभावेंऽशतो व्याप्तौ च तिथिक्षये पूर्वा' इति हेमाद्रिः । "यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत् । अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते" ॥ इति कात्यायनोक्तेः ॥ चतुर्दश्याश्चतुर्थं यामं दर्शः

उत्तरायणकी तो अपेक्षा होती है इस प्रकार लिखा है। दूसरे पक्षमें जब कालान्तरमें यजमानको यागप्राप्ति हो तभी और सब समयोंका अनादर जानना, इस प्रकार भारद्वाजके सूत्रानुसार सर्वशब्दको (विश्वजित् सर्वपृष्ठ) विश्वजित् यज्ञ सबसे अधिक है, इसके तुल्य दोनों प्रयोग न होनेसे सब कालका बाध प्राप्त होता है, इससे यह जताया कि, दक्षिणायनमें भी यज्ञ होता है। षड्गुरुभाष्य, देवत्रातभाष्य और तन्त्ररत्नमें लिखा है कि, छहों ऋतुओंमें यज्ञ होता है। यही संक्षेपसे मार्ग कहा। श्राद्धमें इस प्रकार अमावास्याका ग्रहण है कि, एक दिनके तीन विभाग करके तीसरे भागके अपराह्ण भागमें व्याप्त होनेवाली अमावस अग्निहोत्रियोंको ग्रहण करनी चाहिये। कात्यायन लिखते हैं कि, सपिण्डश्राद्ध दिनके तृतीयभाग अमावास्यामें करना उत्तम है और जब सन्ध्या समय बहुत निकट आगया हो तो न करे। शातातप कहते हैं-अमावसके श्राद्धको ही पार्वण कहते हैं उसके अपराह्णमें पितरोंको दिया दान अति श्रेष्ठ है। जो दोनों दिन अपराह्ण हो तो वह ग्रहण करनी जो सम्पूर्ण अपराह्णव्यापिनी हो। दीपिकामें कहा है कि, दोनों दिन श्राद्धकी विधि प्राप्त हो तो सब अपराह्णमें स्थितको ग्रहण करे और काष्र्णाजिन यह कहते हैं कि, जो मनुष्य मोह वा अज्ञानसे चतुर्दशीविद्धा अमावास्याको करते हैं उनकी आयु क्षीण होती है; यह वार्ता अपराह्णमें चतुर्दशीके वेध होनेपर जानना, यह श्राद्धहेमाद्रिका कथन है। माधव कहते हैं-जो अपराह्णव्यापिनी हो तो माने, जो दोनों दिन अपराह्णमें व्याप्त न हो अथवा किसी अपराह्णके भागमें वर्तती हो अथवा तिथिका क्षय हुआ हो तो प्रथमहीकी करनी. यह हेमाद्रिका कथन है। कारण कि, कात्यायन कहते हैं-जिसदिन चौदसके चतुर्थ पहरको अमा-

पूरयेत् । चतुर्दशी यामत्रयं स्यादित्यर्थः । क्षीयमाणा परदिनेऽपराह्णव्यापिनी नेत्यर्थः । व्यतिरेकमाह–" वर्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेऽहनि । यामांस्त्रीनधिकान्वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत् " ॥ ततः श्राद्धं च ॥ दिनद्वयेऽपराह्णव्याप्त्यादौ तिथिवृद्धौ च हारीतः–"त्रिमुहूर्ता च कर्तव्या पूर्वा खर्वा च बह्वृचैः।कुहूरध्वर्युभिः कार्या यथेष्टं सामगीतिभिः " ॥ त्रिमुहूर्ताभावे तु पूर्वा नेत्यर्थः ॥ पिण्डपितृयज्ञः ॥ पिण्डपितृयज्ञस्तु कात्यायनैर्यागदिनात्पूर्वेद्युः कार्यः ' पूर्वो वांगत्वात् पिण्डपितृयज्ञः' । इति तत्सूत्रात् ॥ व्याख्यातं चैतत् कर्काचार्यैः पूर्व एव दर्शात् पिण्डपितृयज्ञो, न पश्चात् । कुतः अंगत्वात् । तथा च श्रुतिः–" तस्मात्पूर्वेद्युः पितृभ्यः क्रियत उत्तरमहर्देवान् यजन्ते" इति । ' पूर्वेद्युः पितृभ्यो यज्ञं निपृणीय प्रातर्देवेभ्यः प्रतनुते ' इति च । तेन तन्मते अंगमेवासौ तदुक्तम्–"अंगं वा समभिव्याहारात् " इति । तेन कर्कमते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पिण्डपितृयज्ञ इति ॥ श्रीअनन्तभाष्ये तु–'परेद्युः' इत्युक्तम् ॥ अत्र द्वेधाप्याचारो दृश्यते ॥ आपस्तम्बानां तु परदिने मुहूर्तमपि दर्शसत्त्वे तत्रैव पितृयज्ञः । तदाह आपस्तम्बः–"अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहः पिंडपितृयज्ञं कुरुते " इति ॥ अस्य रुद्रदत्तीया व्याख्या पिंडैर्युक्तः पितृयज्ञः पिंडपितृ-

---

वास्या पूर्णकरदे और अमावस अगले दिन अपराह्णमें न हो क्षीण हो तो चतुर्दशीकोही श्राद्ध करलेना, इसका अभाव लिखा है कि, जो अगले दिनमें तीनपहर अथवा अधिक पहरतक बढ़ती हुई अमावास्याको देखे तो पितृयज्ञ होता है, जो दोनों दिन अपराह्णव्यापिनी हो वा तिथिकी वृद्धि हो तो हारीत यह कहते हैं कि, चन्द्रकलायुक्त अमावसके तीन मुहूर्त होनेपर भी बह्वृचोंको पहली करनी" चाहिये और जिसमें चन्द्रकला न हो उसको अध्वर्यु करे और सामवेदी इच्छानुसार चाहे जिसे करे, जो पहले दिन तीन मुहूर्तपर्यन्त न हो तो न करे ॥ कात्यायन महर्षिने पिण्डपितृयज्ञ यागदिनसे पहले करना लिखा है। यह उनका सूत्र है कि, यज्ञाङ्ग होनेसे पिण्डपितृयज्ञको प्रथम करना चाहिये। कर्काचार्यने इस प्रकार इसकी व्याख्या की है कि, पिण्डपितृयज्ञ अंग होनेसे अमावास्यासे पहले करे पीछे न करे । श्रुति है कि,पहले दिन पितरोंके निमित्त यज्ञ करना, दूसरे दिन देवताओंके निमित्त, प्रथम दिन पितरोंके निमित्त यज्ञ करके दूसरे दिन प्रभातमें देवताओंके निमित्त करे, इस कथनसे उनके मतमें पितृयज्ञ देवयज्ञका अंग ही विदित होता है, यही लिखा भी है कि, समभिव्याहारके कारण प्रथम अंगको ही करना चाहिये, इससे कर्काचार्यके मतमें चतुर्दशीसे युक्त अमावास्याको पिण्डपितृयज्ञ होना चाहिये। श्रीअनन्तभाष्यमें लिखा है कि, पहले दिन करे,लोकमें दोनों प्रकारकाही आचार देखा जाता है और आपस्तम्बोंके मतमें यदि दूसरे दिन अमावस मुहूर्तमात्र हो तो भी उसी दिन पितृयाग होता है । वह कहते हैं जब अमावसमें चन्द्रमा न हो तब उस दिन पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिये । इसपर जो रुद्रदत्तने व्याख्या की है कि, जो पितृयज्ञ पिण्डोंसे युक्त होनेसे पिण्डपितृयज्ञ कहाता है यह कर्म दूसरा

यज्ञः। सच कर्मान्तरं न तु दर्शशेषः। यथा वक्ष्यति-'पितृयज्ञः स्वकालविधानाद्-नंगं स्यात्' इति। 'तं च यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति पञ्चदश्यां प्रतिपदि वा तदहः कुरुते। यदहस्तयोः संधिस्तदहरित्यर्थः' इति॥ रामांडारोऽप्याह-'पिंडापितृयज्ञस्तु पर्वसंधिमदहोरात्रापराह्ण' इति। अतः पर्वसंधिदिने पितृयज्ञः। शतपथश्रुतिरपि-"यदैवैष नापुरस्तान्न पश्चाद्दृश्यतेऽथ पितृभ्यो ददाति" इति। पर्वसन्धिदिने हि पूर्वतः पश्चाद्वा चन्द्रो न दृश्यत एवेत्यर्थः॥ सत्याषाढोऽपि पितृयज्ञं प्रक्रम्य 'दृश्यमाने तूपोष्य श्वोभूते यजते' इत्याह। हेमाद्रिस्तु अमावास्याशब्दस्तिथिवचन एव। पूर्वोक्तापस्तम्बसूत्रे यदुक्तं न पश्यन्ति इति तत्र क्षयोऽभिप्रेतः। अतश्चतुर्दश्यां चन्द्रमसश्च क्षीणत्वात्तद्युक्तदर्शे पितृयज्ञः 'पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रे क्षयेऽग्निमान्' इति मनूक्तेः। "यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः। तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि॥" इति। यदुक्तं 'दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया' इति च कात्यायनोक्तेः। 'दृश्यमानेऽप्येके' इति गोभिलोक्तेः॥ "तस्यां सन्ध्यागतः सोमो मृणालमिव दृश्यते। अपराह्णे क्षयस्तस्यां पिण्डानां करणं ध्रुवम्"॥ इति हारीतोक्तेश्च। चन्द्रक्षयकालश्चोक्तः कात्यायनेन-"अष्टमेंऽशे

है, कुछ अमावस्याका शेष नहीं है यही आगे कहेंगे। स्वकालमें अनुष्ठान करनेसे अमावास्याके श्राद्धका पितृयज्ञ अंग नहीं है। जिस दिन चन्द्रमाको पूर्णिमा वा प्रतिपदामें न देखे उसी दिन करे। तात्पर्य यह है कि, जब इन दोनोंकी संधि हो तब करे। श्रीरामाण्डार भी कहते हैं कि, पिण्डापितृयज्ञ भी पर्वकी संधिवाले अहोरात्रके अपराह्णमें होता है, इससे पितृयज्ञ पर्वकी संधिके दिन होता है। शतपथब्राह्मणकी श्रुति है कि, यजमान जब पर्वकी संधिके दिनसे पहले वा पछि दिनमें चन्द्रमा न देखे तब पितरोंके निमित्त दे अर्थात् यज्ञ करे। पितृयज्ञके प्रकरणमें सत्याषाढ कहते हैं कि, चन्द्रमाके दीखते हुए चतुर्दशीको उपवास करके फिर दूसरे दिन प्रभातमें याग करे। हेमाद्रि तो यह लिखते हैं कि, अमावस्या शब्दका यहां तिथि अर्थ है और पूर्वोक्त आपस्तम्बमें जहां लिखा है कि, जब चन्द्रमा न दीखे वहां चन्द्रमाका क्षय लेना। इस कारण चन्द्रमाके क्षीण होनेसे चतुर्दशीको भी चतुर्दशीयुक्त अमावसको भी पितृयज्ञ करना चाहिये। अग्निहोत्री ब्राह्मण चन्द्रमाके क्षीण होनेमें पितृयज्ञ करे फिर अन्यकर्म करे यह मनु कहते हैं। और यह जो कहा है कि, जब चन्द्रमा दर्शन न दे और क्षीणचन्द्रमा हो तब यज्ञ करे यह सब क्षयकी अपेक्षासे जानना और यह जो कहा कि, चन्द्रमाके दर्शन होनेसे उपवास करके चतुर्थीकी अपेक्षासे समझना यही कात्यायनने लिखा है। कोई कहते हैं कि, चन्द्रमाके दीखते भी पितृयाग होता है यह गोभिलजीने लिखा है। हारीत महर्षि कहते हैं कि, संध्यासमय जिस तिथिको चन्द्रमा कमलतन्तुके समान दीखे उसके अपराह्णमें क्षय होता है, उसमें अवश्य पिण्डदान करे। कात्यायनने चन्द्रमाके क्षयका यह समय कहा है कि, चौदशके अष्टम भागमें चन्द्रमा

चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः । अमावास्याष्टमेंऽशे तु पुनः किल भवेदणुः ॥ ” इति । तेन पूर्वेद्युरेव पितृयज्ञ इत्यूचिवान् ॥ कर्काचार्यैरपि–‘अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम् ’। इति कात्यायनसूत्रेऽदर्शनेन क्षय एवोक्तः । ‘ तस्मिन् क्षीणे ददाति ’ इति श्रुतेः । अतस्तन्मते चतुर्दशीयुक्तदर्शे पितृयज्ञे सति परदिने यागोऽर्थात्सिद्धः । तदेतत्सर्वोत्कृष्टमपि हेमाद्रिकर्कादिव्याख्यानमापस्तम्बैरनभ्युपगमात्कातीयबौधायनादिविषयम् । आश्वलायनानामपि शेषपर्वणि पिण्डपितृयज्ञः । तथा च सूत्रम्–‘अमावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञः ’ इति । अत्र नारायणवृत्तिः–अमावास्याशब्दः प्रतिपत्पञ्चदश्योः संधिवचनोऽप्यत्रापराह्णशब्दसमन्वयात्तद्वत्यहोरात्रे वर्तते । तस्यापराह्णेऽह्नश्चतुर्थे भागे पिण्डपितृयज्ञः कार्यः । औपवसथ्ययजनीये वाहनि । यदा त्वहोरात्रसंधौ तिथिसंधिः स्यात्तदौपवसथ्ये एवाहनि क्रियत इति । अत एव–“मुहूर्त्तमप्यमावास्या प्रातिपद्यपि चेद्भवेत् । तद्दत्तमक्षयं ज्ञेयं पर्वशेषं तु पूर्ववत् ” ॥ इति हेमाद्रौ वचनं पिण्डपितृयज्ञपरमुक्तं प्रयोगपारिजाते । अयं च स्मार्ताग्निमता संपूर्णे दर्शे श्राद्धव्यतिषङ्गेण कार्यः व्यतिषंगोनामोभयोः सहानुष्ठानम् । एतच्च ‘ स्थालीपाकेन सह पिण्डार्थमुद्धृत्य ’ इति सूत्रे वृत्तिकृतोक्तम् ॥ खण्डपर्वणि तु केचिदाहुः–‘पूर्वेऽह्नि पिण्डपितृयज्ञव्यतिषङ्गेण श्राद्धं कृत्वा परेऽह्नि

क्षीण होता है और अमावास्याके आठवें भागमें अणु हो जाता है, इससे पिण्डापितृयज्ञ प्रथम दिन ही करना चाहिये। कर्काचार्यने भी अमावास्याके अपराह्णमें चन्द्रमाके न दीखनेपर पिण्डपितृयज्ञ करना कहा है और चन्द्रमाके न दीखनेपर ही कात्यायनसूत्रमें भी क्षय लिखा है कि, चन्द्रमाके क्षीण होनेपर देना. ऐसी श्रुति है। इस कारण उनके मतमें चतुर्दशीयुक्त अमावसके होनेमें पितृयज्ञ होनेपर परदिनमें यज्ञ सिद्ध है सो यह सबसे उत्कृष्ट भी हेमाद्रि और कर्कादिका व्याख्यान आपस्तम्बोंने न माननेसे कातीय और बौधायनादिके निमित्त जानना और आश्वलायनोंका भी पिण्डपितृयज्ञ पर्वके शेषमें होता है ऐसा ही सूत्र है कि, अमावास्याको अपराह्णमें पिण्डपितृयज्ञ करना। इसपर नारायणीवृत्ति है कि, अमावसशब्द प्रातिपदा और पंचदशीकी संधिका कहनेवाला भी अपराह्णके मेलसे संधियुक्त अहोरात्रमें वर्तता है। उस दिनरात अपराह्ण चतुर्थभागमें पिण्डपितृयज्ञ करना चाहिये अथवा यजन योग्य औपवसथ्यके दिन करे। जब अहोरात्रकी संधिमें तिथिकी संधि हो तब प्रथमके दिन यज्ञ करे। इसीसे यदि प्रतिपदामें मुहूर्तमात्र भी अमावास्या हो तो उसमें जो दिया जाता है वह अक्षय होता है। कारण कि, यह पर्वका शेष भी पर्वके सदृश होता है, यह हेमाद्रिका वचन पिण्डपितृयज्ञपर प्रयोगपारिजातमें लिखा है और यह स्मार्त अग्निसम्पन्न पुरुष इस यागको पूर्णा अमावास्याके दिन श्राद्धके संग ही करे। व्यतिषंगसे दोनोंका अनुष्ठान करे यह वार्ता स्थालीपाकके सहित पिण्डोंके निमित्त निकाल कर श्राद्ध करे। इस सूत्रमें वृत्तिकारने कहा है, खण्डपर्वमें तो किसीका

केवलः पिण्डपितृयज्ञः कार्यः' ॥ वृत्तिकृता तु-"अन्वाष्टक्यं च पूर्वेद्युर्मासिमास्यथ पार्वणम्। काम्यमभ्युदयेऽष्टम्यामेकोद्दिष्टमथाष्टमम्" । इत्युदाहृत्य पूर्वेषु चतुर्षु-'स्थालीपाकादुद्धृत्याग्नौकरणम्' इत्युक्तेर्दर्शश्राद्धस्थालीपाको नियत इति गम्यते। स्यालीपाकश्च पितृयज्ञ एवेति पूर्वदिने व्यतिषङ्गः प्रसिद्धः। प्रयोगपारिजाते तु वार्षिकश्राद्धादेरपि व्यतिषङ्ग उक्तः किमुत दर्शश्राद्धस्य न्यायविदस्त्वाहुः। सूत्रस्य वृत्तेश्च संपूर्णदर्शविषयत्वात् खण्डपर्वणि पूर्वदिने केवलं श्राद्धं परदिने च केवलः पितृयज्ञः कार्यः। अतएवोक्तं वृत्तिकृता नात्र पूर्वस्थालीपाकश्चोक्तो सर्वश्राद्धेषु प्रसंगादिति। प्रयोगपारिजातोक्तिरप्येतद्विषयैव। पूर्वदिने च श्राद्धं अग्नौकरणमेव न पाणिहोमः। "चतुर्ष्वाद्येषु साग्नीनां वह्नौ होमो विधीयते। पित्र्यब्राह्मणहस्ते स्यादुत्तरेषु चतुर्ष्वपि ॥" इति परिशिष्टे नियमात् ॥ न च लौकिकाग्नौ पक्वस्य कथं गृह्याग्नौ होमः। 'नान्याग्नौ पक्वमन्याग्नौ जुहुयात्' इति निषेधात्। मैवम् 'श्राद्धस्य गृहत्वेन स्मार्ताग्नौ पचनाग्नौ वा कर्तव्यत्वात् तस्मात् पूर्वेद्युः केवलं श्राद्धं न व्यतिषंगः। इदमेव च युक्तम्। आहिताग्निना तु सर्वा-

---

यह कथन है कि, श्राद्ध प्रथम दिन पिण्डपितृयज्ञके साथ करके दूसरे दिन केवल पिण्डपितृयज्ञ करे और वृत्तिकार तो यह कहते हैं कि, अन्वष्टकाश्राद्ध (जो मार्गशिरकी अष्टमीको होता है) को प्रथम दिन और प्रत्येकमहीने पार्वण, अभ्युदयकाम्यश्राद्ध और आठवां एकोद्दिष्ट होता है यह कथन करके पहलेके चारोंमेंसे स्थालीपाकको निकालकर अग्नौकरण करे। इस उक्तिसे दर्शश्राद्धमें भी स्थालीपाकका नियम है तथा पितृयज्ञका ही नाम स्थालीपाक है, इससे पहले दिनमें दोनोंकी सन्धि सिद्ध हुई और प्रयोगपारिजातमें क्यों यह वार्षिक श्राद्धमें भी मेल कहा है। फिर अमावसश्राद्धकी तो बात ही क्या उसमें क्यों न हो। और न्यायके ज्ञाता तो यह कहते हैं कि, सूत्र और उसकी वृत्ति ये सब अमावास्याविषयक हैं। खण्डपर्वमें पूर्वदिनमें केवल श्राद्ध और परदिनमें केवल पितृयज्ञ करना। इसी कारण वृत्तिकार यह कहते हैं कि, इस स्थलमें अकथित पूर्व स्थालीपाक नहीं कहा है कारण कि, स्थालीपाकका प्रसंग सब श्राद्धोंमें होता है। और प्रयोगपारिजातकी उक्ति भी इसी विषयमें है, पूर्वदिनमें श्राद्ध करे तो अग्नौकरण करना चाहिये, पाणिहोम (ब्राह्मणके करमें होम) न करे। कारण कि, परिशिष्टमें कहा है कि, प्रथम चार श्राद्धोंमें अग्निहोत्रीको अग्निमें हवन करना चाहिये यह नियम है और पितृकर्ममें अगले चारोंमें भी ब्राह्मणोंके हाथमें हवन करे। यदि शंका हो कि, लौकिक अग्निमें पाचित किये द्रव्यका हवन विवाहकी अग्निमें कैसे नहीं हो सकता है? कारण कि, अल्प अग्निमें पाचित किये द्रव्यका दूसरी अग्निमें हवन निषेध किया है यह शंका यहां नहीं हो सकती, कारण कि श्राद्ध गृहकार्य होनेसे स्मार्त वा पाक अग्निमें करने योग्य है। इस कारण प्रथम दिन श्राद्ध करना, व्यतिषंग न करना और यह

धानिनार्धाधानिना वा सम्पूर्णे खण्डे वा दर्शे श्रौताग्नौ पृथगेव पितृयज्ञः कार्यो नतु दर्शश्राद्धव्यतिषंगेणेति विस्तरभीतेर्विरमामः ॥ सम्पूर्णे दर्शे च विशेषमाह लौगाक्षिः—"पक्षान्तं कर्म निर्वर्त्य वैश्वदेवं च साग्निकः । पिण्डयज्ञं ततः कुर्यात्ततोऽन्वाहार्यकं बुधः ॥ " इति पक्षान्तं कर्मान्वाधानम् । अन्वाहार्यकं दर्शश्राद्धम् ॥ अयमेव साग्नेर्जीवत्पितृकस्य पिण्डपितृयज्ञकालो ज्ञेयः । तस्यापि कात्यायनेन होमान्तमनारम्भो वा इत्याम्नातत्वात् ॥ पिण्डपितृयज्ञाकरणे प्रायश्चित्तमाह पराशरमाधवीये कात्यायनः—"पितृयज्ञात्यये चैव वैश्वदेवात्ययेऽपि च । भोजने पतितान्नस्य चरुर्वैश्वानरो भवेत् ॥ " इत्यलम् । प्रकृतमनुसरामः । निरग्निकादिभिस्त्वमावास्यापराह्णव्याप्त्यभावे तु कुतुपकालव्यापिनी ग्राह्या । "भूतविद्धाप्यमावास्या प्रतिपन्मिश्रितापि वा । पित्र्ये कर्मणि विद्वद्भिर्ग्राह्या कुतुपकालिकी ॥ " इति हारीतोक्तेः । इदं च निरग्निकादिविषयम् । "सिनीवाली द्विजैः कार्या साग्निकैः पितृकर्मणि । स्त्रीभिः शूद्रैः कुहूः कार्या तथा चानग्निकैर्द्विजैः ॥" इति लौगाक्षिवचनात् । अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ कुतप-

---

युक्त भी है कि, अग्निहोत्रका ग्रहण करनेवाला चाहे सर्वाधानी वा अर्धाधानी हो अर्थात् जिसने सम्पूर्ण अग्नि वा एक दो का आधान किया हो वह पूर्ण वा खण्डित अमावसमें श्रुतिकी अग्निमें पृथक् ही पितृयज्ञ करे, दर्शश्राद्धके संग न करे। अब विस्तारभयसे बस करते हैं ॥ लौगाक्षिने पूर्ण अमावस्यामें विशेष लिखा है कि, पक्षान्तकर्म और बलिवैश्वदेव करके अग्निहोत्री ब्राह्मणको पिण्डयुक्त करना चाहिये । पक्षान्तकर्म अन्वाधान है । अन्वाहार्यक दर्शश्राद्ध है फिर बुद्धिमान् दर्शश्राद्ध करे और जीवितपितावाले अग्निहोत्रीका भी पिण्डपितृयज्ञका यही समय जानना। कात्यायन कहते हैं वह भी होमके अन्ततक आरम्भ न करे॥ पराशरमाधवीय ग्रन्थमें पिण्डपितृयज्ञके न करनेमें कात्यायनने प्रायश्चित लिखा है कि, यदि पितृयज्ञ और बलिवैश्वदेव न करे और नवयज्ञके किये विना नवाह्नमें भोजन करले तथा पतितका अन्न भोजन करले तो अग्निमन्त्रसे निर्माण किये चरुसे हवन करे, वही बहुत है। अब प्रकरणपर चलते हैं कि, जो अग्निहोत्री नहीं है यदि उनको अमावास्या अपराह्णव्यापिनी न मिले तो कुतुपकाल अर्थात् मध्याह्नकी दो घडी व्यापनेवाली ग्रहण करले । कारण कि, हारीत कहते हैं, जो अमावस चौदसविद्धा हो वा प्रतिपदासे संयुक्त हो तो पितृकालमें बुद्धिमानको वही ग्रहण करनी चाहिये, यदि वह कुतुपकालव्यापिनी हो तो यह भी उन्हींके निमित्त है। यदि वे अग्निहोत्र करनेवाले न हों; कारण कि, लौगाक्षि कहते हैं कि, पितरोंके कार्यमें अग्निहोत्री ब्राह्मणोंको सिनीवाली लेनी चाहिये । स्त्री, शूद्र तथा दूसरे जो अग्निहोत्री न हों उन ब्राह्मणोंको कुहू अमावास्यामें करना चाहिये । कोई यहां अग्निपदसे उपासनादिका ग्रहण करते हैं । यह मदनपारिजातमें लिखा है और यदि अपराह्णमें कुतुपसमय न मिले तो कुतुपके समान ले लेना ।

श्वापराह्णव्याप्त्यलाभेऽनुकल्पः–"अपराह्णद्वयव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये । आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता ॥" इति जाबालिनाऽभावे विधानात् । तेन साग्नीनां निरग्नीनां वापराह्णव्यापिन्येव मुख्या । तिथिसाम्यवृद्धिक्षयैः समव्याप्तौ खर्वादिना निर्णयः । वैषम्येऽधिका दिनद्वयेऽपराह्णस्पर्शे कुतुपव्यापिनीति माधवः इदमेव युक्तम् । हेमाद्रिमते कुतुपव्यापिन्येव निरग्न्यादेर्मुख्या । अत्र साग्निरौपासनाग्निरपीति मदनपारिजाते उक्तम् ॥ सिनीवाली दृष्टचन्द्रा । तथा च व्यासः–'दृष्टचन्द्रा सिनीवाली नष्टचन्द्रा कुहूः स्मृता' इति । पूर्वदिने परदिन एव वा तद्व्यापित्वे सैव ग्राह्या । अंशव्यापित्वे वैषम्येऽधिककालव्यापिनी ग्राह्या । दिनद्वयेंऽशतः समव्याप्तौ तिथिक्षये पूर्वा वृद्धौ साम्ये च परा । "तिथिक्षये सिनीवाली तिथिवृद्धौ कुहूः स्मृता । साम्येऽपि च कुहूर्ज्ञेया वेदवेदांगवेदिभिः ॥" इति प्रचेतोवचनात् । दिनद्वये सम्पूर्णकुतुपव्याप्तिस्तु तिथिवृद्धावेव भवतीत्यनन्तरवचनात् परैवेति । कुतुपस्तु–'अह्नो मुहूर्ता विज्ञेया दश पञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्तो यः स कालः कुतुपः स्मृतः" इति मात्स्योक्तेः । तुलादानपितृदेवप्रीत्यर्थोपवासादौ तु परा ग्राह्येत्यन्यत्र विस्तरः । दर्शे अन्यश्राद्धप्राप्तौ निर्णयः । दर्शे च मासिकवार्षि-

---

कारण कि, जाबालिने कुतुपके अभावमें यह विधान कहा है। यदि अमावास्या तिथिके क्षयमें दोनों अपराह्णमें व्याप्त हों तो अग्निहोत्रीको सिनीवाली (जिसमें चन्द्रमा दीखे) और अग्निहोत्ररहितको कुहू माननी चाहिये । इस साग्नि और निरग्नियोंको अपराह्णमें व्याप्त होनेवाली ही मुख्य तिथि है, तुल्यता वृद्धि क्षय इनसे यदि समव्याप्ति हो तो खर्वादिसे निर्णय करना । विषमतामें अधिकता दोनों दिन अपराह्णमें न हो तो कुतुपकालव्यापिनी लेनी यह माधव कहते हैं और यही युक्त है । हेमाद्रिके मतमें कुतुपव्यापिनी ही अग्निहोत्रीको छोड़कर मुख्य है। यही साग्नि और उपासनाग्नि भी मदनपारिजातमें कही है । जिसमें चन्द्रदर्शन हो उसे सिनीवाली कहते हैं। यही व्यास कहते हैं कि जिसमें चन्द्रमा दीखे वह सिनीवाली और जिसमें चन्द्रदर्शन न हो उसे कुहू कहते हैं। पूर्व दिनमें अथवा परदिनमें कुतुपकालव्यापिनी ही ग्रहण करना चाहिये और जो किसी अंशमें व्यापिनी होनेसे विषमता हो तो अधिककालव्यापिनीको ग्रहण करना चाहिये । यदि दोनों दिन अंशोंमें समान रूपसे व्याप्त हो तो वा तिथिकी क्षय वृद्धि अथवा दोनों दिन समानता हो तो परली ग्रहण करनी चाहिये । कारण कि, प्रचेता यह कहते हैं कि, वेद वेदांगके जाननेवालोंने तिथिके क्षयमें सिनीवाली और वृद्धि समानतामें कुहू ग्रहण करनी कही है और वृद्धि होनेमें तिथि दोनों दिन कुतुपकालव्यापिनी होती है । यह आगेका वचन है इससे परली ही होती है । मत्स्यपुराणमें लिखा है कि,सदा ही दिनके मुहूर्त पन्द्रह जानने, उनमें आठवें मुहूर्तका नाम कुतुप है और तुलादान और पितृदेवताकी प्रीतिके निमित्त उपवासादिमें अगली ही ग्रहण करनी।इसका विस्तार अन्यत्र है। अमावसमें मासिक वा वार्षिक श्राद्ध आ पड़े तो कालादर्शमें विशेष लिखा है,

कादिश्राद्धप्राप्तौ कालादर्शे विशेष उक्तः।"दर्शस्य चोदकुम्भस्य दर्शमासिकयोरपि। नित्यस्य चाब्दिकस्यापि वार्षिकाब्दिकयोरपि ॥" इत्युक्त्वा "संपाते देवताभेदाच्छ्राद्धयुग्मं समाचरेत् । निमित्तानि यतिश्चात्र पूर्वानुष्ठानकारणम्" इति । अत्र क्रमो निर्णयदीपे उक्तः-"नष्टचन्द्रे यदा काले क्षयाहदिवसो भवेत् । वैश्वदेवं क्षयश्राद्धं कुर्यात् प्राग्दर्शकर्मणः॥" अनुपनीतानां शूद्राणां च श्राद्धनिर्णयः। अमाश्राद्धं चानुपनीतोऽपि कुर्यात् । श्राद्धशूलपाणौ-"अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च"इत्युपक्रम्य "एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात्सर्वेषु पर्वसु । श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्॥भार्याभर्त्रा रहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत्कुर्यादनेन विधिना बुधः" इति मात्स्योक्तेः । अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तनिर्णयः । अमाश्राद्धातिक्रमे प्रायश्चित्तमुक्तमृग्विधाने-"न्युपूवाचं जपेन्मंत्रं शतवारं दिने दिने । अमाश्राद्धं यदा नास्ति तदा संपूर्णमेति तत्" ॥ अत्र पूर्वोक्तसाग्निकपदेनाहिताग्निः स्मार्ताग्निमांश्च गृह्यते । विच्छिन्नाग्निकादिश्च निरग्निकः । तथा च हेमाद्रिरग्नौकरणप्रकरणे-"साग्निरग्नावनग्निस्तु द्विजपाणाव-

---

अमावस्या और घटदानका, अमावस्या और मासिकका, नित्यश्राद्ध और वार्षिक श्राद्धका तथा अमावास्या और वार्षिकश्राद्धका संयोग एक दिन आ पड़े तो देवता भेदसे दो श्राद्ध करे और इनमें निमित्त ही पहले श्राद्ध करनेमें कारण जाना जाता है। जिसका प्रथम निमित्त हो उसे पहले करे, यह निर्णयदीपमें लिखा है। अमावस्याको यदि क्षयाह दिन आ पड़े तो दर्शकर्मसे पहले बलिवैश्वदेव और क्षयाह श्राद्ध करे। और अनुपनीत पुरुष भी अमावास्याका श्राद्ध करे। श्राद्धशूलपाणिमें लिखा है कि, अमावास्या अष्टका कृष्णपक्षकी अमावस यहांसे चलकर कहते हैं कि, इनको यज्ञोपवीतसे हीन होकर भी सब पर्वोंमें करनी चाहिये। यह साधारण नामक श्राद्ध सब कामनाओंको देता है। यह श्राद्ध भार्याहीन तथा नित्यप्रवासी पुरुष भी करे और मन्त्ररहित शूद्र भी इसको करे, ऐसा मत्स्यपुराणका वाक्य है। अमावास्यामें श्राद्ध न करनेसे ऋग्विधानमें प्रायश्चित्त कहा है, यदि अमाश्राद्ध न करे तो 'न्युपूवाच' इस मंत्रको प्रतिदिन सौ वार जपनेसे उसकी पूर्ति हो जाती है ("ऋग्वेद १ । ४ । ४५" में मन्त्र है)। यहां पूर्वोक्त साग्निपदसे आहिताग्नि और स्मार्ताग्निका ग्रहण है और नष्टअग्निवाला निरग्नि कहाता है । यही हेमाद्रि अग्निप्रकरणमें कहते हैं कि, साग्निक ब्राह्मणको अग्निमें और निरग्निक ब्राह्मणको हाथ, जल वा लौकिक अग्निमें सदा अग्नौकरण करना

---

१ 'न्यूषु वाचं प्रमहे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥' ऋ० १ । ४ । ४५ ॥

थाप्सु वा। कुर्यादग्नौ क्रियां नित्यं लौकिकेनेति निश्चितम् ॥" इति स्मृतिवाक्यमुदाहृत्य यस्त्वस्वीकृतौपासनतया समुच्छिन्नाग्नितया भार्याविधुरतया वाग्निरहितस्तस्य द्विजपाणौ जलादौ होम इति व्याचचक्षे। मदनपारिजातेऽप्येवम्। इदमेव साग्निकानग्निकस्वरूपं सर्वत्र ज्ञेयम् ॥ ग्रहणनिर्णयः ॥ अथ ग्रहणं निर्णीयते ॥ तत्र चन्द्रग्रहणे यस्मिन्यामे ग्रहणं तस्मात् पूर्वं प्रहरत्रयं न भुञ्जीत। सूर्यग्रहे तु प्रहरचतुष्टयं न भुञ्जीत।" सूर्यग्रहे तु नाश्नीयात्पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना ॥" इति माधवीये वृद्धगौतमोक्तेः ॥ "ग्रहणं तु भवेदिन्दोः प्रथमादधियामतः। भुञ्जीतावर्तनात्पूर्वं प्रथमे प्रथमादधः ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेश्च ॥ अधिऊर्ध्वम्। ननु चन्द्रग्रहे यामचतुष्टयनिषेध उचितः, न तु सूर्यग्रहे। सूर्योदयात् प्राग्भोजनाप्राप्तेः। मैवम्। वचनस्य प्रथमयामे सूर्यग्रहे सति पूर्वेद्युः पूर्वरात्रे भोजननिषेधपरत्वात्। चन्द्रग्रहे विशेषमाह माधवीये वृद्धवसिष्ठः–'ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत्' इति। द्वयोर्ग्रस्तास्ते तु माधवीये व्यासः–'अमुक्तयोरस्तगयोरद्यादृष्ट्वापरेऽहनि ॥' विष्णुधर्मेऽपि–" अहोरात्रं न भोक्तव्यं चन्द्रसूर्यग्रहो यदा। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भोक्तव्यं स्नानं कृत्वा ततः परम् ॥" अहोरात्रनिषेधः सूर्य-

---

चाहिये। इस प्रकार इस स्मृतिके वचनको लिखकर उसकी इस प्रकार व्याख्या की है कि, जो औपासन अग्निके स्वीकार न करनेसे अग्निके नाश वा स्त्रीके अभावसे अग्निरहित है वह ब्राह्मणके हाथ वा जलादिमें हवन करे, यही मदनपारिजातमें लिखा है। साग्निक और निराग्निकका सब स्थानमें यही स्वरूप जानना ॥ अब ग्रहणका निर्णय करते हैं–चन्द्रग्रहण जिस पहरमें हो उससे पहलेके तीन पहरोंमें और सूर्यग्रहणसे पहले चार पहरोंमें भोजन न करे। कारण कि, माधवीयमें वृद्धगौतम कहते हैं कि, सूर्यग्रहणमें चार पहर पहले और चन्द्रग्रहणमें तीन पहर पहलेमें वृद्ध बालक और रोगी इनको छोड़कर अन्य भोजन न करें। मार्कण्डेयपुराणमें यह लिखा है कि, जो चन्द्रग्रहण प्रथम पहरसे पीछे हो तो मध्याह्नसे प्रथम भोजन करले और जो रात्रिके प्रथम पहरमें हो तो उससे उपरान्त भोजन करे। यदि कहो कि, चन्द्रग्रहणमें चार पहरका निषेध करना चाहिये, सूर्य ग्रहणमें नहीं; कारण कि, सूर्योदयसे प्रथम तो कोई भोजन ही नहीं करता, सो यह ठीक नहीं कारण कि, प्रथम पहरमें सूर्यका ग्रहण हो तो पहले दिनकी रात्रिमें भोजनका निषेध है। माधवीयग्रन्थमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें वृद्धवसिष्ठ यह विशेष कहते हैं कि, यदि चन्द्रमा ग्रस्तोदय हो तो प्रथम दिन भोजन न करे। और दोनोंके ग्रस्तास्तमें तो माधवीय ग्रन्थमें व्यासजी इस प्रकार कहते हैं कि, यदि चन्द्र सूर्य दोनों ग्रस्तास्त हो जायँ तो फिर चन्द्र सूर्यका दर्शन करके स्नानकर भोजन करना चाहिये। विष्णुधर्ममें कहा है कि, चन्द्रसूर्यके ग्रहण होनेमें एक दिनरात भोजन न करे किन्तु राहुसे जब मुक्त हो जायँ तब दर्शन कर स्नानके उपरान्त अपने घरका ही भोजन करे। इसमें अहोरात्रका निषेध सूर्यग्रहण

---

१ "नाश्नीयादथ तत्कालग्रस्तयोश्चन्द्रसूर्ययोः। मुक्तयोश्च कृतस्नानः पश्चाद्भुञ्ज्यात्स्ववेश्मनि" ॥ चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें भोजन न करे, मोक्ष होनेपर स्नान करके फिर अपने घर भोजन करे। पराया अन्न न खाय।

ग्रस्तास्ते ॥ मदनरत्ने गार्ग्यः-"सन्ध्याकाले यदा राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तदहे नैव भुञ्जीत रात्रावपि कदाचन ॥" सायंसंध्याया सूर्यग्रस्तास्ते पूर्वेऽह्नि रात्रौ च न भोक्तव्यम् । प्रातःसन्ध्यायां चन्द्रग्रस्तास्ते पूर्वरात्रावुत्तरेऽह्नि च न भोक्तव्यमित्यर्थः । चन्द्रग्रस्तास्ते उत्तरदिने सन्ध्याहोमादौ न दोषः । तदाहोशनाः-"ग्रस्ते चास्तं गते त्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम् । स्नानहोमादिकं कार्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः ॥" एतदनाहिताग्निविषयम् ॥ 'अपराह्णे व्रतोपायनीयमश्नीत' इति कात्यायनोक्तेर्व्रतस्य श्रौतत्वेन विहितत्वेन च प्रबलत्वात् । अद्भिर्व्रतं कुर्यादिति निर्णयदीपः । रागप्राप्तभोजने कालनियमोऽयम् । तेन ज्वरादाविव न भोजनमिति कर्कानुसारिणः॥ बालवृद्धातुराणां तु ग्रहयामात्पूर्वमेकयामो निषिद्धः।"सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम् । अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने न तु संगवे ॥ भुञ्जीत संगवे चेत्स्यान्न पूर्वं भोजनक्रिया" ॥ इति मार्कण्डेयोक्तेः । इदं च बालादिविषयम् । 'बालवृद्धातुरैर्विना' इति पूर्वोक्तेः ॥ वेधकाले ग्रहणे वा पक्वमन्नं त्याज्यम् ।

ग्रस्तास्तमें जानना । मदनरत्नमें गर्ग कहते हैं कि, जब सन्ध्यासमय राहु चन्द्र वा सूर्यका ग्रास करे तब उस दिन रात्रिमें किसी प्रकार भोजन न करना चाहिये, अर्थात् सायंकालमें सूर्य ग्रस्तास्त हो जाय तो प्रथम दिन और रात्रिमें भोजन न करे । और प्रभातकी संन्ध्यामें चन्द्रमा ग्रस्तास्त हो जाय तो प्रथम रात्रि और अगले दिन भोजन करना उचित नहीं । चन्द्रमा ग्रहण होते २ अस्त हो जाय तो अगले दिन हवन सन्ध्यादि करनेका दोष नहीं है । यही उशनाने लिखा है कि, यदि चन्द्रमा ग्रस्तास्त हो जाय तो शास्त्रसे उसका मोक्ष जानकर स्नान हवनादि कर ले, परन्तु भोजन तो फिर चन्द्रोदय परही करना चाहिये. यह वार्ता निरग्नियोंके निमित्त है । यदि व्रत हो तो अपराह्ण तीसरे पहरमें जलपान करलेना चाहिये । इस प्रकार कात्यायनके वचनसे व्रतकी प्रबलता वेदोक्त होनेके कारण है, निर्णयदीपमें लिखा है कि, जलसे ही व्रत करलेना चाहिये परन्तु यह नियम रागप्राप्त भोजनमें है, इस कारण ग्रहणमें भोजन ज्वरादिके समान न करना चाहिये । यह कर्काचार्यके अनुसार वर्तनेवालोंका कथन है और ग्रहणसे एक पहर पहले बालक, वृद्ध और रोगी भी व्रत रक्खें भोजन न करें । कारण कि, मार्कण्डेयका यह कथन है कि, 'यदि सन्ध्या समय ग्रहण हो तो अपराह्णमें, अपराह्णमें हो तो मध्याह्नमें, मध्याह्नमें हो तो संगवमें और संगवमें हो तो उससे प्रथम भोजन त्याग दे, यह वचन बालादिके विषयमें जानने, कारण कि, बालवृद्धातुरोंके विना करे ऐसा पहले कह आये हैं । वेधकाल अथवा ग्रहणमें पक्वान्न भी न खाना चाहिये । सब वर्णोंका राहुदर्शनमें सूतक लगता है इससे स्नान करके कर्म

---

१ "सूर्येन्दुग्रहणे यावत्तावत्कुर्याज्जपादिकम् । न स्वपेन्न च भुञ्जीत स्नात्वा भुञ्जीत मुक्तयोः" इति वचनात् ॥ "निद्रायां जायते रोगो मूत्रे दारिद्र्यमाप्नुयात् । पुरीषे कृमियोनिः स्यान्मैथुने ग्रामसूकरः ॥ अभ्यङ्गे च भवेत् कुष्ठी भोजने स्यादधोगतिः । वञ्चने च भवेत्सर्पो वधे च नरकं व्रजेत्" ॥ इति निगदोक्तेश्च । अर्थात्-ग्रहणमें सोने आदिका निषेध है, जबतक सूर्यग्रहण चन्द्र-

"सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत् ॥" इति हेमाद्रौ षट्त्रिंशन्मतात् । शृतमिति तदन्तरितस्योपलक्षणम् । 'नवश्राद्धेषु यच्छिष्टं ग्रहपर्युषितं च यत्' इति मिताक्षरायां वचनात् । भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिर्निबन्धे मेधातिथिः-"आरनालं पयस्तक्रं दधि स्नेहाज्यपाचितम्। मणिकस्थोदकं चैव न दुष्येद्राहुसूतके ॥" मन्वर्थमुक्तावल्याम्-"अन्नं पक्वमिह त्याज्यं स्नानं सवसनं ग्रहे । वारितक्रारनालादि तिलदर्भैर्न दुष्यति" जले त्वदोषो गाङ्गविषयः ॥ "ग्रहोषितं जलं पीत्वा पादकृच्छ्रं समाचरेत् " इति तत्रैव चतुर्विंशतिमतेऽन्यजलस्य दोषोक्तेः । वेधकाले ग्रहणे वा भोजने प्रायश्चित्तमुक्तं माधवीये कात्यायनेन-"चन्द्रसूर्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति। तस्मिन्नेवदिने भुक्त्वा त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥" इति ग्रहणे च त्रिरात्रमेकरात्रं वोपवासः श्रेयोऽर्थिना कार्यः । " एकरात्रमुपोष्यैव स्नात्वा दत्त्वा च शक्तितः । कञ्चुकादिव सर्पस्य निवृत्तिः पापकोशतः ॥ त्रिरात्रं समुपोष्यैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मोदते ब्रह्मणा सह ॥" इति हेमाद्रौ लैंगोक्तेः । इदं च पुत्र्यतिरिक्तविषयम् । "आदित्येऽहनि संक्रांतौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । पारणं चोपवासं च न कुर्यात्

करे और पक्वान्न न खाय ऐसा हेमाद्रिमें षट्त्रिंशके मतसे लिखा है, पकान्नसे ग्रहणके मध्यमें वह न खाना जो पहला पक किया हो। यह उसीका उपलक्षण है, कारण कि, मिताक्षरामें लिखा है नवश्राद्धके शेष और ग्रहणके बासी अन्नको न खाय, मेधातिथिने भार्गवार्चनदीपिका और ज्योतिर्निबन्धमें लिखा है-नरसल, दूध, मट्ठा, दही, घृतका पकान्न और मणिमें स्थित जल यह राहुदर्शनमें दूषित नहीं होता, मन्वर्थमुक्तावलीमें लिखा है कि, पक्वान्न और घरमें सवस्त्र स्नान इनको त्याग देना चाहिये और जल, मट्ठा, कन्द, नरसल यह वस्तु तिल और कुशाके डालनेसे दूषित नहीं होता, जलका अदोष गंगा जलविषयक है, घरमें रहे जलको पीनेसे चौथाई कृच्छ्र करना चाहिये, वहां ही चतुर्विंशतिके मतसे और जलका दोष कहा है। वेधकाल वा ग्रहणके भोजनमें प्रायश्चित्त लिखा है, माधवीयमें कात्यायनका वचन है, चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें भोजन करके प्राजापत्यव्रतसे शुद्ध होता है और उसी दिन भोजन करके त्रिरात्र व्रतसे शुद्ध होता है, इस कारण कल्याणकी इच्छावालेको एकरात वा तीनरात उपवास करना चाहिये। एक रात उपवास करके शक्ति अनुसार कुछ दान देकर केंचलीसे सर्पके समान पापोंसे छूट जाता है, चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें तीनरात व्रत करके विधिपूर्वक स्नान दान करके ब्रह्माके संग प्रसन्न होता है, ऐसा हेमाद्रिमें लिंगपुराणका वचन है, यह पुत्रवालोंको छोडकर अन्योंके निमित्त वचन है। रविवार, संक्रांति, चन्द्रसूर्यका ग्रहण इनमें पुत्रवालेको उपवास करना न

-ग्रहण हो जपादि करते रहे न सोवे न भोजन करे मुक्ति होनेपर स्नानकर भोजन करे। सोनेसे रोग होता है, मूत्र करनेसे दरिद्र, पुरीष करनेसे कृमियोनि, मैथुनसे ग्रामसूकर, उबटनेसे कुष्ठी, भोजनसे अधोगति होती है, ठगई करनेसे सर्प और बन्धसे बन्धन होता है।

पुत्रवान् गृही ॥ " इति जैमिनिवचनात् ॥ यदा तु रविर्ग्रस्तस्तदा पुत्रिणः प्रहरद्वयं हित्वा बालादिवद्भोजनं, न तूपवासः। 'सायाह्ने ग्रहणं चेत्स्यात्' इति पूर्वोक्तमार्कण्डेयवचनात् ॥ " सायाह्ने संगवेऽश्नीयाच्छारदे संगवादधः । मध्याह्ने परतोऽश्नीयान्नोपवासो रविग्रहे ॥" इति स्मृतेश्चेति हेमाद्रिः । शारदोऽपराह्णः ॥ माधवमते तु पुत्रिणोऽपि तत्रोपवास एव-'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति पूर्वोक्त-निषेधस्य तेनापि पालनीयत्वात् उपवासनिषेधस्तु व्रतरूपोपवासपरः । कृष्णैकादशीनिषेधवदिति ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ इदमेव च युक्तम् ॥ वर्धमानस्तु-'अहोरात्रं न भोक्तव्यम्' इति शातातपीयोक्तेः । 'सूर्याचन्द्रमसोर्लोकानक्षयान्याति मानवः' इति फलश्रुतेर्मुक्त्यदर्शने उपवासः काम्यः। न त्वयं निषेध इत्याह तन्न । तत्र व्रतत्वेऽपि प्रागुक्तविष्णुधर्मे निषेधावश्यंभावात् ॥ तथा च व्यासः-"रविग्रहः सूर्यवारे सोमे सोमग्रहस्तथा। चूडामणिरिति ख्यातस्तत्र दत्तमनन्तकम् ॥ वारेष्वन्येषु यत्पुण्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। तत्पुण्यं कोटिगुणितं योगे चूडामणौ स्मृतम् " ॥ तत्र स्नाननिर्णयः । अत्र चाद्यन्तयोः स्नानं कुर्यात्। "ग्रस्यमाने भवेत्स्नानं ग्रस्ते होमो विधीयते । मुच्यमाने भवेद्दानं मुक्ते स्नानं विधीयते ॥ " इति हेमाद्रौ वचनात् । 'स्नानं स्यादुपरागादौ मध्ये होमः सुरार्चनम्' इति ब्रह्मवैवर्ताच्च। " सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने ।

चाहिये, यह जैमिनि कहते हैं जब कि, सूर्यका ग्रस्तास्त हो तब दो पहर छोड़कर पुत्रवान् भोजन करले उपवास न करे। कारण कि, यह पूर्वोक्त मार्कण्डेयपुराणके वचन हैं कि, सायाह्नमें ग्रहण हो तो इत्यादि ॥ और स्मृतिमें भी कहा है कि, सायाह्नके ग्रहणमें संगवमें अपराह्नमें हो तो संगवसे प्रथम मध्याह्नमें हो तो उससे परे भोजन करना चाहिये। हेमाद्रिका यह कथन है कि, सूर्यग्रहणमें उपवास न करे । माधवने तो ग्रहणमें पुत्रवालेको भी उपवास कहा है । दिन रातके भोजन करनेका निषेध पुत्रवालेको भी मानना चाहिये और यह उपवासका निषेध तो कृष्णपक्षकी द्वादशीके तुल्य व्रतरूप उपवासमें जानना । इसी प्रकार मदनरत्नमें भी लिखा है और यह युक्त भी है और वर्द्धमान कहते हैं कि, दिनरात नहीं भोजन करना चाहिये । यह शातातपीयकी उक्ति है । सो अहोरात्रमें भोजन न करनेवाला सूर्य और चन्द्रमाके अक्षयलोकोंको प्राप्त होता है, इस फलश्रुतिसे चन्द्र सूर्यकी राहुसे मुक्तिके विना दर्शन किये उपवास फलके निमित्त हैं और यह निषेध नहीं है। सो वर्धमानका यह कथन ठीक नहीं जिससे कि, यहां व्रतके प्राप्त होनेपर भी पूर्वमें कहे विष्णुधर्ममें निषेधका होना अवश्यंभावी है और यही व्यास भी कहते हैं कि, रविवारको सूर्य और चन्द्रवारको चन्द्रग्रहण हो तो यह 'चूडामणियोग' है इसमें दिया हुआ अनन्त होता है। जो और वारोंमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें दान जपका फल है उससे चूडामणियोगमें करोड गुण फल है। ग्रहणके आदि अन्तमें स्नान करना चाहिये, ग्रस्यमानमें स्नान, ग्रस्त होनेपर हवन, मुक्त होनेपर दान और मुक्त होजानेमें फिर स्नान करना चाहिये यह हेमाद्रिमें कहा है । ब्रह्मवैवर्तमें भी लिखा है ग्रहणके आदिमें स्नान, मध्यमें हवन और देवताअर्चन करना चाहिये, वृद्धवसिष्ठने भी कहा है राहुदर्शनमें सब वर्णोंको सूतक लगता है, इसमें सचैलस्नान होता है, सूतकमें अन्न वर्ज देना चाहिये। सर्व-

सचैलं तु भवेत्स्नानं सूतकान्नं च वर्जयेत् ॥" इति वृद्धवसिष्ठोक्तेश्च । सचैलं मुक्तिस्नानपरमिति मदनरत्ने उक्तम् । भार्गवार्चनदीपिकायां चतुर्विंशतिमते-" मुक्तौ यस्तु न कुर्वीत स्नानं ग्रहणसूतके । स सूतकी भवेत्तावद्यावत्स्यादपरो ग्रहः " इदं च स्नानममन्त्रकं कार्यमिति स्मृतिरत्नावल्याम् । तत्र तीर्थविशेषो भारते-" गंगास्नानं तु कुर्वीत ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । महानदीषु चान्यासु स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ " स्नानमाहात्म्यम् । महानदीष्वपि मासविशेषे काश्चिच्छ्रेष्ठाः-" प्रयागं देविका रेवा संनिहत्या च वारणम् । सरस्वती चन्द्रभागा कौशिका तापिका तथा । सिन्धुर्गण्डकिका चैव सरयूः कार्तिकादितः" मूलं हेमाद्रौ । व्यासः-"इन्दोर्लक्षगुणं पुण्यं रवेर्दशगुणं ततः। गंगातोये तु संप्राप्ते इन्दोः कोटी रवेर्दश ॥ गवां कोटिसहस्रस्य यत्फलं लभते नरः । तत्फलं लभते मर्त्यो ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥" असंभवे तु माधवीये शंखः-"वापीकूपतडागेषु गिरिप्रस्रवणेषु च । नद्यां नदे देवखाते सरसीषूद्धताम्बुनि ॥ उष्णोदकेन वा स्नायाद्ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥" अत्र तारतम्यमाह मार्कण्डेयः । स्नानतारतम्यनिर्णयः ॥ "शीतमुष्णोदकात्पुण्यमपारक्यं परोदकात् । भूमिष्ठमुद्धतात्पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम्॥ ततोऽपि सारसं पुण्यं ततः पुण्यं नदीजलम् । तीर्थतोयं ततः पुण्यं महानद्यम्बु पावनम् ॥ ततस्ततोऽपि गङ्गाम्बु पुण्यं पुण्यस्ततोऽम्बुधिः ॥" इति । उष्णोदक-

---

लस्नान मुक्त होनेपर करना चाहिये, ऐसा मदनरत्नमें लिखा है । भार्गवार्चनदीपिकामें चतुर्विंशतिके मतसे लिखा है कि, जो ग्रहणके सूतक और मुक्तिमें स्नान नहीं करता है वह दूसरे ग्रहणतक सूतकी रहता है । स्मृतिरत्नावलीमें लिखा है-यह स्नान विना मन्त्रके करना चाहिये। वह तीर्थकी विशेषतासे भारतमें लिखा-है चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें गंगास्नान करे अथवा दूसरी महानदियोंमें विधिपूर्वक स्नान करे । महानदियोंमें किसी किसी महीनेमें कोई कोई श्रेष्ठ कही है, प्रयाग, देविका, रेवा, संनिहत्या, वारणा, सरस्वती, चन्द्रभागा, कौशिकी, तापिका, सिन्धु, गण्डकी, सरयू यह क्रमसे कार्तिकादि महीनोंमें ग्रहण और स्नानके लिये श्रेष्ठ हैं, उसका प्रमाण हेमाद्रिमें देखना । व्यासजी कहते हैं-चन्द्रमाके ग्रहणमें लाखगुणा पुण्य, सूर्यका इससे दशगुणा पुण्य है । जब गंगाजी ऐसे समय प्राप्त होजायँ तो चन्द्रमाका करोड़ गुणा और सूर्यका उससे दशगुणा फल वहां स्नान करनेसे होता है । जो फल कोटि सहस्र गोदानसे मनुष्यको मिलता है वह फल मनुष्यको चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें मिलता है, यह गंगादि नदियें न मिल सकें तो माधवीयमें व्यासका वाक्य है कि, बावडी, कूप, तडाग, पर्वत, प्रस्रवण, झरने, नदी, नद, देवखाता (पुष्कर आदि) सरोवर सींचा हुआ वा कूपादिसे निकाला जल वा गरम जलसे चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें स्नान करे । इसमें तारतम्य मार्कण्डेयजी कहते हैं । उष्ण जलसे पर्वतके शीतल जल, दूसरेके जलसे निजका जल, उद्धृतसे भूमिका जल, पृथ्वीके जलसे झरनेका, उससे सरोवरका, उससे नदीका, उससे तीर्थका, उससे महानदीका, उससे गंगा और गंगाजलसे सागरका जल पवित्र है । गरम जल रोगीके निमित्त है । हे महामुने ! चन्द्रग्रहणमें

मातुरविषयम् ॥ तथा—"गोदावरी महापुण्या चन्द्रे राहुसमन्विते । सूर्ये च राहुणा ग्रस्ते तमोभूते महामुने । नर्मदातोयसंस्पर्शे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥" पृथ्वीचन्द्रोदये प्रभासखण्डे—"गावो नागास्तिला धान्यं रत्नानि कनकं मही । सम्प्रदाय कुरुक्षेत्रे यत्फलं लभते नरः । तदिन्दुग्रहणेऽम्भोधौ स्नानाद्भवति षड्गुणम् ॥" तत्रैव सौरपुराणेऽम्बुधिस्नानमुपक्रम्य—"दानानि यानि लोकेषु विख्यातानि मनीषिभिः । तेषां फलमवाप्नोति ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥" देवीपुराणे—"गङ्गा कनखलं पुण्यं प्रयागः पुष्करं तथा । कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे ॥" स्नानाऽसम्भवे स्मरणं वा कार्यम् "स्मृत्वा शतक्रतुफलं दृष्ट्वा सर्वाघनाशनम् । स्पृष्ट्वा गोमेधपुण्यं तु पीत्वा सौत्रामणेर्लभेत् ॥ स्नात्वा वाजिमखं पुण्यं प्राप्नुयादविचारतः । रविचन्द्रोपरागे च अयने चोत्तरे तथा ॥" इति मार्कण्डेयोक्तेः । ग्रहणे श्राद्धम् ॥ अत्र श्राद्धमाह ऋष्यशृंगः—"चन्द्रसूर्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत् । तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे ॥" भारते—"सर्वस्वेनापि कर्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने । अकुर्वाणस्तु नास्तिक्यात्पङ्के गौरिव सीदति ॥" विष्णुः—'राहुदर्शनदत्तं हि श्राद्धमाचन्द्रतारकम्' इदं चामानेन हेम्ना वा कार्यं न त्वन्नेन । "आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्यग्रहे

गोदावरीका, सूर्यग्रहणमें नर्मदाका जल स्नानमात्रसे कृतकृत्य कर देता है । पृथ्वीचन्द्रोदयके प्रभासखण्डमें कहा है—गौ, हाथी, तिल, अन्न, रत्न, सोना और भूमि कुरुक्षेत्रमें प्रदान करनेसे जो फलकी प्राप्ति होती है उससे छः गुना फल चन्द्रग्रहणमें समुद्रके स्नानसे होता है । वहीं सौरपुराणमें सागरके स्नानप्रकरणमें कहा है—जितने दान जगत्में बुद्धिमानों द्वारा प्रसिद्ध हैं चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें स्नान दानसे उन सबका फल मिलता है । देवीपुराणमें लिखा है—गंगा, पवित्र कनखल, प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र ये सूर्यग्रहणमें महापुण्यदायक हैं । कुरुक्षेत्र महापवित्र है । यदि यहां स्नानको न आ सके तो उस अवसरको स्मरण कर ले । स्मरणसे सौ यज्ञका फल और दर्शनसे सब पाप नाश, छूनेसे गोमेधका पुण्य और पानसे सौत्रामणियज्ञकी प्राप्ति और स्नानसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है इसमें सन्देह नहीं । यह फल चन्द्रसूर्यके ग्रहण और उत्तरायणमें जानना । ऐसा मार्कण्डेयका कथन है । इसमें स्पर्शके समय ऋष्यशृंग श्राद्ध करना कहते हैं । जो चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें विधिपूर्वक श्राद्ध करता है मानो उसने ब्राह्मणके हाथमें सब पृथ्वी प्रदान कर दी । भारतमें लिखा है कि, राहुदर्शनमें सब प्रकारसे श्राद्ध करना और नास्तिकतासे न करनेमें कीचमें फंसी गौके समान दुखी होता है—विष्णु कहते हैं । राहुग्रस्त समय जो श्राद्ध किया जाय तो चन्द्रसूर्यकी स्थितिपर्यन्त उसका फल है, यह कच्चे अन्न वा सुवर्णसे करना और अन्नसे नहीं । कारण कि, आपत्तिमें अग्निके अभावमें तीर्थ, चन्द्र सूर्यके ग्रहण

---

१ स्पर्शसमय देवता और पितर तृप्त होते हैं, मध्यकालमें मनुष्य और मोक्षकालमें राक्षस तृप्त होते हैं; यह वृद्धवसिष्ठका कथन है

तथा। आमश्राद्धं प्रकुर्वीत हेमश्राद्धमथापि वा ॥" इति शातातपोक्तेरिति हेमाद्रिमाधवादयः। अपरार्कस्तु—एतद्विजातीनां पाकाभावे द्रष्टव्यं तीर्थश्राद्धवत्। 'पाकाभावे द्विजातीनामामश्राद्धं विधीयते' इति सुमन्तूक्तेः॥ गजच्छायानिर्णयः। "सैंहिकेयो यदा सूर्यं ग्रसते पर्वसन्धिषु। गजच्छाया तु सा प्रोक्ता तस्यां श्राद्धं प्रकल्पयेत्॥ घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत्॥" इति वायवीयोक्तेश्चेत्याह। विज्ञानेश्वरोऽप्याह—'ग्रहणश्राद्धे भोक्तुर्दोषो दातुस्त्वभ्युदयः' इति "सूतके मृतके भुक्तं गृहीते शशिभास्करे। छायायां हस्तिनश्चैव न भूयः पुरुषो भवेत्॥" इत्यापस्तम्बेन भोजननिषेधाच्च। अयं च निषेधः श्राद्धभोक्तुर्हस्तिच्छायासाहचर्यात्। अत्र ग्रहणनिमित्तकश्राद्धेनैवामासंक्रान्त्यादिनैमित्तिकानां सिद्धिः 'दार्शिकालभ्ययोरपि' इति कालादर्शोक्तेः॥ अत्राशौचमध्येऽपि स्नानश्राद्धादि कार्यमेव "सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। तावदेव भवेच्छुद्धिर्यावन्मुक्तिर्न दृश्यते॥" इति माधवीये वृद्धवसिष्ठोक्तेः॥ 'स्मार्तकर्मपरित्यागो राहोरन्यत्र सूतके' इति व्याघ्रपादोक्तेश्च॥ कालादर्शे अंगिराः—"सर्वे वर्णाः सूतकेऽपि मृतके राहुदर्शने। स्नात्वा श्राद्धं प्रकुर्वीरन् दानं शाठ्यविवर्जितम्॥" मदनपारिजातेऽप्येवम्॥ तेन—'स्नानमात्रं प्रकुर्वीत दानश्राद्धविवर्जितम्' इति निर्मूलं वदन्तो गौडाः परास्ताः॥ इयं

इनमें कच्चे अन्न वा सुवर्णसे श्राद्ध करना चाहिये, यह शातातपने कहा है और यही हेमाद्रि और माधव आदिका कथन है। अपरार्क तो यह कहते हैं कि, यह श्राद्ध तीनों द्विजातियोंका तीर्थश्राद्धवत् पाकके अभावमें जानना चाहिये कारण कि, सुमन्तु यह कहते हैं पाककी जब प्राप्ति नहीं तब कच्चे अन्नसे श्राद्ध करना चाहिये। जिस समय पर्वसन्धिमें राहु सूर्यका ग्रास करे उसका नाम गजच्छाया है उसमें श्राद्ध करना चाहिये घृतविशेषसे ब्राह्मणोंको जिमावे और घृत ही भूमिपर डालना। यह वायवीयपुराणका कथन है, विज्ञानेश्वर भी यह कहते हैं कि, ग्रहणश्राद्धमें भोजन करनेवालेको दोष है, दाताका तो प्रताप बढ़ता है, कारण कि, आपस्तम्बमें इस अवसरमें भोजनका निषेध कहा है, सूतक, मरण, चन्द्रसूर्यग्रहण और गजच्छाया इनमें जो भोजन करता है वह फिर पुरुष नहीं होता, यह निषेध गजच्छायाके साथ पढ़नेसे श्राद्ध खानेवालेको है, यहां ग्रहणके निमित्त किये हुए श्राद्धसे ही अमावास्या और संक्रांति आदिके निमित्त किये हुए श्राद्धोंकी भी सिद्धि जाननी। कारण कि कालादर्शमें यह कहा है कि, संक्रान्ति और अमावसमें भी श्राद्ध करे, ग्रहण होते समय अशौचमें भी स्नान और श्राद्ध करे। कारण कि, माधवीयमें वृद्धवसिष्ठ यह कहते हैं—सूतक और मृतक इन दोनोंका राहुदर्शनमें दोष नहीं जबतक ग्रहण मुक्त न हो तबतक सूतक और पातकवाले शुद्ध रहते हैं, व्याघ्रपाद भी यह कहते हैं. राहुके सूतकको छोड़कर स्मार्त कर्म न करे, कालादर्शमें अंगिरा कहते हैं सूतकी और पातकी सबही मनुष्य राहुदर्शनमें स्नान कर श्राद्ध करें और शठतासे रहित होकर दान करें कृपणता न करें यही मदनपारिजातमें लिखा है, इस वचनसे "स्नानमात्र करके श्राद्धके विना दान करे" इस निर्मूल वचनको कहते हुए गौड परास्त हुए और यह विशेषता रूप शुद्धिके अभावसे

च शुद्धिरविशेषान्मंत्रदीक्षापुरश्चरणादिसर्वस्मार्तकर्मविषया ॥ मदनरत्नेऽप्येवम् ॥ रजस्वलायास्तु भार्गवार्चनदीपिकायां सूर्योदयनिबन्धे-"न सूतकादिदोषोऽस्ति ग्रहे होमजपादिषु। ग्रस्ते स्नायादुदक्यापि तीर्थादुद्धृतवारिणा ॥" इति ॥ अत्र च-"स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला। पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत् ॥" इत्यादिमिताक्षरोक्तो विधिर्ज्ञेयः। ग्रहणे रात्रावपि श्राद्धादि कार्यम्॥ "ग्रहणोद्वाहसंक्रान्तियात्रार्तिप्रसवेषु च। दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते" इत्यपरार्के व्यासः। 'चन्द्रग्रहे तथा रात्रौ स्नानं दानं प्रशस्यते' इति देवलोक्तेश्च। यदा तु ज्योतिःशास्त्रगम्ये दिने चन्द्रग्रहो, रात्रौ च सूर्यग्रहस्तदा स्नानादि न कार्यम्। "सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित्" इति षट्त्रिंशन्मतात् ॥ ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धनिर्णयः। ग्रहणदिने वार्षिकश्राद्धप्राप्तौ तु प्रयोगपारिजाते गोभिलः-"दर्शे रविग्रहे पित्रोः प्रत्याब्दिकमुपस्थितम्। अन्नेनासंभवे हेम्ना कुर्यादामेन वा सुतः ॥" इति ॥ अत्र दर्शरविपितृसुतशब्दाः प्रदर्शनार्थाः। न्यायसाम्यात् ॥ तेन चन्द्रग्रहेऽपि सापिण्डादि-वार्षिकमन्नादिना तद्दिन एव कार्यमिति मदनपारिजाते व्याख्यातम्। पृथ्वीचन्द्रोदयेऽप्येवम् ॥ तेन यानि-'आमश्राद्धं प्रकुर्वीत माससंवत्सरादृते' इति। 'अन्नेनैवाब्दिकं कुर्याद्धेम्ना वामेन न क्वचित्' इति मरीचिलौगाक्ष्यादिवचनानि, तानि

मन्त्रदीक्षा पुरश्चरणादि सब स्मार्तकार्योंमें जानना, मदनरत्नमें भी ऐसा ही लिखा है। भार्गवार्चनदीपिकाके सूर्योदयनिबन्धमें लिखा है कि, ग्रहणमें रजस्वलाको होमजपादिका दोष नहीं है ग्रस्तमें तीर्थमेंसे जल निकालकर पृथक् स्नान करे, इसमें यदि ग्रहणमें नैमित्तिक स्नानकी प्राप्ति हो और स्त्री रजस्वला हो तो पात्रमें धरे जलसे स्नान करने उपरान्त व्रत करना, इत्यादि मिताक्षरामें कही हुई यह विधि जाननी और ग्रहणके दिन रातमें भी श्राद्ध करे कारण कि अपरार्कमें व्यासजी कहते हैं, ग्रहण, विवाह, संक्रान्ति, यात्रा, रोग, जन्म इनमें जो दान है वह नैमित्तिक होता है इसके रात्रिके करनेमें भी दोष नहीं है, देवल भी कहते हैं कि, रात्रिको चन्द्रग्रहणमें स्नान दान करना उत्तम है और जब ज्योतिःशास्त्रके अनुसार दिनमें चन्द्रग्रहण और रात्रिमें सूर्यग्रहण हो तो स्नान दानादि नहीं करना चाहिये। यही, यही षट्त्रिंशत् कहते हैं-रात्रिमें सूर्यग्रहण दिनमें चन्द्रग्रहण हो तो उसमें स्नान दानकी आवश्यकता नहीं। ग्रहणदिनमें वार्षिक श्राद्धकी प्राप्तिमें तो प्रयोगपारिजातमें गोभिल कहते हैं-यदि अमावास्याको सूर्य ग्रहण आपड़े और उसी दिन आब्दिक श्राद्ध हो तो पक्वअन्नके द्वारा न बन सके तो सुवर्णसे श्राद्ध करना चाहिये। वा कच्चे अन्नसे करे इन वाक्योंसे न्यायकी समतासे अमावास्या आदित्यवार पिता पुत्र क्रमसे इनके वाचक दर्श, रवि, पितृ, सुत यह शब्द दिखानेके निमित्त हैं इससे चन्द्रग्रहणमें भी सपिण्ड आदि वार्षिक श्राद्धको अन्नादिसे उसी दिन करना, यह मदनपारिजातमें कहा है। पृथ्वीचन्द्रोदयमें भी इसी प्रकारका लेख है, इससे वे वचन मरीचि लौगाक्षि आदिके हैं। वे ग्रहणदिनसे

ग्रहणदिनातिरिक्तविषयाणि ॥ यानि तु–'ग्रहणात्तु द्वितीयेऽह्नि रजोदोषात्तु पञ्चमे।' तथा–"ग्रस्तोदये यदा चन्द्रे प्रत्यब्दं समुपस्थितम्। तद्दिने चोपवासः स्यात्प्रत्यब्दं तु परेऽहनि ॥" तथा–"ग्रस्तावेवास्तमानं तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि। प्रत्यब्दं तु तदा कार्यं परेऽहन्येव सर्वदा ॥ चन्द्रसूर्योपरागे च तथा श्राद्धं परेऽहनि ॥" इत्यादीनि वचनानि तानि महानिबन्धेषु क्वाप्यनुपलम्भान्निर्मूलानि। प्रत्युत पूर्वोक्तनिबन्धेषु तद्दिन एव श्राद्धमुक्तमित्यलम् ॥ ग्रहणे दीक्षानिर्णयः। ग्रहणादिसप्तदिनपर्यन्तं रामगोपालाद्यागमदीक्षोक्ता। शिवार्चनचंद्रिकायां ज्ञानार्णवे–"मन्त्राद्यारम्भणं कुर्याद्ग्रहणे चंद्रसूर्ययोः। ग्रहणाद्वापि देवेशि कालः सप्तदिनावधिः ॥" इति। रत्नसागरे–"सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तंतुदामनपर्वणि। मंत्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत् ॥" अत्र सूर्यग्रहणमेव मुख्यम्। "सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्। सूर्यग्रहणकालेन समो नान्यः कदाचन ॥ न मासातिथिवारादिशोधनं सूर्यपर्वणि ॥" इति तत्रैव कालोत्तरवचनात्। "चन्द्रग्रहे तु या दीक्षा या दीक्षा व्रतचारिणाम्। वनस्थस्य च या दीक्षा दारिद्र्यं सप्तजन्मसु ॥" इति तत्रैव योगिनीतन्त्रे निषेधाच्च। ग्रहणं च जन्मराश्यादौ निषिद्धम्। तदुक्तं ज्योतिषे–"त्रिषड्दशायोपगतं नराणां शुभप्रदं स्याद्ग्रहणं रवीन्द्वोः। द्विसप्तनन्दे-

---

पृथक्में जानने। मासिक और वार्षिक श्राद्धके विना कच्चे अन्नसे श्राद्ध करे। वार्षिक श्राद्धको पक्वान्न वा सुवर्णसे करे और आमान्नसे कभी न करे। निर्णयामृतमें भी इसी प्रकार लिखा है और यह जो कथन है कि, ग्रहणसे दूसरे दिन और रजस्वला दोषसे पांचवें दिन और चन्द्रमाके ग्रस्तोदयमें वार्षिकश्राद्ध आकर प्राप्त हो जाय तो उस दिन उपवास करे और अगले दिन श्राद्ध करना तथा चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें परदिन श्राद्ध करे यह वचन बड़े बड़े ग्रन्थोंमें न मिलनेके कारण निर्मूल है, किन्तु पूर्वोक्त ग्रन्थोंमें उसी दिन श्राद्ध करना कहा है। बहुत कहनेसे बस करते हैं। ग्रहणसे सात दिनतक रामगोपालादि शास्त्रमें कहे हुए मन्त्रोंका उपदेश शिवार्चनचन्द्रिकाके ज्ञानार्णव प्रकरणमें लिखा है कि, हे गिरिजे! चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें अथवा ग्रहणसे सात दिन पर्यंत मन्त्र आदिका आरंभ करना। रत्नसागरमें लिखा है कि, अच्छे तीर्थमें चन्द्रसूर्यके ग्रहणमें तथा बालशिक्षाके समय मन्त्र लेता हुआ पुरुष महीने नक्षत्रका विचार न करे। इसमें सूर्यग्रहण ही मुख्य है। सूर्यके ग्रहण समय और कोई बात नहीं देखी जाती। सूर्यग्रहणके समान और कोई समय नहीं है। सूर्यपर्वमें मास, तिथि, वारका शोधन न करे यह वहां ही कालोत्तरके वचन है। चन्द्रग्रहणमें जो दीक्षा है तथा जो दीक्षा व्रतचारियोंकी है और जो वानप्रस्थकी दीक्षा है वह सात जन्मतक दरिद्र करती है (यह सूर्यदीक्षाके प्रशंसापरत्व वाक्य है) इस प्रकार योगिनीतन्त्रमें चन्द्रदीक्षाका निषेध है। ग्रहण जन्मराशि आदिमें निषिद्ध है। यही ज्योतिषमें लिखा है कि, सूर्यचन्द्रग्रहण मनुष्योंको तीसरे छठें दशमें ग्यारहवें राशिमें हो तो सुखदायी

षुषु मध्यमं स्याच्छेषेष्वनिष्टं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ " इति । आय एकादश । नन्दा नव । इषुः पञ्च । मदनरत्ने गर्गः-"जन्मसप्ताष्टरिःफांकदशमस्थे निशाकरे । दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च ॥" रिःफं द्वादशम् । अंका नव । निधनं सप्तमतारा । ग्रहणनक्षत्रजातानां पीडा तथा तच्छांतिनिर्णयः पृथ्वीचन्द्रोदये विष्णुधर्मे-"यन्नक्षत्रगतो राहुर्ग्रसते शशिभास्करौ । तज्जातानां भवेत्पीडा ये नराः शांतिवर्जिताः ॥ " तत्रैव पुराणान्तरे-"सूर्यस्य संक्रमो वापि ग्रहणं चन्द्रसूर्ययोः । यस्य त्रिजन्मनक्षत्रे तस्य रोगोऽथवा मृतिः ॥ तस्य दानं च होमं च देवार्चनजपौ तथा । उपरागाभिषेकं च कुर्याच्छान्तिर्भविष्यति ॥ स्वर्णेन वाथ पिष्टेन कृत्वा सर्पस्य चाकृतिम् । ब्राह्मणाय ददेत्तस्य न रोगादिश्च तत्कृतः ॥ " जन्मनक्षत्रं तत्पूर्वोत्तरे च त्रिजन्मनक्षत्रमित्युच्यते । जन्मदशमैकोनविंशतितारा इति केचित् । सर्पस्य तदाकारस्य राहोरित्यर्थः । अद्भुतसागरे भार्गवः-" यस्य राज्यस्य नक्षत्रे स्वर्भानुरुपरज्यते । राज्यभंगः सुहृन्नाशो मरणं चात्र निर्दिशेत् ॥ " राज्यस्य नक्षत्रम् अभिषेकनक्षत्रमिति तत्रैव व्याख्यातम् । भार्गवार्चनदीपिकायां ज्योतिःसागरे-"सौवर्णं कारयेन्नागं पलेनाथ पलार्धतः । तदर्धेन तदर्धेन फणायां मौक्तिकं न्यसेत् ॥ ताम्रपात्रे निधायाथ घृतपूर्णे विशेषतः । कांस्ये वा कान्तिलोहे वा न्यस्य दद्यात्सदक्षिणम् ॥ चन्द्रग्रहे तु रूप्यस्य बिम्बं दद्यात्सदक्षिणम् । नागं रुक्ममयं

है । दूसरी सातवीं नववीं पांचवीं राशिमें मध्यम और १ । ४ । ८ । १२ राशियोंमें मुनियोंने अनिष्ट कहा है । मदनरत्नमें गर्गजी कहते हैं-१ । ७ । ८ । १२ । ९ । १० वीं राशिपर चन्द्रमा हो उस दिन ग्रहण हो अथवा जन्मनक्षत्र वा जन्मनक्षत्रसे अष्टमस्थानपर हो तो रोग करता है । पृथ्वीचन्द्रोदयके विष्णुधर्ममें लिखा है, जिस नक्षत्रमें स्थित होकर राहु सूर्य, चन्द्रमाका ग्रास करता है उस नक्षत्रमें जन्मे हुए मनुष्यको दुःख होता है और यदि शांति न करे तो पुराणान्तरमें लिखा है कि, जिसके जन्मनक्षत्रमें वा जन्मनक्षत्रसे प्रथम पीछे सूर्यकी संक्रांति अथवा सूर्य चन्द्र ग्रहण हो तो उसको रोग अथवा मृत्यु होती है । उसके निमित्त दान, होम, देवार्चन, जप, ग्रहणमें मन्त्रोंसे अभिषेक करे तो शांति होती है । सुवर्णकी वा आटेकी मूर्ति सर्पाकार बनाकर ब्राह्मणको दे तो रोगादिका विघ्न नहीं होता । किन्हींका यह वचन है कि, जन्मसे दशवाँ वा उन्नीसवां नक्षत्र निषिद्ध है । अद्भुतसागरमें भार्गव कहते हैं-जिसके राज्यअभिषेकके नक्षत्रमें ग्रहण हो तो राज्यभंग, सुहृदोंका नाश और मरण होता है । भार्गवार्चनदीपिकामें ज्योतिःसागरका वाक्य है, एक तोले सुवर्णका सर्प निर्माण करके अथवा दो तोलेका बनाकर उसके फनपर छः वा तीन मासेका मोती रक्खे । घृतसे पूर्ण कर तांबे, कांसे वा कांतिसार लोहके पात्रमें उसको रख दक्षिणापूर्वक ब्राह्मणको दे । चन्द्रग्रहणमें चांदीके चन्द्रमाका बिम्ब बनाके दक्षिणासहित ब्राह्मणको दे । सूर्यग्रहणमें सोनेके नाग वा सोनेके चन्द्रमाको

सूर्यग्रहे बिम्बं च हेमजम् ॥ तुरंगरथगोभूमितिलसर्पिश्च काञ्चनम् ॥" कालविवेकेऽपि—"सुवर्णनिर्मितं नागं सतिलं कांस्यभाजनम्। सदक्षिणं सवस्त्रं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्। ॥ सौवर्णं राजतं वापि बिम्बं कृत्वा स्वशक्तितः। उपरागभवक्लेशाच्छिदे विप्राय कल्पयेत्" ॥ मन्त्रस्तु—"तमोमय महाभीम सोमसूर्यविमर्दन। हेमतारप्रदानेन मम शान्तिप्रदो भव ॥ विधुंतुद नमस्तुभ्यं सिंहिकानन्दनाच्युत। दानेनानेन नागस्य रक्ष मां वेधजाद्भयात् ॥" इति। अत्र शान्तिरप्युक्ता हेमाद्रौ मात्स्ये-"यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ग्रहणसंभवः। स्नानं तस्य प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितम् ॥ चन्द्रोपरागं संप्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्। संपूज्य चतुरो विप्राञ्छुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥ पूर्वमेवोपरागस्य समानीयौषधादिकम्। स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सलिलान्वितान् ॥ गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्। राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय निक्षिपेत् ॥ पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्च त्वक् पञ्चपल्लवम्। रोचनं पद्मकं शंखं कुंकुमं रक्तचन्दनम् ॥ शुक्तिस्फटिकतीर्थाम्बुसितसर्षपगुग्गुलून्। मधुकं देवदारुं च विष्णुक्रान्तां शतावरीम् ॥ बलां च सहदेवीं च निशाद्वितयमेव च। गजदन्तं कुंकुमं च तथैवोशीरचन्दनम् ॥ एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत्सुरान्। सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ यान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः। योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः ॥ सहस्रनयनः

अथवा घोड़ा, रथ, भूमि, गौ, तिल, घी सुवर्णको प्रदान करे। कालविवेकमें कहा है सुवर्णनाग वा सतिल कांस्यपात्र यह दक्षिणा और वस्त्रसहित ब्राह्मणको दे। ग्रहणदोषशान्तिके निमित्त अपनी शक्तिके अनुसार सोने वा चांदीकी सूर्य चन्द्रमाकी मूर्ति बनाके ब्राह्मणको देनी चाहिये। मंत्र यह है—हे अन्धकारमय महाभयंकर सोमसूर्यके मर्दन करनेवाले! सुवर्ण तार दानसे मुझे शान्ति दो। हे सिंहिकानन्दन, च्युत न होनेवाले! चन्द्रको कष्टदायक! हे राहो! इस सुवर्णनागके दानसे मेरी ग्रहणके भयसे रक्षा करो। हेमाद्रिमें मत्स्यपुराणके वचनसे इसकी शान्ति कही है कि, जिसकी राशिपर ग्रहण हो उसको मंत्रौषधि सहित स्नान कहता हूं। चन्द्रग्रहण होनेपर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढवाय श्वेत माला और चन्दनसे चार ब्राह्मणोंका पूजन कर ग्रहणसे पहले ही ओषधी आदि लाकर स्वच्छ चार घड़े जलसे भरे स्थापन करे, उनमें हाथी, घोडे, गली, बामी, दो नदियोंके संगमकी, कुण्ड, गोष्ठ, राजद्वार इतने स्थानोंसे मृत्तिका लाकर डाले और पंचपल्लव, पंचगव्य, पंचरत्न, पंचत्वचा, गोरोचन, पद्मक, शंख, कुंकुम, लाल चन्दन, सीपी, स्फटिक, तीर्थजल, सफेद सरसों, गूगल, महुआ, देवदारु, विष्णुक्रांता, शतावर, बला, सहदेई, दोनों हलदी, हाथी दांत, उशीर, चन्दन इन सबको इन घड़ोंमें डालकर देवताओंका आवाहन करे कि, सब सागर, नदी, तीर्थ, मेघ, नद यजमानके पाप नाश करनेवाले ये सब घटोंमें आकर प्राप्त हों। आदित्योंके पति वज्रधारी सहस्रनेत्र इन्द्र इन

शंक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु । मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः ॥ चन्द्रोपराग- संभूतामग्निः पीडां व्यपोहतु । यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मो महिषवाहनः ॥ यमश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु । रक्षोगणाधिपः साक्षान्नीलाञ्जनसमप्रभः ॥ खड्गहस्तोऽतिभीमश्च ग्रहपीडां व्यपोहतु । नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ॥ स जलाधिपतिर्देवो ग्रहपीडां व्यपोहतु । प्राणरूपो हि लोकानां सदा कृष्णमृग- प्रियः॥ वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु । योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूल- गदाधरः ॥ चन्द्रोपरागकलुषं धनदोऽत्र व्यपोहतु । योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ॥ चन्दोपरागपापानि स नाशयतु शंकरः । त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राश्च दहन्तु मम पातकम् । एवमावाहयेद्देवान्मन्त्रैरेभिश्च वारुणैः ॥ एतानेव तथा मन्त्रान्स्वर्णपट्टे विलेख- येत् । ताम्रपट्टेऽथवालिख्य नववस्त्रे तथैव च ॥ मस्तके यजमानस्य निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः । कलशान्द्रव्यसंयुक्तान्नानारूपसमान्वितान् ॥ गृहीत्वा स्नापयेद्गूढं भद्रपीठोपरि स्थितम् । पूर्वैरेव तु मन्त्रैश्च यजमानं द्विजोत्तमाः ॥ अभिषेकं ततः कुर्यान्मन्त्रैर्वारुणसूक्तकैः । आचार्यं वरयेत्पश्चात्स्वर्णपट्टं निवेदयेत् ॥ आचार्य- दक्षिणां दद्याद्गोदानं च स्वशक्तितः । होमं वापि प्रकुर्वीत तिलैर्व्याहृतिभिस्तथा ॥

ग्रहोंकी पीडाको दूर करो, सब देवताओंके मुखरूप सहस्रज्वाला युक्त अप्रमाण कान्ति- युक्त अग्निदेवता चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाको दूर करो । जगत्के शुभाशुभ कर्मोंके साक्षी महिषवाहन धर्मरूप यम चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाको दूर करे ॥ रक्षोगणोंके अधिपति नीलांजन पर्वतके समान कान्तिमान् खड्गधारी भयंकररूप निर्ऋति ग्रहपीडाको दूर करो, नागपाशधारी देव सदा मकरपर चढ़नेवाले जलके अधिपति देव वरुण ग्रहपीडाको दूर करें । लोगोंके प्राणरूप कृष्णमृगको सदा प्यार करनेवाले वायु चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई ग्रहपीडाको दूर करो । जो यह निधिपतियोंके देवता खड्ग ,शूल, गदा धारण करनेवाले कुबेर सो. ग्रहपीडाको दूर करो । जो यह चन्द्रबिम्बधारी पिनाकी वृषभवाहन, देव है वह शंकर चन्द्रग्रहणसे उत्थित हुए पापोंको दूर करें, त्रिलोकीमें जितने स्थावर जंगम प्राणी हैं वे; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य मेरे पातकोंको नष्ट करें। इस प्रकार वरुणमंत्रोंसे देवताओंका आवाहन करे और इन मंत्रोंको सुवर्णपट्टपर लिखे, ताम्रपट्ट अथवा नये वस्त्रमें लिखाकर वे ब्राह्मणश्रेष्ठ यजमानके मस्तकमें रक्खें । अनेक रूपसम्पन्न पूर्वोक्त द्रव्योंसे संयुक्त उन घडोंको निज हाथमें ग्रहण करके मंगलके आसनपर बैठे हुए यजमानको पूर्वोक्त मंत्रोंसे स्नान करावे और यह वारुण सूक्तके मंत्र पढ़े। फिर आचार्यको वरण करके स्वर्णपट्ट निवेदन करे।आचार्यको दक्षिणा और स्वशक्तिसे गोदान करे । तिलोंसे व्याहृति पढकर हवन करे और अपना हित करनेके निमित्त शक्तिसे दान करे और

दानं च शक्तितो दद्याद्यदीच्छेदात्मनो हितम् । सूर्यग्रहे सूर्यनामयुक्तान्मंत्रांश्च कीर्तयेत् ॥ अनेन विधिना यस्तु ग्रहणे स्नानमाचरेत् । न तस्य ग्रहणे दोषः कदाचिदपि जायते ॥ २९ ॥" इति ग्रहणशान्तिः ॥ ग्रहणदर्शननिर्णयः । भार्गवार्चनदीपिकायां ब्रह्मसिद्धान्ते-"सर्वैः पटस्थितं वीक्ष्यं खस्थं तैलाम्बुदर्पणैः । ग्रहणं गुर्विणी जातु न पश्येत पटं विना ॥" तत्र मंगले वर्ज्यदिननिर्णयः । तथा मङ्गलकृत्येषु वेधविशेषो हेमाद्रौ-"त्रयोदश्यादितो वर्ज्यं दिनानां नवकं ध्रुवम् । माङ्गल्येषु समस्तेषु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥" प्रकारान्तरं तत्रैवोक्तम्-"द्वादश्यादितृतीयान्तो वेध इन्दुग्रहे स्मृतः । एकादश्यादिकः सौरे चतुर्थ्यन्तः प्रकीर्तितः ॥" इदं च पूर्णग्रासे । 'त्र्यहं खण्डग्रहे तयोः।' इति तत्रैवोक्तेः ॥ इदं च-'ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वम्' इति नारदेन ग्रस्तास्ते विशेषोक्तेर्ग्रस्तास्तभिन्नग्रहणपरम् ॥ ज्योतिर्निबन्धे च्यवनः-"ग्रहणोत्पातभं त्याज्यं मङ्गलेषु ऋतुत्रयम् । यावच्च रविणा मुक्तं भुक्तं भं दग्धकाष्ठवत् ॥" अन्यानि चाग्नेयानि मण्डलानि तत्फलं वर्णविकारादिफलं च दैवज्ञेभ्यो ज्ञेयम् ॥ तत्र पुरश्चरणम् । पुरश्चरणचन्द्रिकायाम्-"चन्द्रसूर्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः । स्पर्शादिमोक्षपर्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥ जपाद्दशांशतो होमस्तथा होमात्तु तर्पणम् ।

सूर्यग्रहणमें सूर्यक नामके मंत्र पढ़कर मंत्रकीर्तन करे। इस प्रकारसे जो ग्रहणमें स्नान करता है उसको ग्रहणमें कभी दोष नहीं लगता है। इति ग्रहणशान्तिः ॥ भार्गवार्चनदीपिकाके ब्रह्मसिद्धान्तमें लिखा है कि, ग्रहणको आकाशमें जो देखे तो वे सब वस्त्र, तेल, जल, दर्पणमें देखें और गर्भवती स्त्रीको तो नेत्रोंके आगे वस्त्र डालकर देखना चाहिये अन्यथा कभी न देखे। इसी प्रकार हेमाद्रिमें मंगल कार्योंमें वेधका विशेष लिखा है कि, चन्द्रसूर्य ग्रहणमें तेरससे नौदिनतक सम्पूर्ण मंगलकार्योंको त्याग दे और वहीं दूसरा प्रकार यह लिखा है कि, द्वादशीसे तृतीयातक चंद्रग्रहणमें, एकादशीसे चतुर्थी तक सूर्यग्रहणमें वेध लगता है, परंतु सम्पूर्ण ग्रासमें यह वेध जानना। कारण कि, खण्डग्रहणमें उसी ग्रंथमें तीन दिन ग्रहण कहा है और यह वार्ता भी ग्रस्तास्तको छोड़कर दूसरे ग्रहणमें जाननी। कारण कि, नारदने ग्रस्तास्तसे प्रथम तीन दिन वेधकी विशेषता कही है। ज्योतिर्निबंधमें च्यवन ऋषि कहते हैं कि, तीन ऋतुपर्यन्त ग्रहणके और उत्पातके नक्षत्रको मंगलकार्यमें छोड़ देना चाहिये और जबतक सूर्य उस नक्षत्रको भोगकर न छोड़े तबतक दग्ध काष्ठके समान उसको त्याग दे। इससे अन्य आग्नेयादिके मण्डल उनके फल और वर्णविकारादियोंके फल ज्योतिषियोंसे पूछकर जानने चाहिये। पुरश्चरणचन्द्रिकामें कहा है कि, चंद्रसूर्यग्रहणमें सावधानीसे स्नान करके राहुके स्पर्शसे मोक्षतक मनको रोककर मंत्र जपे, मंत्र जितना पढ़ा हो उससे दशांश हवन, उससे दशांश तर्पण और

तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल ॥ तत्रैव देवतारूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूज्य च । नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य तदन्ते देवताभिधाम् ॥ द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु । तोयैरञ्जलिना शुद्धैरेभिः सिञ्चेत्स्वमूर्धनि ॥ मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत् । जपोऽर्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम् ॥ भूदेवपूजनं पञ्चप्रकारोक्ता पुरस्क्रिया ।" ॥ तथा-"होमाशक्तो जपं कुर्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम् । एवंकृते तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा ॥" कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तम् । ग्रहणप्रसङ्गात् कुरुक्षेत्रप्रतिग्रहे प्रायश्चित्तमुच्यते । तत्रारुणस्मृतौ-"प्रतिग्रही कुरुक्षेत्रे न भूयः पुरुषो भवेत् । तथापि मनसः शुद्ध्यै प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ तप्तकृच्छ्रद्वयं कुर्यादैन्दवेन समन्वितम् । सत्रेण वा यजेताथ जपेद्वा लक्षसप्तकम् ॥ वापीकूपतडागादिखननैर्विसृजेद्धनम् ॥" इति ॥ एतच्च-"यद्गर्हितेनार्जयन्ति कर्मणा ब्राह्मणा धनम् । तस्योत्सर्गेण शुद्ध्यन्ति दानेन तपसैव च ॥" इति मनूक्तेरुत्सर्गोत्तरं ज्ञेयमिति दिक् ॥ ग्रहणेऽन्तरिते पूर्वसंकल्पितस्य द्वैगुण्यम् । ग्रहणान्तरितस्य पूर्वसंकल्पितद्रव्यस्य द्वैगुण्यं भवतीति शिष्टाः पठन्ति च लघुब्रह्मवैवर्ते-"दातव्यमिति नो काश्यां वक्तव्यं कुत्रचित्क्वचित् । अहोरात्रमतिक्रम्य तद्दानं द्विगुणं भवेत् ॥ दर्शोत्तरं पर्वसु स्याच्छतं चन्द्रग्रहे भवेत् । सूर्यग्रहे सहस्रं तन्मरणेऽनन्तकं

तर्पणसे दशांश मार्जन करे। जिस देवताका मंत्र जपे उसको और अपनी आत्माको पूजन कर मंत्रके अंतमें नमः लगाकर मन्त्रको जपे और द्वितीया विभक्ति देवताके अंतमें लगाकर कहे मैं अमुक देवताको स्नान कराता हूं (अहं सूर्यमभिषिञ्चामि) यह पढ़कर शुद्ध जलोंको अपने मस्तकपर छिड़के और जितना मार्जन किया हो उसके दशांशसे ब्राह्मणोंको जिमावे। प्रथम करनेका कर्म पांच प्रकार लिखा है-जप, पूजन, हवन, तर्पण अभिषेक, ब्राह्मणोंको सत्कारसे भोजन करावे। यदि हवनकी सामार्थ्य न हो तो हवनसे चौगुना जप करे, ऐसा करनेपर मन्त्रकी उत्तम सिद्धि होती है। ग्रहणमें कुरुक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेनेसे प्रायश्चित्त लगता है, यह अरुणस्मृतिमें लिखा है कि, कुरुक्षेत्रमें प्रतिग्रह लेनेवाला फिर पुरुष नहीं होता है, तो भी मनकी शुद्धिके निमित्त प्रायश्चित्त करे। दो तप्तकृच्छ्र व्रत इंदुकृच्छ्र व्रतके सहित करे, अथवा सत्रद्वारा यजन करे वा सात लाख मंत्रका जप करे, अथवा बावडी, कूप, सरोवरादिके खोदनेके अर्थ कुछ द्रव्य दे, यह प्रायश्चित्त भी इस मनुके वाक्यसे उसके धन त्यागनेके उपरान्त जानना। कि, जिस द्रव्यको ब्राह्मण निन्दितकर्म करके संग्रह करते हैं, उसके त्याग वा दान तपस्यासे शुद्ध होते हैं यही नियम है। प्रथम संकल्प किये द्रव्यके मध्यमें जो ग्रहण आजाय और वह न दिया जाय तो दूना हो जाता है, यह शिष्टोंका कथन है। लघुब्रह्मवैवर्तमें लिखा है कि, काशी वा अन्य किसी क्षेत्रमें दूंगा ऐसा कभी न कहे। कारण कि, अहोरात्र बीतनेपर दान दूना हो जाता है। पर्वमें दशगुणा,

स्मृतम् ॥ ” इति ॥ अत्र मूलं चिन्त्यम् । तत्र केचिन्मतखण्डनम् । अत्र केचि-द्बौद्धतुल्या आहुः ग्रहणस्य निमित्तत्वेन तन्निश्चयस्य प्रयोजकत्वात् । ज्योतिः-शास्त्रादिना जातस्य ज्ञानस्य निमित्तत्वे प्राप्तेऽपि-“ स्नानं दानं ततः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने । चन्द्रसूर्योपरागे तु यावद्दर्शनगोचरम् ॥ ” इति जाबाल्यादिवचनेषु दृशिप्रयोगाच्चाक्षुषज्ञानस्यैवोपसंहारन्यायेन निमित्तत्वम् । अन्यथा दृशौ लक्षणा स्यात् । तेन मेघाच्छादनेऽन्धादीनाम् । ‘ जन्मसप्ताष्ट ’ इत्यादिनिषिद्धदर्शनानां च स्नानश्राद्धादौ नाधिकार इति ॥ कल्पतरुरप्याह-दर्शनशब्देन चाक्षुषज्ञानं गृह्यते न ज्ञानमात्रम् । अज्ञानस्य निमित्तत्वासंभवान्निमित्तमहिम्नैव ज्ञानलाभेन दर्शनपद-वैयर्थ्यापत्तेः । तेन चाक्षुषधीयोग्यः कालः पुण्यः । योग्यत्वं च प्रयत्नानपनेयचा-क्षुषज्ञानप्रतिबन्धकराहित्यं तेन मेघच्छन्ने योग्यताभावान्न स्नानादीति ॥ निर्णया-मृतेऽप्येवम् ॥ तदेतत्तुच्छम् । यदि चाक्षुषज्ञानं निमित्तं स्यात्तदा-“सूर्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहस्तथा । तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्याद्दानं न च क्वचित् ॥ ” इति वाक्यं व्यर्थं स्यात् । चाक्षुषज्ञानाभावेन प्राप्त्यभावात् । तत्पूर्वकत्वाच्च निषेधस्य ॥ न चेदं ग्रस्तास्तपरम् । रविचन्द्रयोरस्तानन्तरं रात्रिदिवाग्रहत्वादिति वाच्यम् ।

चंद्रग्रहणमें सौगुणा और सूर्यग्रहणमें सहस्रगुणा और मरणमें अनंत हो जाता है, इसमें मूल विचारने योग्य है । इसपर कोई बौद्धोंके समान कहते हैं, ग्रहणके निमित्तत्व होनेसे दान जप आदिमें दान निमित्त है और वह निश्चयके विना नहीं हो सकता । ज्योतिःशास्त्रादिसे उत्पन्न हुआ ग्रहणका ज्ञान यद्यपि निमित्त हो सकता है तथापि स्नान, दान, तप यह राहुके दर्शनमें अनंत होता है, चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जबतक दर्शन हो तो इस जाबालिके वचनसे दृष्ट प्रयोग होनेसे नेत्रोंसे देखनेको ही अंतमें न्यायसे निमित्तता हुई, ऐसा न करनेसे ग्रहणमें दर्शनकी लक्षणा माननी होगी, इससे मेघके आच्छादन होनेसे अंधोंको और नेत्रवालोंको जन्म, सातवीं और आठवीं राशियोंके निषिद्ध ग्रहणके देखनेसे स्नान और श्राद्धादिमें अधिकार नहीं रहेगा । कल्पतरुमें भी लिखा है कि, दर्शनशब्दसे नेत्रोंसे देखनेका ग्रहण करना ज्ञानमात्र नहीं, अज्ञातकी निमित्तता नहीं हो सकती, अन्यथा ज्ञानकी प्राप्ति तो निमित्तकी महिमासे ही हो जाती, फिर दर्शनपद धरना वृथा था, इस कारण जिस कालमें ग्रहण नेत्रोंसे दीखने योग्य हो वही समय शुद्ध है । उसकी योग्यता यही है कि, प्रयत्नसे प्राप्त किये पदार्थसे नेत्रोंके दृष्टज्ञानके प्रति अवरोधक न हो, इस कारण मेघा-च्छादित आकाशमें नेत्रोंसे देखनेकी योग्यता नहीं है, इसी कारण स्नान आदि नहीं होते । निर्णयामृतमें भी इसी प्रकार कहा है, परंतु यह सब बौद्धोंके समान कथन तुच्छ है, कारण कि, यदि निमित्त नेत्रावलोकन ही होता तो यह कथन “सूर्यग्रहण रात्रिमें हो, दिनमें चन्द्रग्रहण हो तो न स्नान करे और न दान दे ” व्यर्थ होजाता । कारण कि, नेत्रदर्शनके न होनेसे स्नान आदिकी स्वयं ही प्राप्ति नहीं थी और प्राप्त वस्तुका निषेध होता है और जो यह शंका करो कि, यह निषेध ग्रस्तास्तमें है, तो सूर्य चंद्रमाके अस्तके अनंतर भाविरात्रि और दिनका ग्रहण है, सो यह शंका भी ठीक नहीं है ।